उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

DVS-104

वास्तु में विभिन्न साधन एवं अन्य विचार

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

अध्ययन बोर्ड (फरवरी-2020)

पाठ्यक्रम सम्पादन, संयोजन एवं समन्वयक (वास्तु शास्त्र)

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
प्रोफेसर श्याम देव मिश्र अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर परिसर, जयपुर।	**1**	**1,2,3,4**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी – नैनीताल	**2**	**1,2,3,4**
डॉ. कृष्ण कुमार भार्गव असिस्टेन्ट प्रोफेसर (वास्तु) राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय तिरूपति – आन्ध्रप्रदेश	**3**	**1,2,3,4,5,6**

प्रकाशन वर्ष - 2021
प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: - सहारनपुर इलेक्ट्रिक प्रेस, वोमन जी रोड, सहारनपुर
ISBN NO. -

वास्तु में विभिन्न साधन एवं अन्य विचार DVS-104

अनुक्रम

वास्तु शास्त्र में डिप्लोमा

(DVS-20)

चतुर्थ पत्र

वास्तु में विभिन्न साधन एवं अन्य विचार

DVS-104

खण्ड – 1
वर्गाय, पिण्ड साधन एवं गृहदैर्घ्य निर्धारण

इकाई - १ वर्ग-विचार

इकाई का निरूपण

१.१ प्रस्तावना

१.२ उद्देश्य

१.३ वास्तु के आधारभूत तत्त्व

१.४ वर्ग-विचार

१.४.१ प्रयोजन

१.४.२ स्वरूप

१.४.२.१ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार

१.४.२.२ भूपालवल्लभ के अनुसार

१.५ दिशा-विचार

१.५.१ मुहूर्त्तचिन्तामणि का मत

१.५.२ भूपालवल्लभ का वचन

१.५.३ वास्तुसौख्य का मत

१.६ काकिणी-विचार

१.६.१ बृहद्वास्तुमाला का मत

१.६.२ काकिणी-साधन

१.६.२.१ प्रथम उदाहरण

१.६.२.२ द्वितीय उदाहरण

१.७ ग्रह-दशाविचार

१.७.१ बृहद्वास्तुमाला

१.७.२ दशासाधनविधि

१.८ सारांश

१.९ शब्दावली

१.१० बोध प्रश्नों के उत्तर

१.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१.१२ सहायक ग्रन्थ सूची

१.१३ निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! वास्तु-शास्त्र डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के प्रथम खण्ड में आपका स्वागत है। इस खण्ड में हम भारतीय-वास्तु-शास्त्र के मूल सिद्धान्तों में से एक वर्ग-विचार पर विस्तार से चर्चा करेंगे। जैसा कि आप सभी को अवगत है कि वैदिक-काल में यज्ञ का महत्त्व सर्वाधिक था जिसके लिए अलग-अलग प्रकार की चितियों, कुण्डों और मंडपों का निर्माण किया जाता था। यह निर्माण बिना वास्तु के ज्ञान के संभव नहीं था। इसलिए वास्तु-विज्ञान आरम्भ से ही वैदिक-साहित्य का अभिन्न अंग होते हुए अथर्ववेद के उपवेद के रूप में परिगणित है। एवं 'स्थापत्य-वेद' के रूप में इसकी प्रतिष्ठा और आदर है। यही कारण है कि यह सनातन-परम्परा की ज्ञान-विज्ञान-धारा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

प्रिय अध्येताओं! जैसा कि आप जानते हैं, वास्तु-शास्त्र, विज्ञान की वह परम्परा है जिसमें गृह, प्रासाद (महल), देवालय, उद्यान, वापी, विविध-मण्डप, नगर इत्यादि के निर्माण का अध्ययन करते हैं। किन्तु, किसी भी प्रकार के वास्तु के निर्माण में कुछ आधारभूत बातें ध्यान में रखनी होती हैं, जिन पर अनेकों वास्तु-शास्त्रीय नियम और सिद्धान्त बड़ी ही दृढ़ता से टिके हैं। ऐसे ही कुछ आधारभूत तत्त्वों जिनमें 'वर्ग-विचार', 'इष्टाय-साधन', 'इष्ट-नक्षत्र-निर्धारण' और 'गृह-पिण्ड-साधन' का स्थान प्रमुख है, के अध्ययन हेतु, आपके पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के इस खण्ड में इन विषयों को सम्मिलित किया गया है। इन मूल तत्त्वों के आधार पर आगे जो विषय विचारणीय होते हैं उनमें कक्षों, द्वारों आदि की दैर्घ्य अर्थात् लम्बाई और विस्तृति अर्थात् आयाम (चौड़ाई) का विचार सबसे महत्त्वपूर्ण है। जब तक वर्ग-आय-पिण्ड का विचार नहीं होगा तब तक निर्मेय (बनाए जाने वाले) शाला की लम्बाई और चौड़ाई का भी निर्धारण संभव नहीं है और उसके बिना द्वार, अलिन्द, आंगण, वातायन, प्रतोली इत्यादि का निर्माण तो भूल ही जाइए। अत: यह खण्ड विषय-वास्तु की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण और उपादेय है।

प्रथम खण्ड की इस प्रथम इकाई में वास्तु के मूल तत्त्वों में से एक 'वर्ग' का विचार किया जाएगा। वर्ग का विचार कैसे करते हैं? वर्ग का स्वरूप क्या है? इसके आधार पर स्थान-विशेष में निवास, दिशा, शल्य आदि का ज्ञान किस प्रकार किया जाता है इन सभी विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे, जिससे कि भारतीय-वास्तुशास्त्र में 'वर्ग-विचार' के स्वरूप, प्रयोजन और महत्त्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित कर सकने में आपको मदद मिलेगी। इस खण्ड के पाँचों इकाईयों में काल-क्रम से ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्यों के विषय में आप अध्ययन करेंगे। इस प्रथम इकाई में

ऋषि लगध, आचार्य वराहमिहिर एवं सिद्धान्त ज्योतिष के आचार्य आर्यभट्ट के विषय में चर्चा की जाएगी।

१.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों का नामोल्लेख कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- वास्तु-शास्त्र में 'वर्ग' के स्वरूप को समझ सकने में कुशल हो सकेंगे।
- वास्तु में वर्ग की भूमिका को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- व्यक्ति-विशेष के निवास हेतु स्थान-विशेष लाभदायक है या नहीं इसका निर्धारण कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- वर्गानुसार दिशा के निर्धारण में निपुण हो सकेंगे।
- वास्तु-निर्माण के पूर्व भूमि के नीचे स्थित शल्य की स्थिति का निर्धारण कर सकने में समर्थ होंगे।

१.३ वास्तु के आधारभूत तत्त्व -

मित्रों! प्रत्येक शास्त्र, चाहे वह ज्योतिष हो, व्याकरण हो, दर्शन हो या फ़िर वास्तु ही क्यूं न हो, सभी कुछ आधारभूत तत्त्वों और मूल सिद्धांतों पर ही टिकते हैं, अन्यथा उनकी शास्त्रीयता ही सन्देह के घेरे में रहती है। जहां तक प्रश्न वास्तु का है, इसके आधारभूत तत्त्वों के बिना तो इसकी थोड़ी भी गति नहीं है। अत: वास्तु-शास्त्र में प्रवेश की कुंजी हैं – ये आधारभूत तत्त्व। इन तत्त्वों में 'वर्ग', 'आय', 'पिण्ड', 'वास्तु-पद-विन्यास' का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। सामान्य से सामान्य और विशेष से विशेष वास्तु के भी निर्माण के पूर्व इन तत्त्वों पर विचार अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा कितना भी सुन्दर आप भवन, शालाएं इत्यादि बनवा लें, इन तत्वों के सम्यक् अनुशीलन और क्रियान्वयन के अभाव में वास्तु का सौख्य आदि प्रयोजन कतई सिद्ध नहीं हो सकेगा। यदि इन आधारभूत तत्त्वों के प्रयोजन पर एक दृष्टि डालें तो निश्चय ही इनके महत्त्व को समझा जा सकेगा। जहां तक प्रश्न वर्ग का है, इसका सबसे पहले उपयोग, ग्राम या नगर-विशेष में व्यक्ति-विशेष के रहने की अनुकूलता का निर्धारण करना है। वास्तु में इस निर्धारण की 'काकिणी' संज्ञा है। व्यक्ति और ग्राम या नगर के नाम के आधार पर उन दोनों का वर्ग निर्धारित किया जाता है, जिसके आधार पर उस ग्राम या

नगर में व्यक्ति-विशेष का वास अनुकूल है या नहीं इसका निर्धारण किया जाता है। अमुक व्यक्ति का किसी ग्राम या नगर में रहना लाभप्रद है भी कि नहीं, यह जाने बिना ही वहां वास्तु के निर्माण की क्या सार्थकता रह जाती है? अगर आप यह कहें कि यदि उस व्यक्ति-विशेष की आजीविका ही उस ग्राम या नगर में निश्चित हो तो फिर ऐसे में वर्ग-विचार अप्रासंगिक है, तो यह कहना भी उचित नहीं है। इसके पीछे दो तर्क दिए जा सकते हैं। पहला, जहां ग्राम-विशेष या नगर-विशेष को त्यागने का कोई विकल्प ही नहीं है वहां नामाधारित वर्ग के अनुसार यदि सम्पूर्ण नगर या ग्राम अनुकूल नहीं हो तो फ़िर वह ऐसे मोहल्ले या वार्ड में रहे जिसका वर्ग उस व्यक्ति को अनुकूल पड़ता हो। और, दूसरा अनुकूलता-प्रतिकूलता का पहले से ही ज्ञान हो जाने पर, अधिक सचेत होकर व्यक्ति के कार्य करने की सम्भावना बढ़ जाती है।

जहां तक प्रश्न 'आय' का है, यह भी वास्तु-शास्त्र का अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यद्यपि वास्तु के जानकार जानते हैं कि इस प्रसंग में प्रयुक्त 'आय' शब्द आजीविकोपार्जन अर्थात् 'कमाई' (earning) इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है, बल्कि यह बनाए जाने वाले वास्तु की लम्बाई और चौड़ाई पर निर्धारित वह आधारभूत तत्त्व है जिनके आधार पर पूर्वादि दिशाओं में निर्मेय वास्तु की शुभता और अशुभता का निर्धारण किया जाता है। 'ध्वज', 'धूम्र' आदि ये ८ आय न केवल समाज के विविध वर्गों के वास्तु-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं बल्कि, वास्तु में निर्मित अलग-अलग शालाओं और यहां तक कि इन शालाओं में प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं यथा आलमारी, पीठिका, चारपाई आदि के निर्माण में भी ये आय सामान रूप से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारणीय आधारभूत तत्त्व है – 'वास्तु-पिण्ड'। 'पिण्ड' एक गणितीय मान है जिसका साधन इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र के आधार पर किया जाता है। इसके साधन की अनेक विधियां वास्तु के ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं, जिनमें मेंघनाथ, गणेश दैवज्ञ, आगुलि, सुधाकर द्विवेदी आदि के मत उल्लेखनीय हैं। 'पिण्ड' के आधार पर ही किसी वास्तु के ध्वजादि आय, व्यय, अंश, वार, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र आदि का निर्धारण होता है। निष्कर्षत: यह किसी भी वास्तु के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आयाम है।

'वास्तु-पद-विन्यास' तो खैर भारतीय-वास्तु-शास्त्र की आत्मा ही जानिए। अंग्रेज़ी भाषा में इसके लिए 'sight-planning' शब्द प्रयोग में लाया जाता है किन्तु, यह भाषान्तरण कहीं से भी इस तत्त्व के साथ न्याय नहीं करता है। घर, देवालय, महल, तालाब आदि जिस वास्तु का निर्माण करना हो, उसके अनुसार, वास्तु को १००, ८१, ६४ इत्यादि विविध खण्डों में विभाजित करके प्रत्येक खंड

में एक-एक देवता की स्थापना ही सामान्यतया भारतीय-वास्तु-शास्त्र में 'वास्तु-पद-विन्यास' कहा जाता है। इन खण्डों के आधार पर ही वास्तु-पद की 'शतपद-वास्तु-चक्र', 'एकाशीति-वास्तुपद-चक्र', चतुष्षष्टि-वास्तुपद-चक्र' इत्यादि अनेकों संज्ञाएँ हैं। किन्तु यह खेद का विषय है कि वास्तु-पद-विन्यास को समझने में प्राय: आधुनिक और पारंपरिक दोनों ही प्रकार के विद्वान् गलती करते हैं। जिस प्रकार, आधुनिक दृष्टिकोण से इसे मात्र (वास्तु का) नक्शा 'lay-out' कहना कथमपि उचित नहीं है, ठीक उसी प्रकार, मात्र कर्मकांड की विषय-वास्तु मानकर केवल इस विन्यास या मंडल में स्थापित देवताओं की पूजा कर देना भी इस नितांत मार्मिक विचार के साथ न्याय करना नहीं है।

प्रिय अध्येताओं! ऊपर जितने भी महत्त्वपूर्ण वास्तुशास्त्रीय-तत्त्वों का उल्लेख और संक्षिप्त संकेत किया गया है, उनमें 'वास्तु-पद-विन्यास' को छोड़कर शेष सभी तत्त्वों का अध्ययन इस खंड में आप करेंगे। यहाँ इनका उल्लेख मात्र इनकी पृष्ठभूमि तैयार करना था, जो कि इनके महत्त्व को इंगित कर सके। तो आइए एक-एक करके इन तत्त्वों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करें।

१.४ वर्ग-विचार -

प्रिय अध्येता! अभी तक हमने भारतीय वास्तु-शास्त्र के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर एक सिंहावलोकन किया, जिनमें प्रथम तत्त्व 'वर्ग' है। ...आइए अब हम इस तत्त्व पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

'वर्ग' यह शब्द अपने आप में गुण-धर्म इत्यादि विविध मानकों के आधार पर विभाजन को सूचित करता है। तब प्रश्न यह है कि प्रसंग में प्रयुक्त 'वर्ग' शब्द से किस प्रकार का विभाजन प्रकट किया गया है? इस वर्गीकरण का आधार क्या है? वर्ग का प्रयोजन क्या है? आइए एक-एक करके इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढते हैं।

१.४.१ स्वरूप

स्वरों और व्यंजनों का ज्योतिष और वास्तु में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों के ही बहुत सारे सूत्र इन वर्णों पर ही टिके हैं। वास्तु-शास्त्र के तो आरम्भ में ही इनका महत्त्व 'वर्ग-विचार' के रूप में दृग्गोचर है ही। अकारादि वर्णों के आधार पर किसी भी व्यक्ति, ग्राम, नगर या वास्तु का वर्ग निर्धारित किया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि व्यक्ति इत्यादि के वर्ग-निर्धारण में उनके नामों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नाम के प्रथम अक्षर के आधार पर किसी व्यक्ति आदि का क्या वर्ग है यह तय होता है।

यह वर्ग संख्या में ८ हैं जो इस प्रकार हैं – गरुड़, विडाल (बिल्ला), सिंह, श्वान (कुत्ता), सर्प, मूषक, मृग और मेष। ये आठों वर्ग नाम के आद्यक्षर के आधार पर तय किये जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी का नाम 'अनन्त' है तो 'अ' वर्ण से नाम का आरम्भ होने के कारण उसका 'गरुड़' वर्ग है। इसी प्रकार यदि किसी महिला का नाम चंद्रिका है तो नाम का आद्य वर्ण 'च' होने के कारण उसका वर्ग 'सिंह' होगा। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि इन वर्गों का प्रयोजन क्या है?

१.४.२. प्रयोजन

इन वर्गों के आधार पर अनुकूल या प्रतिकूल दिशा का निर्धारण किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक वर्ग की एक दिशा निर्धारित है। इसका अध्ययन आप अगले पाठ्यबिंदु में करेंगे।

इन वर्गों के आधार पर ही 'काकिणी-विचार' संभव है। जैसा कि पूर्व में भी मैंने बताया कि किसी भी ग्राम या नगर में रहने के पूर्व यह विचार करना कि 'वह ग्राम या नगर उस व्यक्ति के लिए उचित है अथवा नहीं' इसे ही 'काकिणी' कहते हैं। इसका सविस्तार वर्णन आप इसी अध्याय में आगे के बिंदुओं में पढेंगे।

ग्रहों की दशा का निर्धारण भी गरुड़ आदि वर्गों के आधार पर ही तय होता है। अत: इस बिंदु की भी चर्चा इसी अध्याय में की जाएगी।

इसके अतिरिक्त चयनित भूमि पर वास्तु-निर्माण के पूर्व, उस भूमि का शल्य-शोधन किया जाता है। 'शल्य' से अभिप्राय है प्राणियों के कंकाल, चर्म आदि। भूमि के कितने नीचे किस प्राणि-विशेष का शल्य है, इसका ज्ञान अकारादि के वर्णों के आधार पर तय किया जाता है। इस पर भी विस्तृत चर्चा इस अध्याय में की जाएगी। तो, आइए एक-एक करके इन विषयों पर चर्चा करें।

१.४.२.१ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार

प्रिय अध्येता! बृहद्वास्तुमाला पं रामनिहोर द्विवेदी जी के द्वारा वास्तुशास्त्रीय-नियमों का एक संग्रहात्मक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में अनेकों आचार्यों के वास्तु-विषयक-मतों का संकलन विद्वान् ग्रंथकार ने किया है। यद्यपि ग्रन्थारम्भ में ही वर्गों के स्वामियों और दिशाओं का उल्लेख किया है

किन्तु आगे शल्याधिकार में वर्ग के स्वरूप का निरूपण श्लोकांश में किया गया है –

"आ-का-चा-टा-ए-त-शा-पा-यवर्गा:............"

आ = अवर्ग अर्थात् अ, ई, उ, ऋ, लृ; का = कवर्ग अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ; चा = चवर्ग अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ; टा = टवर्ग अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण; ए = एवर्ग अर्थात् ए, ऐ, ओ, औ; त = तवर्ग अर्थात् त,थ,द,ध,न; शा = श, ष, स, ह; पा = पवर्ग अर्थात् प, फ, ब, भ, म; य = यवर्ग अर्थात् य, र, ल, व।

यद्यपि शल्याधिकार के उक्त श्लोकांश में 'एवर्ग' को एक अतिरिक्त वर्ग के रूप में बताकर शल्य-निष्कासन और शोधन हेतु ९ वर्ग बनाए गए हैं तथापि, उक्त श्लोकांश में कथित इस अतिरिक्त 'ए'वर्ग को हटा दें तो कुल ८ वर्ग ही सभी वास्तु-सम्बन्धी विचारों के लिए स्वीकार्य किए गए हैं।

ऊपर बताए गए अकारादिवर्णों के वर्गों का निर्धारण किया गया है। इन आठ वर्गों के स्वामी इस प्रकार बताए गए हैं -

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुडो विडाल:, सिंहस्तथैव शुनकोरगमूषकैणा:।
मेष: क्रमेण गदिता: खलु पूर्वतोऽपि, य: पञ्चम: स रिपुरेष बुधैर्विवर्ज्य:।।

प्रतिपदार्थ –

अष्टकस्य वर्गस्य = आठ वर्गों के समूह के, पतय: = स्वामी, क्रमेण = क्रमानुसार, गरुड़, विडाल (बिल्ला), सिंह, शुनक: = कुत्ता, उरग: = सांप, मूषक: = चूहा, एण: = हिरन, मेष: = बकरा, गदिता: = कहे गए हैं।

पूर्वतोऽपि (गदिता:) = ये सभी मेषादि क्रम से पूर्वादि दिशाओं के स्वामी हैं।

य: पञ्चम: = इन वर्गों में (गणना में क्रम से यह जो पांचवां) है, स: रिपु: एव = वही शत्रु है; एष: बुधै: विवर्ज्य: = यही (पञ्चम) जो वैरी है उसे विद्वानों के द्वारा त्याज्य बताया गया है।

उदाहरण के तौर पर यदि कहें तो 'गरुड़' से पांचवां 'सर्प' उस (गरुड़) का वैरी है। इसी प्रकार, विडाल (बिल्ले) से पांचवां चूहा, 'सिंह' से पांचवां 'हिरन' उसका वैरी है। अत: अपने पांचवें वर्ग वाले स्थान, वर्ग, दिशा का त्याग करना चाहिए।

अकारादि-वर्ग-बोधक-सारिणी

वर्ण	अ, ई, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ	क, ख, ग, घ, ङ	च, छ, ज, झ, ञ	ट, ठ, ड, ढ, ण	त,थ,द,ध, न	श, ष, स, ह	प, फ, ब, भ, म	य, र, ल, व
वर्ग	गरुड़	विडाल	सिंह	कुत्ता	सांप	चूहा	हिरन	बकरा
वैरी	सांप	चूहा	हिरन	बकरा	गरुड़	विडाल	सिंह	कुत्ता

१.४.२.२ भूपालवल्लभ के अनुसार

भूपालवल्लभ में वर्णित अष्ट वर्ग, पहले बताए गए आठ वर्गों के समान ही हैं, केवल संज्ञा-भेद ही कहीं-कहीं है। ग्रन्थ के अनुसार आठों वर्ग इस प्रकार से हैं -

वर्गेशास्ताक्ष्र्यमार्जारसिंहश्वासर्पमूषकाः ।
इभेणौ पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात् पञ्चमो रिपुः ।।

वर्गेशाः = वर्गों के स्वामी, (क्रमशः) ताक्ष्र्यः = गरुड़, मार्जारः = बिल्ला (या बिल्ली), सिंहः, श्वा = कुत्ता, सर्पः, मूषकः = चूहा, इभः = हाथी, एणः = हिरन (हैं) ।

पूर्वतः = ये सभी क्रम से पूर्वादि-दिशाओं के स्वामी हैं ।

स्ववर्गात् = अपने वर्ग से, (गिनकर क्रमशः) पञ्चमो = पांचवां, तेषाम् = इन गरुड़ आदि का, रिपुः = शत्रु होता है ।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) ‘अनुभव’ का वर्ग ‘मार्जार’ है ()
(ख) ‘शिवकुमार’ का वर्ग ‘मूषक’ है ()
(ग) ‘नीरज’ का वर्ग ‘सर्प’ है ()
(घ) ‘सिंह’ वर्ग का वैरी ‘मूषक’ वर्ग है ()
(ङ) ‘श्वान’ वर्ग का वैरी ‘हिरण’ वर्ग है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ अकारादि वर्णों के गरुड़ आदि वर्गों के विषय में लिखें।

____

____

____

____

१.५ दिशा-विचार

प्रिय अध्येताओं! पहले आपने पढ़ा की अकारादि-वर्णों के अनुसार गरुड़ आदि वर्गों का निर्धारण किया जाता है। इन वर्गों के तो ज्योतिष-शास्त्र में कई प्रयोजन हैं। वस्तुत: ज्योतिष के कई सिद्धांतों के मूल में यही गरुड़-आदि वर्ग ही हैं, किन्तु वास्तु-शास्त्र में भी इन वर्गों का अतिशय महत्त्व है। इन वर्गों के आधार पर ही पूर्वादि दिशाओं का निर्धारण वास्तु के अलग-अलग प्रसंगों में करके तदनुरूप शुभाशुभ-व्यवहार या अनुकूलता तय की जाती है। तो आइए, देखें, किस प्रकार वर्गों की दिशाओं का निर्धारण शास्त्रों ने किया है।

१.५.१ मुहूर्त्तचिन्तामणि का मत

रामाचार्य ने वास्तुप्रकरण में वर्गों और उनके वैरियों का उल्लेख करते हुए अंतिम चरण में उनकी दिशाओं का भी नामोच्चारण संकेत मात्र से ही किया है, जो इस प्रकार है -

..................................'बलिन: स्युरैन्द्र्या:'।

बलिन: = (पूर्व में कथित वर्ग) बली, स्यु: = होवें, ऐन्द्र्या: = पूर्व आदि दिशाएं (दिशाओं में) ।

अब चूंकि इन्द्र पूर्व दिशा के स्वामी माने गए हैं अत: 'ऐन्द्र्य' शब्द पूर्व दिशा का वाचक है। यहाँ 'ऐन्द्र्य' शब्द में प्रयुक्त बहुवचन अन्य दिशाओं का, वर्गों के क्रमानुसार, संकेत करता है।

१.५.२ भूपालवल्लभ का वचन

यद्यपि 'भूपालवल्लभ' के मत को पहले ही बिंदु में कह दिया गया है तथापि पुन: दिङ्निर्धारण के क्रम में इसे दुहराया जा रहा है -

.... पूर्वतस्तेषां......... ।

तेषाम् = इन गरुड़ आदि वर्गों का, पूर्वत: = पूर्व दिशा से (आरम्भ करके स्वामित्व होता है)।

१.५.३ वास्तुसौख्य का मत

वास्तुसौख्य में शल्यज्ञान-प्रकरण में अवर्गादियों के गरुड़ इत्यादि स्वामी बताने के क्रम में ग्रंथकार ने इन वर्गों की दिशा का भी संकेत में उल्लेख किया है। ग्रन्थोक्त वचन इस प्रकार है –

अकारादिषु सर्वेषु दिक्ष्वष्टासु यथाक्रमात्।

अर्थात् अकारादि वर्गों में क्रमश: ८ दिशाओं में स्वामित्व-व्यवस्था है। कहने का तात्पर्य यही है कि अकार इत्यादि आठों वर्ग क्रम से पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य, उत्तर, ईशान इन ८ दिशाओं के स्वामी हैं।

अकारादि वर्गों की दिक्-स्वामित्व-बोधक-तालिका

वर्ण	अ, ई, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ	क, ख, ग, घ, ङ	च, छ, ज, झ, ञ	ट, ठ, ड, ढ, ण	त,थ,द, ध,न	श, ष, स, ह	प, फ, ब, भ, म	य, र, ल, व
वर्ग	गरुड़	विडाल	सिंह	कुत्ता	सांप	चूहा	हिरन	बकरा
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	वायव्य	पश्चिम	नैऋत्य	उत्तर	ईशान

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) स्वर ताक्ष्र्य वर्ग में पठित नहीं हैं ()
(छ) अकारादि वर्गों की संख्या ८ है ()
(ज) वास्तुसौख्य के शल्याधिकार में वर्गों की दिशाओं का उल्लेख है ()

(झ) णकार वर्ण श्वान वर्ग में परिगणित नहीं है ()

(ञ) मेष वर्ग उत्तर दिशा का स्वामी है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ गरुड़ आदि वर्गों की दिशा के विषय में लिखें।

____

____

____

____

१.६ काकिणी-विचार

'ककते गणनाकाले चञ्चलीभवति इति काकिणी' अर्थात् गणना के समय जो स्थिर नहीं है। काकिणी के लिए ऐसा क्यूं कहा गया कि जो चल है। कारण यह है कि प्राचीन-काल में व्यवहार में प्रयोग लाई जाने वाली मुद्रा की 'काकिणी' संज्ञा हैं। अब चूंकि धन चल होता है कभी एक-समान नहीं रहता है। व्यापारी हो या ग्राहक सभी के पास जो भी धन है वह क्रय-विक्रय में सतत प्रयोग में आने के कारण कभी भी स्थिर अर्थात् एक-समान नहीं रहता है, घटता-बढ़ता रहता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में जो मुद्रा थी उसकी 'काकिणी' संज्ञा थी। 'काकिणी' का मान 'लीलावती' में इस प्रकार बताया गया है –

'वराटकानां दशकद्वयं यत् सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्र:'

अर्थात् २० वराटक = १ काकिणी

४ काकिणी = १ पण

तब प्रश्न यह है कि इस 'काकिणी' का यहाँ वास्तु में किस-प्रकार का उपयोग होता है? तो

मित्रों! बात यह है कि यहाँ प्रयुक्त 'काकिणी' शब्द वस्तुत: उपलक्षण अर्थात् संकेत मात्र है। यह शब्द लाभ-हानि का संकेत कर रहा है। काकिणी वस्तुत: किसी भी ग्राम-विशेष या नगर-विशेष

में किसी भी व्यक्ति के निवास के निर्णय में सहायक होती है। और इस निर्णय के मूल में यह जिज्ञासा छिपी है कि अमुक ग्राम या नगर में किसी भी व्यक्ति का रहना लाभ-दायक है या नहीं।

इस दृष्टि से तो यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय हुआ। क्यूंकि यदि गणना के द्वारा इस बात का पहले ही मनुष्य पता लगा ले कि अमुक स्थान पर रहना उसके लिए लाभप्रद है या हानिप्रद तो उसी के अनुसार स्थान-विशेष में वास्तु-निर्माण के विषय में वह विचार करे अन्यथा अन्यत्र निवास पर विचार करे।

चूंकि इसके द्वारा सबसे पहले उस ग्राम या नगर का चयन करना होता है जहां पर वास्तु-निर्माण अनुकूल और लाभप्रद हो इसीलिए वास्तु के ग्रंथों में सबसे पहले 'काकिणी-विचार' ही किया जाता है।

१.६.१ बृहद्वास्तुमाला का मत

बृहद्वास्तुमालाकार काकिणी पर विचार करते हुए कहते हैं –

स्ववर्गं द्विगुणीकृत्य परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिक: स ऋणी भवेत्॥

प्रतिपदार्थ – स्ववर्गम् = अपने वर्ग को, द्विगुणीकृत्य = दुगुना करके, परवर्गेण = दूसरे के वर्ग से, योजयेत् = जोडे। अष्टभिस्तु हरेद्भागं = फिर उसमे आठ का भाग देने पर जो शेष रहता है उसे 'काकिणी' कहते हैं। योऽधिक: = जिसकी काकिणी अधिक होती है, स ऋणी भवेत् = वह ऋणी (कर्जदार) होता है, योऽधिक: स ऋणी भवेत्।

प्रिय अध्येता! यहां श्लोक में जो वर्ग शब्द आया है उसका आशय पूर्व में चर्चित अकारादि वर्णों पर आधारित वर्ग ही है। यहाँ जो 'स्ववर्ग' और 'परवर्ग' की बात कही गयी है उसका अभिप्राय है वह व्यक्ति जिसे किसी ग्राम या नगर में रहना है, उसके नाम के आद्यक्षर के आधार पर ही उसका वर्ग निर्धारित होता है, जिसे श्लोक में 'स्ववर्ग' शब्द से कहा गया है। और पर-वर्ग से तात्पर्य उस ग्राम या नगर के नाम के आद्यक्षर से आधारित वर्ग से है जहां व्यक्ति को रहना है। और इन दोनों के वर्गों का निर्धारण हो जाने पर फिर श्लोक में बतायी गयी रीति के अनुसार व्यक्ति और स्थान के वर्ग से दोनों की काकिणी का साधन करने के बाद व्यक्ति या नगर में से किसी एक के ऋणी होने का निर्णय लिया जाता है।

१.६.२ काकिणी-साधन

प्रतिपदार्थ से यद्यपि यह विषय स्पष्ट ही है तथापि चूंकि काकिणी के साधन में गणित अपेक्षित है अत: उदाहरणों के बिना इसका प्रत्यक्ष-ज्ञान हो पाना कठिन हो जाता है। इसलिए आप लोगों की सुविधा के लिए यहां दो उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिससे विषय अधिक स्पष्ट हो सके और इसी का अनुसरण करके आप भी काकिणी का साधन कर सकें।

१.६.२.१ प्रथम उदाहरण

मान लीजिए 'माधव' को यह निर्णय लेना है कि 'जयपुर' में उसका निवास लाभ-प्रद होगा या नहीं। तो इसके लिए व्यक्ति और स्थान दोनों की काकिणी का ज्ञान करेंगे।

'माधव' का आद्यक्षर मा (या म) पवर्ग का वर्ण होने से उसका वर्ग 'मूषक' हुआ जिसकी संख्या ६ है। 'जयपुर' का आद्यक्षर 'ज' चवर्ग का वर्ण है, अत: इसका वर्ग 'सिंह' हुआ, जिसकी संख्या ३ है। यदि माधव की काकिणी का साधन करेंगे तो माधव का वर्ग 'स्ववर्ग' होगा और जयपुर का वर्ग 'परवर्ग' होगा। इसी प्रकार, यदि जयपुर की काकिणी का विचार करेंगे तो जयपुर का वर्ग 'स्ववर्ग' और माधव का वर्ग 'परवर्ग' होगा।

माधव की काकिणी – (६ × २) + ३ = १५;

१५/८ = शेष ७, माधव की काकिणी

जयपुर की काकिणी – (३ × २) + ६ = १२

१२/८ = शेष ४, जयपुर की काकिणी

'योऽधिक: स ऋणी भवेत्' के अनुसार, चूंकि माधव की काकिणी अधिक है अत: माधव ऋणी है।

निष्कर्ष रूप में, जयपुर का माधव पर ऋण होने के कारण, यदि माधव इस नगर में रहता है तो उसके लिए लाभप्रद स्थिति नहीं होगी।

१.६.२.२ द्वितीय उदाहरण

मान लीजिए कि 'कोकिला' को यह निर्णय लेना है कि 'दमोह' में रहना उसके लिए लाभदायक है अथवा नहीं तो इसके लिए पुन: व्यक्ति और स्थान की काकिणी का विचार करेंगे। 'कोकिला' का आद्यक्षर 'को (या क) कवर्ग का वर्ण होने से 'विडाल' वर्ग का हुआ जिसकी संख्या २ है। 'दमोह' का आद्यक्षर 'द' तवर्ग का वर्ण होने से 'सर्प' वर्ग का हुआ जिसकी संख्या ५ है।

कोकिला की काकिणी – (२ × २) + ५ = ९;

९/२ = शेष १, कोकिला की काकिणी

दमोह की काकिणी – (५ × २) + २ = १२;

१२/८ = शेष ४, दमोह की काकिणी

यहां चूंकि 'दमोह' की काकिणी, 'कोकिला' की काकिणी से अधिक है अत: दमोह ऋणी हुआ। फलत: यदि कोकिला दमोह में रहती है तो यह स्थान उसके लिए लाभप्रद रहेगा।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) _____________ गणनाकाले चञ्चलीभवति इति काकिणी।
(ख) वराटकानां ____________ यत् सा काकिणी।
(ग) स्ववर्गं द्विगुणीकृत्य ____________ योजयेत्।
(घ) योऽधिक: स ____________ भवेत्।
(ङ) फूलचन्द्र का वर्ग ________ है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ काकिणी के आधार पर यः निरूपित करें कि 'सुरेश' का हल्द्वानी में निवास लाभप्रद है अथवा नहीं।

____

____

१.७ ग्रह-दशाविचार

प्रिय अध्येता! मनुष्य अपने जीवन में वास्तु-निर्माण (चाहे वह घर हो या देवालय या फिर बावड़ी, कूँआ आदि क्यूं न हो) बार-बार नहीं करवाता है, क्यूंकि इसमें अत्यधिक धन, श्रम और समय लगता है। इसके अतिरिक्त यह स्थिर सम्पत्ति है, अत: प्रतिकूल परिणाम मिलने पर, इस वास्तु को कहीं स्थानान्तरित भी नहीं किया जा सकता है। अत: वास्तु-निर्माण कराने वाले व्यक्ति का उसके चिर-स्थायित्व के बारे में सोचना अत्यन्त स्वाभाविक है। चिर-स्थायित्व में वास्तु-निर्माण-विधि एवं प्रयोज्य-वस्तु के यथोचित होने के बाद भी यदि उचित काल में वास्तु-निर्माण आरम्भ नहीं हुआ या अनुकूल समय में द्वार-स्थापन, वास्तु-प्रवेशादिकार्य नहीं हुए तो भी उस वास्तु का चिर-स्थायित्व संशयात्मक ही रहेगा।

इस अनुकूल काल-निर्धारण के अनेक प्रकार और चरण हैं वास्तु-निर्माण के दौरान, जिनमें आरम्भ में ही एक महत्त्वपूर्ण निर्धारकतत्त्व 'ग्रहदशा-विचार' है।

१.७.१ बृहद्वास्तुमाला

बृहद्वास्तुमाला ग्रन्थ के आरम्भ में ही ग्रह की दशा और फल की चर्चा की गयी है। यहां उक्त दशा, ग्रहों की दशाएं विंशोत्तरी दशा के समान ही हैं।

गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात्।
गृहपतेरभिधापुरदिङ्गिता नवहृता भवनस्य दशा भवेत्॥
सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दसौम्याश्च केतुर्भृगुज: क्रमेण।
षड्दिङ्नगाधृत्यवनीश्वराङ्कचन्द्रास्सप्तनखास्तदब्दा:॥
स्वेष्वेषु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं च दशाक्रमेण॥

प्रतिपदार्थ: - मघवादिदिशि = मघवा अर्थात् इन्द्र, जो कि पूर्व दिशा के स्वामी हैं उस पूर्व

दिशा में, क्रमात् = क्रम से, गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता = गज ८, शर ५, ऋतु ६, युग ४, अश्वि २, मही १, गुण ३ और द्वि २ ये अङ्क मानना चाहिए।

दिशाओं के अंकों की प्रदर्शिका सारिणी

वर्ण	अ, ई, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ	क, ख, ग, घ, ङ	च, छ, ज, झ, ञ	ट, ठ, ड, ढ, ण	त,थ, द,ध, न	श, ष, स, ह	प, फ, ब, भ, म	य, र, ल, व
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
अंक	८	५	६	४	७	१	३	२

गृहपतेरभिधापुरदिङ्गिता = गृहस्वामी के नाम (के आद्यक्षर से प्रदर्शित वर्ग) का अङ्क और पुर के नाम (के आद्यक्षर से प्रदर्शित वर्ग) का अङ्क एवं दिशा के अङ्क (का योग), नवहृता = नौ ९ से भाग देने पर, भवनस्य दशा भवेत् = शेष-तुल्य ग्रह की दशा होती है।

सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दसौम्याश्च केतुर्भृगुज: क्रमेण = (दशा के) क्रम से सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, अगु अर्थात् राहु, जीव अर्थात् गुरु, मन्द अर्थात् शनि, सौम्य अर्थात् बुध, केतु और भृगुज अर्थात् शुक्र इन ग्रहों की दशाएं क्रमानुसार आती हैं।

षड्दिङ्नगाधृत्यवनीश्वराङ्कचन्द्राघनास्सप्तनखास्तदब्दा: = (ऊपर बाते गए) ग्रहों की दशा के वर्ष क्रमशः षट् ६, दिङ् १०, नग ७, आधृति १८, अवनीश्वर अर्थात् नृप १६, अङ्कचन्द्र १९, अघना १७, सप्त ७, नख २० हैं ।

स्वेष्वेषु वर्षप्रमितेषु = अपने-अपने दशा के इन वर्षों में, तेषां दशाफलं = उन ग्रहो की दशा के फल, तत्र निवासिनां च = उस घर (वास्तु) में निवास करने वाले को भोगना पड़ता है।

च दशाक्रमेण = और, ऊपर बताए गए ग्रहों की दशा-क्रम के अनुसार क्रमश:, तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं = एक ग्रह के बाद दूसरे ग्रह की दशा एवं अन्तर्दशा आदि के फलों का विचार करना चाहिए।

१.७.२ दशासाधनविधि

प्रिय अध्येता! जिस प्रकार जन्म-कुदाली में ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा आदि के आधार पर फल के

काल का निर्धारण करते हैं ठीक उसी प्रकार जब गृह आदि वास्तु का निर्माण करते हैं तब उस गृह के दशा-अंतर्दशा के आधार पर उसमें रहने वाले व्यक्ति को वास्तु-निर्माण काल के आधार पर समय-समय पर शुभ या अशुभ फल भोगना पड़ता है। तब यहाँ एक जिज्ञासा उठती है कि कुण्डली में तो चंद्राधारित नक्षत्रों के आधार पर दशा-अन्तर्दशा काल का निर्धारण किया जाता है किन्तु गृह निर्माण के समय दशा एवं अन्तर्दशा के निर्धारण का मापदंड क्या है?

इसी प्रश्न का उत्तर बृहद्वास्तुमालाकार देते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति के वास्तु का निर्माण होना है अर्थात् जो उस वास्तु का स्वामी है उसके नाम के आद्यक्षर के आधार पर उसकी वर्ग की दिक् संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिए, फ़िर जिस नगर में उसे वास्तु का निर्माण करना है उस नगर नाम के आद्यक्षर के आधार पर उसकी भी वर्ग की दिक् संख्या ज्ञात कर लेनी चाहिए और फिर दिशा के अंक, जिसका कि पूर्व के बिंदु में भी उल्लेख किया गया है उसके अंक का ज्ञान करने के बाद इन तीनो ही अंकों का योग करना चाहिए। फिर योग को ९ से भाग देने पर जो शेष आए उस अंक के अनुसार क्रम से ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा आदि का निर्धारण करना चाहिए।

आइए, एक उदाहरण के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करते हैं।

मान लीजिए 'जयपुर' में 'अनिमेष' को 'उत्तर' दिशा में मकान बनाना है, तो ऐसे में वास्तु-निर्माण के समय किस ग्रह की दशा चलेगी? यह प्रश्न है।

'अनिमेष' का आद्यक्षर 'अ' है, जिसका वर्ग 'अवर्ग' होने के कारण उसकी दिक् संख्या – ८

'जयपुर' का आद्यक्षर 'ज' है, जिसका वर्ग 'चवर्ग' होने के कारण उसकी दिक् संख्या – ६

उत्तर दिशा का अंक – ३

८+६+३ = १७/९, शेष ८

शेष ८ होने के कारण केतु की महादशा में वास्तु-निर्माण होगा, जो कि ७ वर्ष का होगा।

इसी प्रकार यदि दूसरा उदाहरण लें जहां 'नलिनी' को 'लखनऊ' में 'पूर्व' दिशा में मकान बनाने या खरीदने पर विचार करना है।

'नलिनी' का आद्यक्षर 'न' है, जिसका वर्ग 'तवर्ग' होने के कारण उसकी दिक् संख्या – ७

'लखनऊ' का आद्यक्षर 'ल' है, जिसका वर्ग 'लवर्ग' होने के कारण उसकी दिक् संख्या – ३

'पूर्व' दिशा का अंक – ८

७+३+८ = १८/९, शेष ०

शेष ० होने के कारण शुक्र की महादशा में वास्तु-निर्माण होगा, जो कि २० वर्ष का होगा।

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) 'पूर्व' दिशा का अंक ७ है। () (ङ) (×)
(ख) 'दक्षिण' दिशा का अंक ६ है। ()
(ग) 'नैर्ऋत्य' का अंक ८ है। ()
(घ) 'लवर्ग' की दिक् संख्या ३ है। ()
(ङ) शेष ८ होने पर गुरु की महादशा आरम्भ होगी। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ वेदाङ्गज्योतिष में वर्णित युग के सम्वत्सरों और उनके देवताओं के नाम लिखें।

____

____

____

____

१.८ सारांश –

आठ वर्गों के समूह के स्वामी क्रमानुसार गरुड़, विडाल (बिल्ला), सिंह, शुनक (कुत्ता), उरग (सांप), मूषक (चूहा), एण (हिरन), मेष (बकरा) कहे गए हैं। ये सभी मेषादि क्रम से पूर्वादि दिशाओं के

स्वामी हैं। इन वर्गों में गणना में क्रम से जो पांचवां है वही शत्रु है इसे विद्वानों के द्वारा त्याज्य बताया गया है। उदाहरण के तौर पर 'गरुड़' से पांचवां 'सर्प' उस (गरुड़) का वैरी है। इसी प्रकार, विडाल (बिल्ले) से पांचवां चूहा, 'सिंह' से पांचवां 'हिरन' उसका वैरी है। अत: अपने पांचवें वर्ग वाले स्थान, वर्ग, दिशा का त्याग करना चाहिए। अकार इत्यादि आठों वर्ग क्रम से पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य, उत्तर, ईशान इन ८ दिशाओं के स्वामी हैं। काकिणी-साधन के लिए अपने वर्ग को दुगुना करके, दूसरे के वर्ग से जोडे। फिर उसमे आठ का भाग देने पर जो शेष रहता है उसे 'काकिणी' कहते हैं। जिसकी काकिणी अधिक होती है, वह ऋणी (कर्जदार) होता है। वास्तु-निर्माण-काल की दशा-अन्तर्दशा निर्धारण के लिए गृहस्वामी के नाम (के आद्यक्षर से प्रदर्शित वर्ग) का दिक् अङ्क और पुर के नाम (के आद्यक्षर से प्रदर्शित वर्ग) का दिक् अङ्क एवं दिशा के

अङ्क के योग को ९ से भाग देने परशेष-तुल्य ग्रह की दशा होती है।

१.९ शब्दावली –

विडाल: = बिल्ला

शुनक: = कुत्ता

उरग: = सांप

मूषक: = चूहा

एण: = हिरन

तार्क्ष्य: = गरुड़

मार्जार: = बिल्ला (या बिल्ली) सिंह:

इभ: = हाथी

गृहपतेरभिधा = गृह-स्वामी का नाम

अगु: = राहु

१.१० बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.२ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.३ (क) ककते

(ख) दशकद्वयम्

(ग) परवर्गेण

(घ) ऋणी

(ङ) हिरण

प्र.४ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (×)

१.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. राम मनोहर द्विवेदी (२०१२) बृहद्वास्तुमाला, चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२. कमलाकान्त शुक्ल (१९९९), टोडरमल्लविरचितं वास्तुसौख्यं, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

३. डा. मुरलीधर चतुर्वेदी (२००७), रामदीनविरचितं बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् श्रीधरीहिन्दीव्याख्यासहितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

१.१२ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. डा. अशोक थापलियाल (२०११), वास्तुप्रबोधिनी, भारतीय ज्योतिष, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

१.१३ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. अकारादिवर्गो के स्वामी और दिशा पर प्रकाश डालिए।

२. 'हरीश' और 'कोलकाता' की काकिणी का साधन करके यह बताएँ कि इनमें से कौन ऋणी रहेगा?

३. 'चन्द्रभागा' यदि 'चेन्नई' में 'ईशान' दिशा में वास्तु-निर्माण करे तो कौन से गृह की दशा में वास्तु का निर्माण आरम्भ होगा?

इकाई - २ इष्टाय एवं नक्षत्र निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

२.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! वास्तु-शास्त्र डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के द्वितीय खण्ड में आपका स्वागत है। इस खण्ड में हम भारतीय-वास्तु-शास्त्र के मूल सिद्धान्तों में से दो – 'इष्ट आय' और 'इष्ट नक्षत्र' पर विस्तार से चर्चा करेंगे। जैसा कि मैंने पिछले पाठ में यह बात कही थी कि किसी भी प्रकार के वास्तु के निर्माण में कुछ आधारभूत बातें ध्यान में रखनी होती हैं, जिन पर अनेकों वास्तु-शास्त्रीय नियम और सिद्धान्त बड़ी ही दृढ़ता से टिके हैं। ऐसे ही कुछ आधारभूत तत्त्वों में प्रमुख हैं 'इष्टाय-साधन' और 'इष्ट-नक्षत्र-निर्धारण'। आय और नक्षत्र के आधार पर गृह के पिण्ड का साधन किया जाता है। इसके साथ ही व्यय, अंश, आयु, ध्रुवादि गृहों के प्रकार इत्यादि अनेकों विचार आय और नक्षत्र के निर्धारण पर ही टिके हैं।

प्रथम खण्ड की इस द्वितीय इकाई में वास्तु के मूल तत्त्वों में से एक 'आय' का विचार किया जाएगा। आय का विचार कैसे करते हैं? इसके कितने प्रकार हैं? इसके आधार पर जाति-कारकत्व, राशि के आधार पर शुभाशुभत्व आदि का ज्ञान किस प्रकार किया जाता है इन सभी विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे, जिससे कि भारतीय-वास्तुशास्त्र में 'आय-विचार' के स्वरूप, प्रयोजन और महत्त्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित कर सकने में आपको मदद मिलेगी। इसके अलावा इस इकाई में इष्ट-नक्षत्र पर भी चर्चा की जाएगी।

२.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आयों के प्रकारों का नामोल्लेख कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- आय के शुभाशुभत्व के स्वरूप को समझ सकने में कुशल हो सकेंगे।
- जातियों व आय के सम्बन्ध को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- राशि-विशेष में आय-विशेष लाभदायक है या नहीं इसका निर्धारण कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- इष्ट-नक्षत्र के निर्धारण में निपुण हो सकेंगे।

२.३ आय के प्रकार एवं दिशा -

मित्रों! जहां तक प्रश्न 'आय' का है, यह भी वास्तु-शास्त्र का अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार 'आय' शब्द का अर्थ है - धनागम, प्राप्ति और लाभ। किन्तु ये सभी

अर्थ अपने पूर्ण स्वरूप में वास्तुशास्त्रीय-आय की अवधारणा को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। इसका कारण यह है कि ध्वांक्ष इत्यादि सभी आय लाभप्रद नहीं होते हैं। अब प्रश्न यह है की कौन-कौन से आय लाभप्रद और कौन से हानिप्रद होते हैं? यह कैसे निर्धारित होता है कि अमुक आय लाभप्रद या हानिप्रद होता है? और सबसे महत्त्वपूर्ण की आय कितने प्रकार का होता है?

तो आइए, सबसे पहले आय के भेद पर टोडरानन्द जी के मत को जानते हैं।

२.३.१ टोडरानन्द का मत -

टोडरानन्द ने आय का साधन करने के साथ-साथ इसके भेद का नामोल्लेख भी किया है। उनके अनुसार,

................................"ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा।।
ध्वजो धूम्रो हरिश्वागौः खरेभौ वायसोऽष्टमः ।
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः ।।

प्रतिपदार्थ – ते ध्वजाद्याः अष्टधा स्युः = वे ध्वजादि आय संख्या में ८ हैं। ध्वजो धूम्रो हरिश्वागौः खरेभौ वायसोऽष्टमः = १. ध्वज, २. धूम्र, ३. हरिः अर्थात् सिंह, ४. श्वा अर्थात् कुत्ता, ५. गौः अर्थात् गाय, ६. खरः अर्थात् गधा, ७. इभः अर्थात् हाथी, ८. वायसः अर्थात् कौआ।

च = और (इन आयों के भेद के साथ-साथ), ध्वजादीनाम् अष्टानां = ध्वज आदि इन आठ आयों की, पूर्वादिदिक्षु = पूर्व इत्यादि दिशाओं में, अवस्थितिः = स्थिति (होती है)।

ध्वजादि आयों के भेद और उनकी दिशाएं

आय	ध्वज	धूम्र	हरि (सिंह)	श्वान	गौ	खर (गधा)	इभ (हाथी)	वायस (कौआ)
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

२.४ आय का साधन

मित्रों! कौन सा आय लाभप्रद है और कौन सा नहीं, इस विषय पर विचार करने के पूर्व पहले यह जान लेना उचित होगा कि निर्माण किए जाने वाले वास्तु का आय ध्वज है, धूम्र है, ध्वांक्ष है या कुछ और? तब प्रश्न यह है कि वास्तु के आय के भेद-विशेष को कैसे जानें?

वस्तुतः वास्तु-शास्त्रीय ग्रंथों में 'आय' के साधन को लेकर कुछ भ्रम की स्थिति प्रतीत होती

है। आचार्य टोडर वास्तु के क्षेत्रफल के आधार पर आय का साधन करने का सूत्र रखते हैं। आय के आधार पर पिण्ड का साधन बताया गया है। और पिण्ड के ज्ञान के आधार पर आय के ज्ञान की बात की गयी है। प्रथमदृष्टया यहां भ्रमात्मक स्थिति प्रतीत होती है किन्तु, ऐसा है नहीं क्योंकि आय और पिण्ड का अन्योन्याश्रयत्व वस्तुत: गणित की शुद्धता को परखने की एक प्रक्रिया-मात्र है। यह कुछ उसी प्रकार है जैसे भाग की प्रक्रिया में भागफल और भाजक में परस्पर गुणा करके शेष जोड़ने पर यह यदि भाज्य के तुल्य हो जाता है तो भाग-प्रक्रिया शुद्ध मानी जाती है। ठीक इसी प्रकार 'आय' के साधन में 'पिण्ड' का उपयोग करने पर जो 'आय' आता है यदि उसी 'आय' के आधार पर 'पिंड' का साधन करने पर वही 'पिण्ड' आए जो आय के साधन में प्रयोग में लाया गया, तो 'आय' और 'पिण्ड' इन दोनों के साधन की प्रक्रिया दोषरहित मानी जानी चाहिए।

तब ऐसे में प्रश्न उठता है, कि दोनों के अन्योन्याश्रयत्व की स्थिति में पहले किसका साधन किया जाए? और वो भी कैसे? ऐसे में दो बातें ध्यान में रखनी होगी। पहली यह कि 'आय' के साधन के पूर्व अभीष्ट आय का निर्धारण किया जाता है, जिसका आधार अलग-अलग वास्तु के लिए निर्धारित किए गए अलग-अलग आय का सिद्धांत है। उदाहरण के तौर पर, सभी प्रकार के वास्तु के लिए 'ध्वज' आय अनुकूल होता है। आसनादि के निर्माण के लिए 'सिंह' आय निर्धारित किया गया है। इससे जिस वास्तु का निर्माण करना अभीष्ट हो उसके लिए निर्धारित आय ही 'इष्ट-आय' कहलाता है। दूसरी बात यह है कि, इष्ट आय का एक बार निर्धारण करने के बाद उसी के अनुकूल 'पिण्ड' का साधन करना चाहिए। और 'पिण्ड' के साधन के अनुरूप वास्तु का क्षेत्रफल भी रखना चाहिए ताकि क्षेत्रफल के आधार पर पूर्व-निर्धारित अभीष्ट-आय ही प्राप्त हो। और इसी प्रकार क्षेत्रफल के आधार पर 'आय-साधन' को टोडरानन्द जी ने निरूपित किया है।

२.४.१ टोडरानन्द का मत

ऊपर के श्लोक में जहां टोडरानन्द जी ने आयों के प्रकार बताए हैं उसी श्लोक के आरम्भ में उनके साधन की भी बात आचार्य ने कही है।

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्तत:।
यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा॥

प्रतिपदार्थ – विस्तारेण हतं दैर्घ्यं = जिस वास्तु के आय का साधन करना हो उसके विस्तार अर्थात् चौड़ाई को दैर्घ्य अर्थात् लम्बाई से गुणा करके, तत: अष्टभि: विभजेत् = उस गुणनफल को ८ से भाग देने पर, यच्छेषं = जो शेष बचे उसके अनुसार, स आयो भवेत् = वही आय

होवे। ते ध्वजाद्या अष्टधा स्यु: = वे ध्वजादि आय ८ हैं।

अब यहां ये समझना होगा कि वास्तु के अनुरूप ही आय का निर्धारण करना चाहिए। एक बार आय तय हो जाने पर फिर उसी के अनुसार वास्तु की लम्बाई-चौड़ाई भी ऐसी रखें कि शेष के रूप में पूर्व-निर्धारित आय प्राप्त होवे।

उदाहरण

माना किसी आयताकार वास्तु की लम्बाई २५ हाथ और चौड़ाई २१ हाथ है। टोडरानंद के मतानुसार इस वास्तु का आय जानने के लिए -

लम्बाई २५ × चौड़ाई २१ = ५२५

५२५/८ = लब्धि: ६५, शेषं ५ अत: शेष के अनुसार इस वास्तु की 'गौ' आय होगी।

२.४.२ रामाचार्य का मत

'मुहूर्त्तचिन्तामणि' ग्रन्थ के रचयिता रामाचार्य जी ने आय, व्यय, वार, द्रव्य इत्यादि के साधन को स्पष्ट करने के क्रम में अधोलिखित श्लोक में 'आय' के साधन को भी निरूपित किया है। अत: सम्पूर्ण श्लोक का प्रतिपदार्थ न करते हुए यहाँ केवल आय-सम्बन्धी अंश का ही शब्दार्थ किया जा रहा है। संपूर्ण श्लोक का अर्थ प्रसंगवशात बाद में किया जाएगा।

पिण्डे नवा................................गुणिते क्रमेण।

विभाजिते नाग.........................श्च ।। आयो.......... ।

प्रतिपदार्थ – पिण्डे = जिस वास्तु का निर्माण किया जाना है, उसके पिण्ड को, क्रमेण = क्रम से (चूंकि अन्य वारादियों के भी साधन का उल्लेख इसी एक श्लोक में किया है, जिसके आदि में 'आय' के साधन का विचार किया गया है, उसके क्रम में) नव गुणिते = ९ से गुणित करके, च = और (गुणा करने के बाद) विभाजिते नाग = नाग अर्थात् ८ से भाग देने पर, (उस वास्तु का) आय: = 'आय' निर्धारित किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि यह 'पिण्ड' क्या बला है?

वस्तुत: इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र के आधार पर पिण्ड का साधन किया जाता है। पिण्ड-साधन की अनेकों विधियां वास्तु-शास्त्रीय ग्रंथों में अलग-अलग आचार्यों की मिलाती हैं। पिण्ड-साधन के विषय में अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा की जाएगी। यहां उदाहरण के लिए एक 'पिण्ड-मान' की कल्पना कर ली जाती है।

उदाहरण

माना 'पिण्ड' २१० है। २१०× ९ = १८९०

१८९०/८ = लब्धि: २३६, शेषं २, अत: शेष के अनुसार वास्तु की आय 'धूम' है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ट) 'आय' के ९ भेद हैं ()

(ठ) 'सिंह' आय की दिशा दक्षिण है ()

(ड) 'खर' आय की अनुकूल दिशा पूर्व है ()

(ढ) आय-साधन हेतु लम्बाई और चौड़ाई के गुणनफल को ८ से भाग देना चाहिए ()

(ण) शेष ४ हो तो 'श्वान' आय होगा ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ कल्पित 'पिण्डमान' के आधार पर आय का साधन करें।

____

____

____

____

२.५ आय का स्वरूप

प्रत्येक आय का अपना एक स्वरूप है जो कि वास्तु एवं फल की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिस आय का जैसा नाम वैसा ही उसका स्वरूप समझना चाहिए। स्वरूप या प्रकृति के आधार पर नामकरण की यह परम्परा सनातन संस्कृति में आदिकाल से ही चली आ रही है। भगवान् 'हनुमान' का नाम उनके हनु के स्वरूप के कारण ही मिला। इसी प्रकार भगवान् गणेश का 'एकदन्त' यह नाम या फ़िर उनके पिता महादेव का 'नीलकंठ' यह नाम उनके अपने-अपने स्वरूप के कारण ही पड़ा है। आय के स्वरूप पर विचार 'बृहद्वास्तुमाला' ग्रन्थ में मिलता है।

२.५.१ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार

ग्रन्थकार ने इन आयों के स्वरूप पर प्रकाश डाला है जो कि अत्यन्त ही विचित्र एवं रहस्यात्मक है। ग्रन्थानुसार –

ध्वांक्ष: शिल्पितपस्विनां हितकरस्तेषां मुखं नामवद्,
ध्वांक्ष: काकमुखो विडालवदनो धूमो ध्वजो मानुष: ।
सर्वे पक्षिपदा हरेरिव गला हस्ता नरस्येव तत्,

प्रतिपदार्थ: -

ध्वांक्ष: शिल्पितपस्विनां हितकर: = शिल्पकारों और तपस्वियों के लिए 'ध्वांक्ष' आय लाभप्रद होता है। तेषां मुखं नामवद् = इन ध्वांक्ष आदि आयों का मुख उनके नाम के अनुरूप होता है । ध्वांक्ष: काकमुखो = 'ध्वांक्ष' आय का मुख कौवे के समान, विडालवदनो धूमो = 'धूम' का मुख बिल्ले के समान होता है। ध्वजो मानुष: = 'ध्वज' आय का मुख मनुष्य के सामान होता है। शेष सभी आयों यथा 'सिंह', 'गौ', 'श्वान' आदि का मुख उनके नाम के अनुरूप ही होता है। सर्वे पक्षिपदा = किन्तु इन सभी आयों के पैर पक्षी के पैर के समान होते हैं। और हरेरिव गला = इन सभी आयों के धड़ 'सिंह' के धड़ के समान होता है। तथा तत् = उन सभी आयों के, हस्ता नरस्येव = हाथ मनुष्य के हाथों के समान समझना चाहिए।

आय-स्वरूप-बोधक-सारिणी

आय	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	गौ	गधा	गज	ध्वांक्ष
मुख	मनुष्य	विडाल	सिंह	कुत्ता	गाय	गधा	हाथी	कौआ
धड़	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह
पैर	पक्षी	पक्षी	पक्षी	पक्षी	पक्षी	पक्षी	पक्षी	पक्षी

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) 'धूम्र' का मुख विडाल के समान है () (√) (×) (√) (×) (√)
(ख) 'सिंह' आय का पैर सिंह के समान है ()
(ग) 'ध्वज' आय का धड़ सिंह के समान है ()
(घ) 'खर' आय का पैर पक्षी के समान नहीं है ()
(ङ) 'ध्वांक्ष' आय का पैर पक्षी के समान है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ विविध आयों के स्वरूप के विषय में लिखें।

२.६ वर्ण के आधार पर आय-विचार

प्रिय अध्येताओं! आयों के निर्धारण के कई सारे आधार वास्तु के ग्रंथों में मिलते हैं, जिनमें एक प्रमुख आधार है 'वर्ण' के आधार पर 'आय-विचार'। अर्थात् कौन सा आय किस वर्ण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है इस विषय पर अपने विचार बृहद्वास्तुमालाकार ने किया है।

२.६.१ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार

अग्रजानां ध्वजाय: स्यात् ध्वजकुञ्जरगोमृगा: ।
क्षत्रस्य ध्वजसिंहेभा वैश्यस्य शुभदा: स्मृता: ॥
ध्वजो मृगादि: शूद्राणां सर्वेषां वृषभ: शुभ: ।
हीनजाते: समा देया:.... ॥

प्रतिपदार्थ: -

अग्रजानां = ब्राह्मणों का, ध्वजाय: = आय 'ध्वज', स्यात् = हो। क्षत्रस्य = क्षत्रिय वर्ण का (आय), ध्वजकुञ्जरगोमृगा: = ध्वज, हाथी, गौ या मृग (यहां 'मृग' से 'खर' आय का ग्रहण किया गया है), वैश्यस्य = वैश्य वर्ण का, ध्वजसिंहेभा = ध्वज, सिंह या गज आय में से कोई एक, शुभदा: = शुभ फल देने वाला हो। शूद्राणां = शूद्र वर्ण के लिए, ध्वजो मृगादि: = ध्वज आय एवं मृग ('खर' आय के लिए प्रयुक्त), हाथी और कौआ इन आयों का भी प्रयोग शुभ फल देने वाला है। सर्वेषां = सभी वर्णों का (के लिए), वृषभ: शुभ: = गो या वृष आय शुभ फल देने वाला हो। हीनजाते: = इन चारों के अतिरिक्त मनुष्यों के लिए, समा देया: = सम संख्या वाला आय शुभ फल देने वाला हो।

इस प्रकार यदि ध्यान से विचार करें तो ध्वज आय सभी के लिए लाभप्रद माना गया है। एवं गज आय ब्राह्मण को छोड़कर शेष सभी वर्णों के लिए शुभ है। 'मृग' इस शब्द से यहां 'खर' आय का ग्रहण करना चाहिए। वैश्य और शूद्र इन दोनों ही वर्णों के लिए खर और ध्वांक्ष (कौआ) दोनों ही आय शुभ फल देने वाले हैं।

२.७ राशि के आधार पर आय-विचार

प्रिय अध्येता! केवल वर्ण के आधार पर ही नहीं अपितु, वास्तुविदों ने राशियों के आधार पर भी आय का निर्धारण किया है। वास्तुशास्त्रीय-सिद्धान्त के अनुसार, अलग-अलग राशियों के लिए अलग-अलग आय शुभ फल देने वाले होते हैं। तो किस राशि के लिए कौन सा आय शुभ है और कौन सा नहीं? आइए, इस विषय पर ग्रन्थकार के मत को जानते हैं।

२.७.१ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार

कर्कवृश्चिकमीनानां ध्वजाय: शुभदो मत:।
वृषभाय: शुभ: प्रोक्तो मेषसिंहधनुर्भृताम् ॥
तुलामिथुनकुम्भानां गजायो वाञ्छितप्रद:।
वृषकन्यामृगाणाञ्च सिंहाय: शुभदो भवेत् ॥

प्रतिपदार्थ: -

कर्कवृश्चिकमीनानां = कर्क, वृश्चिक और मीन राशि वालों का (के लिए), ध्वजाय: = 'ध्वज' आय, शुभदो मत: = शुभ फल देने वाला कहा गया है। मेषसिंहधनुर्भृताम् = मेष, सिंह और धनुष धारण करने वाले अर्थात् धनु राशि वालों का (के लिए), वृषभाय: = 'वृषभ' अर्थात् 'गौ' आय, शुभ: प्रोक्त: = शुभ फल देने वाला कहा गया है। तुलामिथुनकुम्भानां = तुला, मिथुन और कुम्भ राशि वालों का (के लिए), गजायो = गज आय, वाञ्छितप्रद: = इच्छित फल देने वाला होता है। च = और, वृषकन्यामृगाणाम् = वृष, कन्या और मृग अर्थात् मकर राशि वालों का (के लिए), सिंहाय: शुभदो भवेत् = सिंह आय शुभ फल देने वाला होता है।

यदि आप ध्यान से देखें और आपको ज्योतिष के साधारण नियमों का भी ज्ञान हो तो आप यह आसानी से समझ सकते हैं कि ऊपर कहे गए श्लोक में भी एक निश्चित प्रतिमान (Pattern) दिखाई पड़ता है। वस्तुत: कर्क, वृश्चिक और मीन इन राशियों का ब्राह्मण वर्ण होता है। अत: जिन जातकों की उक्त ब्राह्मण राशि हो उनके लिए 'ध्वज' संज्ञक आय शुभ फल देने वाला होता है। इसी प्रकार मेष, सिंह और धनु इन तीनों राशियों का क्षत्रिय वर्ण है, जिनके लिए गौ (वृष) आय शुभ फल देने वाला है। वृष, कन्या और मकर राशियां वैश्य वर्ण वाली होने के कारण 'सिंह' आय वाली हैं। तथा मिथुन, तुला और कुम्भ ये तीनों ही शूद्र वर्ण वाली राशियां हैं, जिनके लिए 'गज' आय शुभ फल देने वाला होता है।

राशि-आधारित-शुभ-आय-बोधक-सारिणी

राशि	मेष, सिंह, धनु	वृष, कन्या, मकर	मिथुन, तुला, कुम्भ	कर्क, वृश्चिक, मीन
वर्ण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण
शुभ आय	ध्वज	गौ	सिंह	गज

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(च) _____________ ध्वजाय: स्यात्।

(छ) सर्वेषां _____________ शुभ:।

(ज) कर्कवृश्चिकमीनानां ______________ शुभदो मत:।

(झ) ____________ शुभ: प्रोक्तो मेषसिंहधनुर्भृताम्।

(ञ) वृषकन्यामृगाणाञ्च _________ शुभदो भवेत्।

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ राशि के आधार पर आय के शुभाशुभ का निर्धारण करें।

____

____

____

____

२.८ आय का फल

प्रिय मित्र! यद्यपि वर्ण एवं राशि के आधार पर आय की शुभता का वर्णन जो पूर्व में किया गया है उसे भी आय के फल के रूप में समझ सकते हैं, तथापि वास्तु के ग्रंथों में इन आयों के फलों का विस्तारपूर्वक वर्णन हमें प्राप्त होता है। इनमें टोडरानन्द इत्यादि आचार्यों के मत प्रमुख हैं। आइए, इन आचार्यों के मतों के आलोक में आय के फल के विषय में विस्तार से जानने का प्रयास करते हैं।

२.८.१ टोडरानन्द का मत –

टोडरानन्द ने सभी आयों का एक ही श्लोक में फल बताया है, जो कि विषय की दृष्टि से सामान्य-स्तर का कहा जा सकता है, जबकि कुछ आचार्यों में विस्तारपूर्वक अलग-अलग आयों के फल बताए हैं। टोडरानन्द के अनुसार,

कीर्ति: शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्।

रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्।।

गृहारम्भ के समय, यदि ये ध्वज आदि आय हैं तो जो फल बताया गया है उसे नीचे प्रदर्शित सारिणी के द्वारा समझा जा सकता है।

ध्वजादि आयों के फल की बोधक-तालिका

आय	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	गाय	खर (मृग)	गज	कौआ
फल	कीर्ति	शोक	जय	वैर	धन	निर्धनता	सुख	रोग

२.८.२ बृहद्वास्तुमाला के अनुसार –

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमो भवेत्।
सिंहे च विरला लक्ष्मी श्वाने च कलहो भवेत्।।
धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम्।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वत्र शून्यता।।
स्वस्वस्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथा वृषः।
ध्वजः सर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत्।।

प्रतिपदार्थः -

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं = (वास्तु का) ध्वज आय होने पर अत्यधिक मात्रा में धन प्राप्त होता है ऐसा कहा गया है, धूम्रे चैव भ्रमो भवेत् = और धूम्र आय होने पर भ्रम या संशय की स्थिति बनती है। सिंहे च विरला लक्ष्मी = सिंह आय होने पर धनागम की कमी हो जाती है, श्वाने च कलहो भवेत् = श्वान आय होने पर परस्पर कलह या झगड़े की स्थिति बनती है। धनं धान्यं वृषे चैव = और वृष नामक आय में धन और धान्य के आगम या वृद्धि का फल प्राप्त होता है, खरेषु स्त्रीविनाशनम् = 'खर' आय होने पर स्त्री का विनाश होता है। च = और, गजाख्ये पुत्रलाभः = गज-संज्ञक आय होने पर पुत्र का लाभ होता है, ध्वांक्षे सर्वत्र शून्यता = 'ध्वांक्ष' आय होने पर सब प्रकार से शून्यता या खालीपन रहता है। स्वस्वस्थाने श्रेष्ठो = जो-जो आय जहां-जहां पर अर्थात् जिस वास्तु में अनुकूल माना गया है वह आय उस वास्तु के लिए श्रेष्ठ माना जाना चाहिए, (फिर भी) ध्वजः गजः सिंहस्तथा वृषः श्रेष्ठः = ध्वज, गज, सिंह और वृष (गो) आय श्रेष्ठ माने जाने चाहिए। ध्वजः सर्वगतो देयो = 'ध्वज' आय सभी वास्तु के लिए प्रशस्त माना गया है, वृषं नान्यत्र दापयेत् = 'वृष' आय जहां अर्थात् जिस वास्तु के लिए शुभ माना गया है उससे अन्यत्र वृष आय का उपयोग नहीं करना चाहिए।

२.९ आय के आधार पर वास्तु का निर्धारण

यदि आय के शुभ और अशुभ फल पर विचार करें तो इससे निहितार्थ यह निकलता है कि प्रत्येक आय प्रत्येक वास्तु के लिए नहीं है। यानी दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रत्येक वास्तु के निर्माण के पूर्व यह तय कर लेना आवश्यक है कि इस वास्तु के लिए आय-विशेष उचित या अनुकूल है या नहीं। इस विषय पर वास्तुशास्त्रियों ने प्रकाश डाला है, जिनमें से, पाठ-विस्तार के भय से आचार्य श्री वसिष्ठ जी एवं आचार्य च्यवन जी के मत को यहाँ उपस्थापित किया जाता है।

२.९.१ वसिष्ठ का मत

आचार्य वसिष्ठ ने प्रत्येक आय के अनुसार वास्तु का निर्धारण करते हुए कहा है -

गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा॥
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये च वृषे ध्वजे।
पशु-सद्म-वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम्॥
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।
उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः॥

प्रतिपदार्थ –

गजाये वा ध्वजाये वा = 'गज' अथवा 'ध्वज' आय में, गजानां सदनं = हस्ति-शाला अर्थात् हाथियों का निवास-स्थान, शुभम् = शुभ होता है। अश्वालयं = अश्वशाला अर्थात् घोड़ों का अस्तबल, ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा = ध्वज, खर अथवा वृष (गो) आय में (शुभफल देता है)। उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं = ऊंटों के रहने का स्थान, गजाये च वृषे ध्वजे = गज, वृषा या ध्वज आय में शुभ होता है। पशु-सद्म = पशुओं अर्थात् सभी प्रकार के पशु जहां रहें (जैसे चिड़ियाघर इत्यादि), वृषाये च ध्वजाये वा = वृष अथवा ध्वज आय में, शुभप्रदम् = शुभ फल देता है। शय्यासु = शय्या (पलंग) का निर्माण, वृषभः शस्तः = वृष आय में प्रशस्त होता है, पीठे = पीठिका अर्थात् मेज, कुर्सी, टेबल आदि के निर्माण में, सिंहः शुभप्रदः = सिंह आय शुभ फल देता है। उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां = इसके अतिरिक्त जो घर (निवास-स्थान या वास्तु) इस श्लोक में अप्रत्यक्ष रूप से कहे गए हैं या नहीं कहे गए हैं उन सबके निर्माण के लिए, ध्वजः शुभः = 'ध्वज' आय शुभ फल देने वाला होता है।

२.९.२ च्यवन का मत -

वृषं सिंहं गजं दद्यात् प्रासादे पुरमन्दिरे॥
वस्त्रेषु धर्मशालायां कुम्भस्तम्भे ध्वजे ध्वजः।

गोगजो भूगृहे देय: साधारणतृणौकसि ।।
मन्त्रे शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारे शुभो गज: ।
धान्याम्बुस्थानगोश्वेभशालायां वृषभ: शुभ: ।।

प्रतिपदार्थ –

प्रासादे पुरमन्दिरे = महलों, नगरों और मन्दिरों के निर्माण में वृष, सिंह और गज आय का प्रयोग किया जाना चाहिए। वस्त्रेषु धर्मशालायां कुम्भस्तम्भे ध्वजे = वस्त्रों, धर्मशाला, घड़े, खंभों और ध्वजों के निर्माण में ध्वज आय का प्रयोग करना चाहिए। भूगृहे = भूमि और गृह के निर्माण में, गोगजो देय: = गौ और गज आय का उपयोग होना चाहिए। साधारणतृणौकसि मन्त्रे शस्त्रे रथे = साधारण अन्नागार के निर्माण में, मनन अर्थात् चिन्तन, ध्यान आदि के प्रयोग हेतु बनाए जाने वाले घर के निर्माण में, सिंह: = सिंह आय का उपयोग करना चाहिए। भाण्डागारे = भांडार-गृह (Store-room) के निर्माण में, शुभो गज: = गज आय शुभ फल देने वाला होता है। धान्याम्बुस्थानगोश्वेभशालायां = धान्यागार (धान रखने का स्थान), अम्बुस्थान अर्थात् जल रखने का स्थान जैसे जलाशय, टंकी इत्यादि, गोशाला, अश्वशाला और हस्तिशाला के निर्माण में, वृषभ: शुभ: = वृष आय शुभ फल देने वाला है।

२.१० इष्टाय-इष्टनक्षत्रनिर्धारण

प्रिय अध्येता! इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र कोई अलग वस्तु नहीं है। वस्तुत: आप जिस प्रकार के वास्तु का निर्माण करना चाहते हैं, उसके अनुसार आप स्वयं जब 'आय' का अथवा 'नक्षत्र' का निर्धारण करते हैं उसे ही इष्ट-आय और इष्ट-नक्षत्र कहते हैं। जैसे मान लीजिए कि मुझे भांडार-गृह का निर्माण करना है तो उसके लिए इष्ट आय 'गज' होगा, क्यूंकि गज आय ही इसके लिए शुभ होता है। ठीक इसी प्रकार जो नक्षत्र, नक्षत्र-मेलापक के अनुसार, आपके जन्म-नक्षत्र के अनुकूल है वही 'इष्ट-नक्षत्र' कहलाता है।

२.१०.१ वसिष्ठ का मत

इष्ट-नक्षत्र के निर्धारण में वसिष्ठ जी के नक्षत्र-मेलापक सम्बन्धी मत को सदैव ध्यान रखना चाहिए –

गृहेश-गृहयोर्भैक्यं मृतिस्स्यान्नियमेन तु ।
गृहेशस्य वदेन्नित्यं वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् ।।

प्रतिपदार्थ –

गृहेश-गृहयोर्भैक्यं = गृहेश अर्थात् घर का जो स्वामी है (यहां घर शब्द से सभी प्रकार के वास्तु क ग्रहन करना चाहिए) और घर के नक्षत्रो का एकत्व हो जाता है अर्थात् दोनों के ही नक्षत्र एक ही होते हैं तो, तु = तो, नियमेन = वास्तुशास्त्रीय-नियमानुसार, गृहेशस्य = गृहपति की, मृतिस्स्यात् = मृत्यु हो जाए, ऐसा, नित्यं वदेत् = नित्य ही अर्थात् निस्संकोचपूर्वक ज्योतिषी या वास्तुवेत्ता कहे, वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् = ऐसा वसिष्ठ मुनि ने कहा है।

उदाहरण के लिए यदि गृहस्वामी और गृह दोनों का ही नक्षत्र 'अश्विनी' हो तो ऐसे में अशुभ फल मिलने की संभावना बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

प्र. ४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) धनं ____________ सुखम्।

(ख) धूम्रे चैव ____________भवेत्।

(ग) ______________ स्त्रीविनाशनम्।

(घ) शय्यासु वृषभ: शस्त: __________ सिंह: शुभप्रद:।

(ङ) गृहेश-गृहयोर्भैक्यं __________स्यान् नियमेन तु।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ च्यवन के मत में आय के आधार पर वास्तु के शुभाशुभ का निर्धारण करें।

____

____

____

____

२.११ सारांश –

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, गौ, गधा, हाथी, और कौआ इन आठ आयों की क्रमश: पूर्व इत्यादि दिशाओं में, स्थिति होती है। टोडरानन्द जी ने लम्बाई और चौड़ाई के आधार पर आय-साधन के तरीके को बताते हुए कहा कि जिस वास्तु के आय का साधन करना हो उसकी लम्बाई और चौड़ाई का परस्पर गुणा करके गुणनफल में ८ से भाग देने पर जो शेष बचे उसके अनुसार, वास्तु के ध्वजादि आय ८ निकलते हैं। रामाचार्य ने पिण्ड के आधार पर आय-साधन का सूत्र बताते हुए कहा कि जिस वास्तु का निर्माण किया जाना है, उसके पिण्ड को ९ से गुणित ८ से भाग देने पर, (उस वास्तु का)

आय: = 'आय' निर्धारित किया जा सकता है। ध्वांक्ष आदि पशु-पक्षी-संज्ञक आयों का मुख उनके नाम के अनुरूप तथा शेष का मुख मनुष्य के अनुरूप होता है। किन्तु इन सभी आयों के पैर, पक्षी के पैर के समान तथा धड़ 'सिंह' के समान तथा हाथ, मनुष्य के हाथों के समान समझने चाहिए। जातक एवं उसकी राशि के वर्ण के आधार पर आयों का शुभाशुभफल जानना चाहिए। गृहारम्भ के समय, यदि ये ध्वज आदि आय हैं तो उनका फल क्रमश: कीर्ति, शोक, जय, वैर, धन, निर्धनता, सुख एवं रोग है। 'गज' अथवा 'ध्वज' आय में, हाथियों का निवास-स्थान शुभ होता है। घोड़ों का अस्तबल, ध्वज, खर अथवा वृष (गो) आय में शुभफल देता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

२.१२ शब्दावली –

हरि: = सिंह

श्वा = कुत्ता

खर: = गधा

इभ: = हाथी

वायस: = ध्वांक्ष = कौआ

उरग: = सांप

विस्तारेण = चौड़ाई से

हतं = गुणा किया

दैर्घ्यम् = लम्बाई (को)

नाग: = ८

विडालवदन: = बिल्ले के मुख के समान मुख वाला

हरेरिव = सिंह के समान

कुञ्जर: = हाथी

धनुर्भृताम् = धनुष धारण करने वालों का

प्रासादे = महल में

तृणौकसि = तृण (भूंसा आदि) रखने वाले घर में

२.१३ बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (√)

प्र.२ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.३ (क) अग्रजानाम्

(ख) वृषभ:

(ग) ध्वजाय:

(घ) वृषभाय:

(ङ) सिंहाय:

प्र.४ (क) निर्धनता

(ख) भ्रमो

(ग) खरेषु

(घ) पीठे

(ङ) मृति:

२.१४ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. राम मनोहर द्विवेदी (२०१२) बृहद्वास्तुमाला, चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२. कमलाकान्त शुक्ल (१९९९), टोडरमल्लविरचितं वास्तुसौख्यं, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय:, वाराणसी।

३. डा. मुरलीधर चतुर्वेदी (२००७), रामदीनविरचितं बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् श्रीधरीहिन्दीव्याख्यासहितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

२.१५ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. डा. अशोक थापलियाल (२०११), वास्तुप्रबोधिनी, भारतीय ज्योतिष, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

२.१६ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. ध्वजादि आयों की दिशा पर प्रकाश डालिए।

२. टोडरानन्द के मतानुसार, आय का सोदाहरण साधन करिए।

३. वास्तु के निर्धारण में आय की भूमिका स्पष्ट करिए।

इकाई ३ – पिण्डसाधन

इकाई का निरूपण

३.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! वास्तु-शास्त्र डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई में आपका स्वागत है। गत पाठ में हमने वास्तु-शास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'आय' पर विचार किया। हमने जाना कि ध्वज आदि आठों आयों की दिशा क्या है? उनके साधन के प्रकारों को भी जाना। राशि और वर्ण के आधार पर अनुकूल वास्तु पर भी चर्चा गत पाठ में की गयी है। इसमें हमने जाना कि ध्वज आय सभी वर्गों और राशियों के लिए शुभफल देने वाला होता है। वास्तु-विशेष के लिए आय-विशेष अनुकूल और शुभ फल देने वाला होता है इसका भी ज्ञान हमें गत पाठ में हुआ।

वर्तमान पाठ में हम पिण्ड के साधन पर विचार करेंगे। पिण्ड वास्तु-शास्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है क्योंकि इसी के आधार पर आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण आदि वास्तु के आधारभूत तत्वों का निर्धारण किया जाता है। यह पिण्ड-साधन कितना महत्त्वपूर्ण है इस बात का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अनेकों आचार्यों ने पिण्ड-साधन पर अपने विचार रखे हैं और उनके साधन-सूत्र यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं तथापि पिण्ड का मान समान ही निकलता है। इसके अतिरिक्त एक से अधिक पिण्ड-साधन की बात भी आचार्यों ने की है। तो आइए, इस महत्त्वपूर्ण विषय पर बात करते हैं।

३.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पिण्ड की परिभाषा दे सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- मेंघनाथ के पिण्ड-साधन को समझ सकने में कुशल हो सकेंगे।
- गणेशदैवज्ञ के पिंड-साधन की विधि को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- ह्यागुलि के पिंड-साधन की विधि को सोदाहरण कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- सुधाकर द्विवेदी के पिण्ड-साधन की विधि को सोदाहरण समझा सकने में निपुण हो सकेंगे।
- पिण्ड के आधार पर आयादि-साधन को सोदाहरण प्रस्तुत कर सकने में दक्ष हो सकेंगे।

३.३ पिण्ड का स्वरूप -

मित्रों! 'पिण्ड' वास्तु-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके आधार पर आय, अंश, द्रव्य, नक्षत्र आदि अनेकों निर्णायक तत्त्व निर्धारित किए जाते हैं। यह पिण्ड क्या तत्त्व है? इसका साधन कैसे होता है ? और इसके आधार पर अन्य तत्त्वों का ज्ञान कैसे करते हैं?

३.३.१ क्षेत्रफल

'पिण्ड' का तात्त्विक विवेचन करने के क्रम में आचार्यों के जितने भी मत मिलते हैं, उन सभी से जो संकेत निकलता है उसके अनुसार पिण्ड को वास्तु का 'क्षेत्रफल' कहा जा सकता है। यद्यपि यह बात सभी आकार-प्रकार के वास्तु के लिए एकदम उचित प्रतीत नहीं होती है तथापि, प्राय: वास्तु आयताकार या वर्गाकार होता है, जिसके लिए 'पिण्ड' की 'क्षेत्रफल' संज्ञा उचित एवं गणितीय सिद्धांतों के अनुरूप कही जा सकती है। बृहद्वास्तुमाला में 'क्षेत्रफल' का स्वरूप इस प्रकार है –

क्षेत्रे भवेत् क्षेत्रफलं चतुर्भुजे,
तत्कोटिदोराहतिमेव आयते।

प्रतिपदार्थ –

चतुर्भुजे आयते क्षेत्रे = चतुर्भुज आयत क्षेत्र में, तत्कोटिदोराहतिमेव = उसकी भुजा और कोटि अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई का परस्पर गुणन, क्षेत्रफलं भवेत् = क्षेत्रफल कहते हैं।

लम्बाई (कोटि) × चौड़ाई (भुज) = क्षेत्रफल

उदाहरण –

यदि किसी आयताकार वास्तु की लम्बाई २५ हाथ और चौड़ाई २१ हाथ हो तो उसका क्षेत्रफल -

२५ × २१ = ५२५ हाथ होगा।

३.३.२ क्षेत्रफल और पिण्ड में अभेद

अब प्रश्न यह है कि क्षेत्रफल की इस परिभाषा के आलोक में यह कैसे कहा जा सकता है यह क्षेत्रफल ही 'पिण्ड' इस नाम से वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में अभिहित है। वस्तुत: इसका कारण रामाचार्य और ह्यागुलि के द्वारा कथित पिण्ड-साधन के सूत्रों में निहित श्लोकांश है।

३.३.२.१ रामाचार्य का मत

पिण्ड-साधन के क्रम में रामाचार्य कहते हैं –

......दैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दैर्घ्यता।

प्रतिपदार्थ –

दैर्घ्यहृत् = (पिण्ड को) लम्बाई से भाग देने पर, विस्तृति: स्यात् = चौड़ाई का ज्ञान होवे, च = और इसी प्रकार, (पिण्ड को) विस्तृतिहृत् = चौड़ाई से भाग देने पर, दैर्घ्यता = लम्बाई का ज्ञान हो।

यदि इस श्लोक के अर्थ को सूत्र रूप में प्रकट करें तो यह इस प्रकार से होगा –

$$\frac{\text{पिण्ड}}{\text{लम्बाई}} = \text{चौड़ाई}; \quad \text{और इसी प्रकार} \frac{\text{पिण्ड}}{\text{चौड़ाई}} = \text{लम्बाई}$$

इन सूत्रों को देखकर गणित का सामान्य विद्यार्थी भी यह समझ सकता है कि पक्षान्तर के नियम से इन सूत्रों का स्वरूप यह होगा –

$$\text{पिण्ड} = \text{चौड़ाई} \times \text{लम्बाई}$$

और चूंकि क्षेत्रफल का भी यही सूत्र है इसलिए आयताकार वास्तु के लिए क्षेत्रफल ही पिण्ड है ऐसा कहना युक्तिपूर्ण है।

३.४ पिण्ड का साधन

प्रिय अध्येता! पिण्ड के साधन हेतु मेंघनाथ, ह्यागुलि, रामाचार्य, सुधाकर आदि के मत प्रमुखता से मिलते हैं। इन मतों में साधन हेतु गणितीय-प्रक्रिया में कुछ न कुछ विषमताएं दृष्टिगोचर होती हैं। किन्तु प्राय: सभी आचार्यों ने पिंड-साधन में इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र का आश्रय लिया है।

आय और नक्षत्र के विषय में गत पाठों में आपने अध्ययन किया ही है। लेकिन पुन:स्मारणार्थ इतना बता देना ही पर्याप्त है कि' ध्वज', 'धूम्र', 'सिंह' इत्यादि जो ८ आय पूर्व में कहे गए हैं उन आयों में वर्ण और राशि के आधार पर तथा जिस प्रकार के वास्तु का निर्माण करना हो उसके आधार पर जिस आय का चयन या निर्धारण किया जाता है उसे ही 'इष्ट आय' कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि 'कर्क' राशि वाले 'ब्राह्मण' वर्ण के व्यक्ति को वास्तु 'गृह' का निर्माण करना है तो उसके लिए सर्वथा उपयुक्त आय 'ध्वज' होने के कारण इष्ट आय 'ध्वज' हुआ। ऐसे ही यदि गृह बनाने वाले व्यक्ति का नक्षत्र 'पुष्य' तो मेलापक के आधार पर गृह के नक्षत्र का निर्धारण करना चाहिए। इसके लिए जिस समय गृहारंभ करेंगे उस समय का नक्षत्र ही गृह का 'इष्ट नक्षत्र' होगा। तो आइए एक-एक करके आचार्यों के पिंड-साधन की विधि को उदाहरण के साथ जानें।

३.४.१ मेघनाथ का मत -

मेंघनाथ ने पिंड के साधन हेतु सूत्र का निरूपण किया है। उन्होंने इष्ट आय और नक्षत्र के आधार पर पिण्ड का साधन बताया है। उनके अनुसार,

इष्टभात्यष्टिघातेय आयस्तेनोनितेऽष्टक:।
त्रिहल्लब्धहतागाश्वियुते चेष्टायभं भवेत्।।

प्रतिपदार्थ –

इष्टभात्यष्टिघातेय: = अत्यष्टि अर्थात् १७ ('अत्यष्टि' संज्ञक छन्द में १७ वर्ण होते हैं इसलिए 'अत्यष्टि' शब्द से १७ संख्या का ग्रहण होता है।) से घात अर्थात् गुणित इष्ट नक्षत्र, आय: = (से) जो आय प्राप्त हुआ, तेनोनितेऽष्टक: = उस (गुणनफल से प्राप्त) आय को 'इष्टआय' से घटाकर, त्रिहल्लब्ध = (शेष को) ३ से भाग देने पर प्राप्त लब्धि (को), हतागाश्वि = अग अर्थात् पर्वत ७ (पर्वतो की संख्या ७ मानी गयी है) अश्वि २ (अश्विनीकुमार जुड़वा होने के कारण, इस शब्द से २ संख्या का ग्रहण करते हैं) अगश्चअश्विश्च इति 'अगाश्वि' अर्थात् इन दोनों से व्यक्त संख्याओं को एक साथ लिखने पर 'अगाश्वि' पद से २७ संख्या का ग्रहण करना चाहिए, 'हतागाश्वि' अर्थात् २७ से गुणा करने पर, च = और (जो गुणनफल प्राप्त हुआ उसमें), युते इष्टायभं = इष्ट आय के गुणनफल को जोड़ने पर, भवेत् = 'पिण्ड' होवे।

३.४.१.१ सूत्र –

इष्ट नक्षत्र × १७ = प्रथम गुणनफल

प्रथम गुणनफल ÷ ८ = लब्धि: शेषं च

इष्ट आय – शेष = अन्तर (शेष से कम होने पर इष्ट आय + ८ करके उसमें शेष घटाएं)

अन्तर ÷ इष्ट आय = लब्धि (शेष बचने पर अंतर में ८ जोड़कर पुन: ३ से भाग दें)

लब्धि × २७ = द्वितीय गुणनफल

प्रथम गुणनफल + द्वितीय गुणनफल = पिण्ड

३.४.१.२ प्रथम उदाहरण

माना 'इष्टनक्षत्र' ४ है। १७ × ४ = ६८ (प्रथम गुणनफल)

६८ ÷ ८ = लब्धि: ८, शेषं ४

'इष्ट आय' ३ है, जो अष्ट (८) भक्त प्रथम गुणनफल से प्राप्त शेष (४) से कम है।

अत: इष्ट आय में ८ जोड़कर ३ + ८ = ११ नवीन इष्ट आय प्राप्त किया

(नवीन आय) ११ – (शेष) ४ = ७ अन्तर

अन्तर ÷ इष्ट आय = ७ ÷ ३, यहां ३ से भाग देने पर निरग्र नहीं होता अर्थात् शेष रह जाता है

अत: निरग्र-करणार्थ, अन्तर + ८ (आय) = ७ + ८ = १५ नवीन अन्तर

नवीन अन्तर/इष्ट आय = १५ ÷ ३ = लब्धि ५

लब्धि ५ × २७ = १३५ (द्वितीय गुणनफल)

प्रथम गुणनफल + द्वितीय गुणनफल = ६८ + १३५ = २०३ 'पिण्ड'

३.४.१.३ द्वितीय उदाहरण

माना 'इष्ट नक्षत्र' १५ और 'इष्ट आय' ८ है।

१७ × १५ = २५५ (प्रथम गुणनफल)

२५५ ÷ ८ = लब्धि: ३१, शेषं ७

'इष्ट आय' ८ है,

आय: – शेषं = ८ – ७ = १

अन्तर ÷ इष्ट आय = १ ÷ ३, यहां ३ से भाग देने पर निरग्र नहीं होता अर्थात् शेष रह जाता है

अत: निरग्र-करणार्थ, अन्तर + ८ (आय) = १ + ८ = ९ नवीन अन्तर

नवीन अन्तर ÷ इष्ट आय = ९ ÷ ३ = लब्धि ३

लब्धि ३ × २७ = ८१ (द्वितीय गुणनफल)

प्रथम गुणनफल + द्वितीय गुणनफल = २५५ + ८१ = ३३६ 'पिण्ड'

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(त) 'अत्यष्टि' में १८ वर्ण होते हैं ()

(थ) 'अगाश्वि' से २७ संख्या अभिप्रेत है ()

(द) पिण्ड साधन में 'इष्ट आय' की आवश्यकता नहीं है ()

(ध) वर्गाकार वास्तु में पिण्ड और क्षेत्रफल में अभेद होता है ()

(न) पिण्ड में लम्बाई का भाग देने पर चौड़ाई का ज्ञान होता है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ मेंघनाथ के अनुसार पिण्ड का साधन करें।

___

___

___

___

३.४.२ गणेश दैवज्ञ का मत –

गणेश दैवज्ञ ने भी पिंड के साधन हेतु सूत्र प्रस्तुत किया है। यद्यपि उन्होंने भी इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र के आधार पर ही पिण्ड का साधन बताया है तथापि इनका सूत्र मेंघनाथ के सूत्र से भिन्न है।

नागाघ्नेष्टायात्त्यजेदिष्टमृक्षं नोचेद्भाढ्याद्वेदषडघ्नं च सायम्।
तष्टं षट्स्वर्गै: फलं स्यादमीष्टायर्क्षोत्थं तद्भूपदृग्युक् पुनस्तु॥

प्रतिपदार्थ

नागाघ्नेष्टायात् = नाग अर्थात् ८ से गुणित 'इष्ट आय' से, इष्टमृक्षं = 'इष्ट नक्षत्र' को, त्यजेत्, घटाए। नोचेद् = यदि ८ × इष्ट आय से न घटे तब, भाढ्यात् = भं अर्थात् नक्षत्र २७ आढ्य अर्थात् जोड़कर (घटाए), (अन्तर में) वेदषदघ्नं = वेदषट् ६४ से गुणा कर (दे और) सायम् = आयसहितं अर्थात् उसमें आय जोड़ दे। (इस योग में) तष्टं षट्स्वर्गै: = षट्स्वर्ग अर्थात् २१६ से भाग देने पर, फलं स्याद = यहां 'फल' से अभिप्राय 'शेष' है, अमीष्टायर्क्षोत्थं = यही इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र से उत्पन्न 'पिण्ड' होगा। पुनस्तु = और इस 'पिण्ड' से आगे फिर और 'पिण्ड' प्राप्त करने हों तो, तद् = (इष्ट आय गुणित इस) 'पिण्ड' को, भूपदृग्युक् = भूपदृक् २१६ में जोड़ दे।

३.४.२.१ सूत्र

{८ × इष्ट आय} – इष्ट नक्षत्र = अन्तर

न घटने पर, {८ × इष्ट आय} में २७ जोड़कर, २७ + {८ × इष्टआय} – इष्ट नक्षत्र

अंतर × ६४ = गुणनफल

गुणनफल + इष्ट आय = योगफल

योगफल ÷ २१६ = शेष तुल्य 'पिण्ड'

३.४.२.२ उदाहरण

माना 'इष्ट आय' ३ और 'इष्टनक्षत्र' ४ है।

{८ × ३ = २४} – ४ = २० अन्तर

२० × ६४ = १२८० गुणनफल

१२८० + ३ = १२८३ योगफल

१२८३ ÷ २१६ = ५ लब्धि:, २०३ शेष

अत: 'पिण्ड' २०३

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) {८ × इष्ट आय} – इष्ट नक्षत्र ()

(ख) 'इष्ट नक्षत्र' के न घटने पर कुछ नहीं करेंगे ()

(ग) 'वेदषडघ्न' में आय को जोडें ()

(घ) तष्टं अर्थात् जोड़ना ()

(ङ) 'भूपदृक्' अर्थात् २१६ ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ गणेश दैवज्ञ के अनुसार पिण्ड का साधन करें।

____

____

____

____

३.४.३ ह्यागुलि का मत –

मुहूर्त्त कल्पद्रुम के रचयिता श्री विठ्ठल दीक्षित के गुरु 'ह्यागुलि दैवज्ञ ने भी पिंड के साधन हेतु सूत्र प्रस्तुत किया है।

व्येकेष्टर्क्षहताद्विबाणशशिनोऽत्यष्ट्या युतास्तेऽपि च,
व्येकेष्टायहतैकनागसहिताः षण्मूर्च्छनाभिर्हताः।
शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रगं,
स्याद्दैर्घ्यं तदभीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृतं विस्तृतिः॥

प्रतिपदार्थ

व्येकेष्टर्क्ष = विगतं एकं यस्मात् इष्टर्क्षात् अर्थात् जिस इष्ट नक्षत्र से १ कम हो (इष्ट नक्षत्र – १), हताद्विबाणशशिनो = द्वि२बाण५शशिनो१ अनया १५२ संख्यया हतः गुणितः अर्थात् अन्तर १५२ से गुणा करें को अत्यष्ट्या युताः = अत्यष्टि १७ (छन्द-विशेष जिसमे १७ वर्ण होते हैं) इससे जोड़ दे, व्येकेष्टाय = विगतं एकं इष्टायात् यस्मात् (इष्ट आय - १), इसमें, हतैकनाग = एक१ नाग ८ एकनाग ८१ से गुणा करें, सहिताः = पूर्व में प्राप्त योगफल और इस गुणनफल को जोड़ दे, इस योग को, षण्मूर्च्छनाभिर्हताः = २१६ से भाग दे, तो शेषं = शेष स्वेष्टायनक्षत्रगं = इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र से सम्बन्धी, अभिमतं क्षेत्रफलं = अभीष्ट क्षेत्रफल 'पिण्ड', भवेत् = हो। तदभीष्टविस्तृतिहृतं = अभीष्ट क्षेत्रफल 'पिण्ड' को विस्तृति चौड़ाई से गुणा करने पर, दैर्घ्यं स्यात् = लम्बाई हो (मिले), दैर्घ्योद्धृतं = दैर्घ्य अर्थात् लम्बाई से पिण्ड को भाग देने पर, विस्तृतिः = चौड़ाई मिले।

३.४.३.१ सूत्र

इष्ट नक्षत्र – १ = अन्तर
अंतर × १५२ = प्रथम गुणनफल
प्रथम गुणनफल + १८ = प्रथम योगफल
इष्ट आय – १ = अन्तर
अन्तर × ८१ = द्वितीय गुणनफल
प्रथम योगफल + द्वितीय गुणनफल = द्वितीय योगफल
द्वितीय योगफल ÷ २१६ = शेष तुल्य 'पिण्ड'

३.४.३.२ प्रथम उदाहरण

माना 'इष्ट आय' ३ और 'इष्टनक्षत्र' ४ है।
इष्ट नक्षत्र ४ – १ = ३ अन्तर

३ × १५२ = ४५६ गुणनफल

४५६ + १७ = ४७३ प्रथम योगफल

इष्ट आय ३ – १ = २

२ × ८१ = १६२

४७३ + १६२ = ६३५

६३५ ÷ २१६ = २ लब्धि:, २०३ शेष

अत: 'पिण्ड' २०३

३.४.३.३ द्वितीय उदाहरण

माना 'इष्ट नक्षत्र' १५ और 'इष्ट आय' ८ है।

इष्ट नक्षत्र १५ – १ = १४ अन्तर

१४ × १५२ = २१२८ गुणनफल

२१२८ + १७ = २१४५ प्रथम योगफल

इष्ट आय ८ – १ = ७

७ × ८१ = ५६७

२१२८ + ५६७ = २६९५

२६९५ ÷ २१६ = १२ लब्धि:, २०३ शेष

अत: 'पिण्ड' १०३

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) व्येकेष्टर्क्षहताद्वि___________शशिनो ()

(छ) व्येकेष्टायहतैक_____________सहिता ()

(ज) षण्मूर्च्छनाभि:___________ ()

(झ) शेषं ___________भवेदभिमतं ()

(ञ) स्याद्_________ तदभीष्टविस्तृतिहतं ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ ह्यागुलि के अनुसार पिण्ड का साधन करें।

३.११ सारांश –

आयताकार या वर्गाकार वास्तु के लिए 'पिण्ड' की 'क्षेत्रफल' संज्ञा उचित एवं गणितीय सिद्धांतों के अनुरूप कही जा सकती है। पिण्ड को लम्बाई से भाग देने पर चौड़ाई का ज्ञान होता है और इसी प्रकार पिण्ड को चौड़ाई से भाग देने पर लम्बाई का ज्ञान होता है। मेंघनाथ के पिंड-साधन-सूत्र के अनुसार, १७ गुणित इष्ट नक्षत्र में ८ का भाग देने पर जो शेष उसे 'इष्टआय' से घटाकर जो अंतर प्राप्त होता है उसे इष्ट आय से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त होती है उसे २७ से गुणा करने पर जो गुणनफल उसे १७ गुणित इष्ट नक्षत्र में जोड़ने पर पिण्ड का ज्ञान होता है। गणेश दैवज्ञ के अनुसार ८ गुणित इष्ट आय में से इष्ट नक्षत्र घटाने पर जो अन्तर प्राप्त होता है उसे ६४ से गुना करके गुणनफल प्राप्त होता है। इस गुणनफल में इष्ट आय को जोड़ने पर जो योगफल उसे २१६ से भाग देने पर शेषतुल्य 'पिण्ड' का ज्ञान प्राप्त होता है। ह्यागुलि के अनुसार, इष्ट नक्षत्र में १ घटाकर जो अंतर प्राप्त होता है उसे १५२ से गुणा करने पर प्रथम गुणनफल प्राप्त होता है। इसमें १८ जोड़ने पर प्रथम योगफल प्राप्त होता है। इसी प्रकार इष्ट आय में १ घटाकर जो अंतर प्राप्त होता है उसे ८१ से गुणा करने पर द्वितीय गुणनफल प्राप्त होता है। इस द्वितीय गुणनफल में प्रथम योगफल को जोड़ने पर द्वितीय गुणनफल प्राप्त होता है। इसे २१६ से भाग देने पर जो शेष प्राप्त होता है उसे 'पिण्ड' कहते हैं।

३.१२ शब्दावली –

इष्टभात् = इष्ट नक्षत्र से

अगाश्वि = २७

नागाघ्नेष्टायात् = ८ गुणित आय से

ऋक्षम् = नक्षत्र

भाढ्यात् = २७ जोड़ने से

वेदषडघ्नं = ६४ गुणित

तष्टं = विभाजित

भूपदृक् = २१६

दैर्घ्यम् = लम्बाई (को)

व्येकेष्टर्क्षहताद्विबाणशशिनोऽत्यष्ट्या युतास्तेऽपि च,
व्येकेष्टायहतैकनागसहिता: षण्मूर्च्छनाभिर्हता:।
शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रगं,

व्येकेष्टर्क्ष = इष्ट नक्षत्र - १

अत्यष्ट्या = १८ के द्वारा

व्येकेष्टाय = इष्ट आय – १

एकनागसहिता = ८१ जोड़ने पर

षण्मूर्च्छनाभिर्हता: = २१६ के द्वारा भाग देने पर

३.१३ बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (√)

प्र.२ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.३ (क) बाण

(ख) नाग

(ग) हता:

(घ) क्षेत्रफलम्

(ङ) दैर्घ्यम्

३.१४ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. राम मनोहर द्विवेदी (२०१२) बृहद्वास्तुमाला, चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२. कमलाकान्त शुक्ल (१९९९), टोडरमल्लविरचितं वास्तुसौख्यं, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय:, वाराणसी।

३. डा. मुरलीधर चतुर्वेदी (२००७), रामदीनविरचितं बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् श्रीधरीहिन्दीव्याख्यासहितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

३.१५ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. डा. अशोक थापलियाल (२०११), वास्तुप्रबोधिनी, भारतीय ज्योतिष, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

३.१६ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. पिण्ड-साधन में मेघनाथ के मत पर प्रकाश डालिए।

२. पिण्ड-साधन में गणेश दैवज्ञ के मत पर प्रकाश डालिए।

३. पिण्ड-साधन में ह्यागुलि के मत पर प्रकाश डालिए।

इकाई - ४ गृह का दैर्घ्यविस्तार-निर्धारण

इकाई का निरूपण

४.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! वास्तु-शास्त्र डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के प्रथम खण्ड की चतुर्थ और अन्तिम इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई में विभिन्न-प्रकार के गृहों के दैर्घ्य और विस्तार के विषय में चर्चा करेंगे। गत पाठ में हमने वास्तु के पिंड के विषय में विस्तार से चर्चा की। हमने मेंघनाथ, रामाचार्य, ह्यागुलि के मतानुसार पिंड-साधन के सूत्रों को जाना। हमने देखा कि सभी आचार्यों के सूत्रों में भिन्नता है। एक अन्य बात जो महत्त्वपूर्ण है जिसकी ओर रामाचारी और ह्यागुलि ने अपने-अपने सूत्रों में संकेत किया वो यह है वास्तु के दैर्ग्य और विस्तृति का गुणनफल ‘पिण्ड’ कहलाता है।

पिण्ड = दैर्घ्य × विस्तृति

और चूंकि क्षेत्रफल का भी यही सूत्र है इसलिए आयताकार वास्तु के लिए क्षेत्रफल ही पिण्ड है ऐसा कहना युक्तिपूर्ण है। अब प्रश्न यह है कि इस बात में प्रमाण क्या है? तो इसके लिए पूर्वव पाठ में ही रामाचार्य के मत को उद्धृत किया गया है, जहां वह कहते हैं -

......दैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दैर्घ्यता।

अर्थात् पिण्ड को दैर्घ्य (लम्बाई) से भाग देने पर, विस्तृति: (चौड़ाई) और इसी प्रकार, पिण्ड को विस्तृति (चौड़ाई) से भाग देने पर, दैर्घ्यता (लम्बाई) का ज्ञान होता है।

४.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु के दैर्घ्य का ज्ञान कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- वास्तु की विस्तृति का ज्ञान कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- विविध प्रकार के वास्तु (गृह) के दैर्घ्य और विस्तृति का निर्धारण कर सकने में कुशल हो सकेंगे।

४.३ दैर्घ्य-विस्तृति -

मित्रों! कोई भी वास्तु अव्यक्त तो नहीं होता। प्रत्येक वास्तु का कुछ न कुछ स्वरूप अवश्य होता है। वह स्वरूप किसी न किसी आकार में परिसीमित होता है। यह आकार मुख्य रूप से दैर्घ्य अर्थात् लम्बाई और विस्तृति अर्थात् चौड़ाई से निर्धारित होता है। दूसरे शब्दों में कहूं तो किसी भी वास्तु की आकृति के मूल में उसके दैर्घ्य और विस्तृति ही हैं। वास्तु के आकार के अनुसार इनका प्रमाण भिन्न-भिन्न होता है। गृह के दैर्घ्य और विस्तृति का मान प्राचीन ग्रंथों में ‘हस्त’ के आधार पर,

जबकि पुर के दैर्घ्य और विस्तृति का मान 'योजन' के आधार पर निर्धारित किया गया है। आधुनिक मान से यदि 'हस्त' और 'योजन' की तुलना करें तो इसके अनुसार –

१ हस्त = २ वितस्ति = १/२ मीटर

वितस्ति को हिन्दी में 'बित्ता' कहते हैं।

१ योजन = ८ कि.मी. से १६ कि.मी. (अलग-अलग काल में गणितज्ञों ने योजन के अलग-अलग मान बताए हैं। भास्कराचार्य ने योजन का मान ८ कि.मी. माना है तो केरल के गणितज्ञ परमेश्वर और नीलकंठ आदि ने इसका मान १३ से १६ कि.मी. तक माना है।)

राजगृहों के दैर्घ्य और विस्तृति का मान सामान्य गृहों के दैर्घ्य और विस्तृति से भिन्न होने के कारण उनके आकारों में भिन्नता होती है। इस पाठ में हम विविध गृहों के दैर्घ्य और विस्तृति के मान पर वास्तु-शास्त्र के नियमों के आलोक में विचार करेंगे।

४.४ दैर्घ्य-विस्तृति के आधार पर राजगृहों के भेद

राजगृह अर्थात् राजा का घर या आवास। सामान्य तौर पर हम इसे 'प्रासाद' नाम से जानते हैं। इसके पर्यायवाची शब्द 'हर्म्य', 'सौध' हैं। हिन्दी में इसके लिए प्रचलित शब्द 'महल' है। मित्रों! राजाओं के प्रासाद सामान्य गृह की अपेक्षा विशिष्ट होते हैं, यह कोई अलग से कथनीय विषय नहीं है। इन प्रासादों में राजा के निवास-स्थान के अतिरिक्त अन्य गृह भी होते हैं जिनमें 'रनिवास' या 'अन्त:पुर', प्रहरियों का निवास, सेवकों का आवास इत्यादि प्रमुख हैं। इन सभी का बड़े ही विस्तार से वर्णन वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है। आपके पाठ्यक्रम को दृष्टिगत करते हुए उन सभी विषयों का यहां विस्तार से वर्णन करना अनुचित एवं असम्भवप्राय है। एतदर्थ आगामी कक्षाओं में 'समरांगण सूत्रधार', 'मयमत', 'अपराजितपृच्छा' इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन करना उचित होगा। किन्तु इस पाठ में राजाओं उनके मन्त्रियों इत्यादि के गृह के दैर्घ्य-विस्तृति का निरूपण किया जाएगा।

४.४.१ कश्यप के मतानुसार

वास्तु इत्यादि विद्याओं के महान आचार्य कश्यप ऋषि ने राजा इत्यादि के पांच प्रकार के गृहों का निरूपण किया है, जो क्रमश: - १. उत्तमोत्तम, २. उत्तम, ३. मध्यम, ४. अधम, और ५. अधमाधम। ये सभी कोटियां उनके दैर्घ्य और विस्तृति के आधार पर निर्धारित की गयी हैं। आचार्य कश्यप कहते हैं –

अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारं नृपमन्दिरम्।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु ॥

विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत् ।
एवं पञ्च नृप: कुर्यात् गृहाणां च पृथक्-पृथक् ।।

प्रतिपदार्थ –

प्रधानं = प्रधान कोटि के (उत्तमोत्तम) नृपमन्दिरम् = राजा के घर (की), विस्तारं = चौड़ाई, अष्टोत्तरं हस्तशतं = १०८ हाथ, कार्यं = करनी चाहिए, अन्यानि तु = और ऊपर बताई गयी ५ कोटियों में से शेष प्रकार के गृहों की चौड़ाई तो, तथाष्टाष्टोनितानि = उसी प्रकार ८-८ हाथ कम करनी चाहिए। तेषां = इन पांचों प्रकार के गृहों की, दैर्घ्यं = लम्बाई, विस्तारं पादसंयुक्तं = उनकी चौड़ाई के सवा ($१\frac{१}{४}$) गुणित, प्रकल्पयेत् = कल्पित करनी चाहिए।

एवं = इस प्रकार, नृपगृहाणां = राजा के घरों (के), पृथक्-पृथक् = दैर्घ्य और विस्तृति के अलग-अलग भेद च पञ्च कुर्यात् = ५ भेद हैं।

कश्यप ऋषि ने चौड़ाई के मान को तो स्पष्ट रूप से कहा किन्तु लम्बाई के मान को संकेत रूप में ही कहा। इसका कारण क्या है? यदि इस पर विचार करें तो इसका मुख्य कारण लम्बाई और चौड़ाई के एक शाश्वत सम्बन्ध की ओर संकेत करना है। घनिष्ठ या अन्योन्याश्रित सम्बन्ध प्राय: इसी प्रकार से व्यक्त किये जाते हैं। एक के ज्ञान से दूसरे की सत्ता का ज्ञान कराने के पीछे चिंतन यही है कि उन दोनों के निकटवर्ती सम्बन्धों को प्रकट किया जा सके।

तो फिर प्रश्न उठता है कि क्या लम्बाई और चौड़ाई का यह सम्बन्ध जो कि कश्यप ऋषि के द्वारा बताया गया है यह सभी प्रकार के वास्तु के लिए एक-समान है? तो इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कम-से-कम आयताकार वास्तु के विषय में इस प्रकार का सम्बन्ध उचित ही है जो कि न केवल वास्तु के एक सुन्दर स्वरूप को समक्ष प्रस्तुत करता है अपितु वास्तुशास्त्रीय नियमों के आलोक में उक्त लम्बाई और चौड़ाई के वास्तु में निवास का फल भी शुभ और सकारात्मक होता है। अत: इस प्रकार के संकेतात्मक कथन का अभिप्राय यही है कि गृह कैसा भी हो उसकी लम्बाई और चौड़ाई अनियत नहीं रहनी चाहिए।

जैसा कि कश्यप ऋषि ने कहा उसके अनुसार राजगृह के जो ५ भेद बताए गए हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' संज्ञक भेद की चौड़ाई १०८ हाथ तथा चौड़ाई के मान की सवा ($१\frac{१}{४}$) गुणित या दूसरे शब्दों में कहें तो चौड़ाई के मान से चतुर्थांश अधिक लम्बाई होती है।

उत्तमोत्तम (प्रधान) राजगृह की चौड़ाई = १०८ हाथ

लम्बाई = १०८ + १०८/४

= १०८ + २७

= १३५ हाथ

उत्तमोत्तम या प्रधान गृह की लम्बाई और चौड़ाई बताने के बाद शेष ४ प्रकार के गृहों की लम्बाई और चौड़ाई के विषय में कश्यप ऋषि ने 'अष्टाष्टोनित' संकेत मात्र किया है। इस संकेत का अभिप्राय भी प्रधान गृह से अन्य गृहों के सम्बन्ध को बताना और उनके लम्बाई-चौड़ाई की नियतता को प्रकट करना है। यदि इन विविध प्रकार के गृहों में परस्पर सम्बन्ध नहीं होगा तो उनके मानों में एक अनियतता का दोष आ जाएगा। इस दोष से बचाने के लिए ही आचार्य कश्यप ने इन पांचों भेदों को उक्त प्रकार से संकेत रूप में अभिव्यक्त किया।

'अष्टाष्टोनित' का अभिप्राय है पहले या उत्तमोत्तम (प्रधान) कोटि के राजगृह की तुलना में उससे निम्न कोटि का गृह चौड़ाई की दृष्टि से ८-८ हाथ कम होता है। और चौड़ाई के सवागुणित लम्बाई का संकेत शेष कोटियों में भी पूर्ववत समझना चाहिए। इस हिसाब से,

उत्तम कोटि के राजगृह की चौड़ाई = १०८ – ८ = १०० हाथ

लम्बाई = १०० + १००/४

= १०० + २५ हाथ = १२५ हाथ

इन पाँचों भेदों को एक तालिका के द्वारा इस प्रकार से निरूपित किया जा सकता है –

राजगृह	**लम्बाई**	**चौड़ाई**
उत्तमोत्तम (प्रधान)	१३५ हाथ	१०८ हाथ
उत्तम	१२५ हाथ	१०० हाथ
मध्यम	११५ हाथ	९२ हाथ
अधम	१०५ हाथ	८४ हाथ
अधमाधम	९५हाथ	७६ हाथ

यहां जो एक विशेष बात कहनी है वो यह है कि वर्तमान समय में 'राजगृह' का अभिप्राय 'राष्ट्रपति', एवं 'राज्यपाल' के आवास हैं। हालांकि इस श्रेणी में 'प्रधानमन्त्री' या 'मुख्यमंत्री' के आवास को नहीं रखा जा सकता है तथापि वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जबकि 'प्रधामन्त्री' और 'मुख्यमन्त्री' के पद अधिक प्रासंगिक और जनोन्मुखी हो गए हैं उनके भी आवासों का मान कमोबेश 'राष्ट्रपति' या 'राज्यपाल' के आवासों के अनुरूप रखा जा सकता है। अन्यथा उचित तो यही है कि इनके आवासों के मान 'प्रधान सचिवों' के आवासों के मान के सामान हों।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ऩ) 'हस्त' का मान १ मीटर के तुल्य है ()

(प) 'उत्तमोत्तम' नृपगृह की चौड़ाई १०८ हस्त है ()

(फ) लम्बाई का मान चौड़ाई के सवागुणित होता है ()

(ब) 'मध्यम' राजगृह की लम्बाई १२५ हाथ है ()

(भ) 'अधमाधम' राजगृह की चौड़ाई ८६ हाथ है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ दैर्घ्य और विस्तृति के आधार पर किन्हीं ३ प्रकार के राजगृहों का मान लिखें।

____

____

____

____

४.५ दैर्घ्य-विस्तृति के आधार पर सेनापतिगृहों के भेद

प्रिय अध्येताओं! पहले आपने पढ़ा कि राजा के गृह के आकृतिवशात् ५ भेद हैं। इस आकृति-भेद के मूल में दैर्घ्य (लम्बाई) और विस्तृति (चौड़ाई) ही है। जिस प्रकार राजा के घर के ५ भेद बताए गए हैं ठीक उसी प्रकार सेनापति के भी घर की ५ कोटियां बताई गयी हैं। निश्चय ही इन भेदों के मूल में भी वास्तु के दैर्घ्य और विस्तृति ही हैं।

४.५.१ वास्तुसौख्य के मतानुसार

वास्तुसौख्य में टोडरमल ने सेनापति के गृह-भेदों का निरूपण करते हुए कहा –

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतु:षष्टिः।
एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्वितं दैर्घ्यम्॥

प्रतिपदार्थः -

एवं = इसी प्रकार (जिस प्रकार राजा के अलग-अलग मान भेद से ५ प्रकार के गृह बताए गए हैं), सेनापतिसद्मनां = सेनापतियों के घरों के, पञ्च गृहाणि = ५ प्रकार के घर बताए गये हैं, षड्भि: षड्भिर्हीना = वे सभी प्रकार चौड़ाई में क्रमश: ६-६ हाथ छोटे होते चले जाते हैं। चतु:षष्टि: =

(सेनापति-गृह की चौड़ाई) ६४ हाथ होती है। षड्भागसमन्वितं दैर्घ्यम् = चौड़ाई के मान में षष्ठांश (१/६) जोड़ देने पर लम्बाई का मान ज्ञात होता है।

मित्रों! जैसा कि प्राचीन भारतीय परम्परा रही है विषयों को सूत्र रूप में रखा जाता रहा है। थोड़ा कहकर बहुत समझने का गुण भारतीय-शिक्षण-पद्धति के मुख्य लक्षणों में अन्यतम रहा है। एक बार जब ऋषि ने राज के ५ प्रकार के गृहों को विस्तार से बता दिया तब शेष सेनापति आदि के गृहों को उसी के अनुरूप समझ लेना चाहिए। यही कारण है कि विस्तारपूर्वक दृष्टांत कहने के उपरान्त आचार्य शेष विषयों को संकेत रूप में ही प्रस्तुत करते हैं।

सेनापति-विषयक उपरिलिखित श्लोक में भी इसी परम्परा का अनुसरण ऋषि ने किया है। इसके अनुसार सेनापति के भी गृह के ५ भेद हैं जो कि क्रमशः चौड़ाई में ६-६ हाथ छोटे होते जाते हैं। आचार्य ने प्रधान गृह की चौड़ाई ६४ हाथ बताई है। फिर उपरिलिखित नियमानुसार उससे अवर गृह की चौड़ाई ६ हाथ कम अर्थात् ५८ हाथ होगी।

इसी प्रकार गृहों की लम्बाई के विषय में संकेत करते हुए कहते हैं कि सेनापति के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई उसकी चौड़ाई के षष्ठ अंश (१/६) से अधिक होती है। अर्थात् यदि चौड़ाई के मान में उसका छठा भाग (१/६) जोड़ दिया जाए तो उस गृह की लम्बाई का ज्ञान हो जाता है।

सेनापति के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = ६४ हाथ

सेनापति के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई = ६४ + ६४/६ हाथ

= ६४ + १०.१६

= ७४.१६ हाथ अर्थात् ७४ हाथ १६ अंगुल

सेनापति के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = ६४ – ६ = ५८ हाथ

सेनापति के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = ५८ + ५८/६

= ५८ + ९.१६

= ६७.१६ हाथ अर्थात् ६७ हाथ १६ अंगुल

<u>सेनापति पञ्चविध-गृह-मान तालिका</u>

सेनापतिगृह	**लम्बाई**	**चौड़ाई**
उत्तमोत्तम (प्रधान)	७४.१६ हाथ	६४ हाथ
उत्तम	६७.१६ हाथ	५८ हाथ
मध्यम	६०.१६ हाथ	५२ हाथ
अधम	५३.१६ हाथ	४६ हाथ
अधमाधम	४६.१६ हाथ	४० हाथ

यहां उक्त 'सेनापति' के गृह के मान के समान वर्त्तमान समय के सेनापतियों के आवासों के मान समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(म) सेनापतियों के गृहों की चौड़ाई क्रमश: ८-८ हाथ कम होती है ()

(य) सेनापति के प्रधान गृह की चौड़ाई ६४ हाथ होती है ()

(र) सेनापति-गृह की चौड़ाई से षष्ठांश अधिक लम्बाई होती है ()

(ऱ) सेनापति के 'मध्यम' गृह की लम्बाई १०० हाथ है ()

(ल) सेनापति के 'अधम' गृह की चौड़ाई ५० हाथ है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ सेनापति-गृह के विषय में लिखें।

____

____

____

____

४.६ दैर्घ्य-विस्तृति के आधार पर मन्त्री-गृहों के भेद

सचिव अर्थात् मन्त्री के गृहों के भी ५ प्रकार वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलते हैं। ये गृह भी पूर्व की ही भांति दैर्घ्य और विस्तृति के मान के आधार पर वर्गीकृत हैं। टोडरानन्द ने 'वास्तुसौख्यम्' में उनका वर्णन किया है।

४.६.१ वास्तुसौख्यं के मतानुसार

षष्टिश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं .... ॥

प्रतिपदार्थ

सचिवस्य = मन्त्रियों के, पञ्च वेश्मानि = ५ प्रकार के घर बताए गए हैं। षष्टि: = घर की चौड़ाई ६० हाथ (होती है), चतुर्भिर्हीना = शेष घरों की चौड़ाई क्रमश: ४-४ हाथ कम (होती है)। स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं = घर की लम्बाई उसकी चौड़ाई के मान से अष्टमांश (१/८) अधिक होती है।

मंत्रियों के घरों के जो मान बताए गए हैं उनमें 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' घर की चौड़ाई ६० हाथ होती है। शेष घरों की चौड़ाई प्रधान घर की चौड़ाई की तुलना में क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है। मंत्रियों के घरों की चौड़ाई में उनका अष्टमांश (१/८) यदि जोड़ दिया जाए तो लम्बाई का मान प्राप्त होता है।

मन्त्री के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = ६० हाथ

मन्त्री के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई = ६० + ६०/८ हाथ

= ६० + ७.१२

= ६७.१२ हाथ अर्थात् ६७ हाथ १२ अंगुल

मन्त्री के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = ६० – ४ = ५६ हाथ

मन्त्री के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = ५६ + ५६/८

= ५६ + ७

= ६३ हाथ

मन्त्री के पञ्चविध-गृह-मान की तालिका

मन्त्रीगृह	**लम्बाई**	**चौड़ाई**
उत्तमोत्तम (प्रधान)	६७.१२ हाथ	६० हाथ
उत्तम	६३ हाथ	५६ हाथ
मध्यम	५८.१२ हाथ	५२ हाथ
अधम	५४ हाथ	४८ हाथ
अधमाधम	४९.१२ हाथ	४४ हाथ

यहां उक्त 'मन्त्री' के गृह के मान के समान वर्त्तमान समय के मन्त्रियों के आवासों के मान समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) मन्त्री के गृहों की चौड़ाई क्रमश: ६-६ हाथ कम होती है ()

(ख) मंत्री के प्रधान गृह की चौड़ाई ६० हाथ होती है ()

(ग) मन्त्री-गृह की चौड़ाई से अष्टमांश अधिक लम्बाई होती है ()

(घ) मन्त्री के 'मध्यम' गृह की चौड़ाई ६० हाथ है ()

(ङ) मंत्री के 'अधम' गृह की लम्बाई ५० हाथ है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ मन्त्री-गृह के प्रकारों का निरूपण करें।

____

____

____

____

४.७ दैर्घ्य-विस्तृति के आधार पर दैवज्ञ-पुरोहित-वैद्यगृहों के प्रमाण

दैवज्ञ, पुरोहित और वैद्य ये तीनों ही किसी भी राज्य के अत्यावश्यक अंग हैं। ये तीनों ही हमारे व्यावहारिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। कारण यह है कि ज्योतिषी के विना राजा, राज्य और प्रजा के भविष्योन्मुखी शुभ-अशुभ फल का परिज्ञा न और संकेत कौन करेगा? इसी प्रकार बिना चिकित्सक के तो आप समाज में रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। ठीक इसी तरह क्या सनातन-संस्कृति के सभी नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान, जप-ताप-होम-अर्चन, गर्भाधा से लेकर अंत्येष्टि तक के संस्कार इन सभी का क्रियान्वयन बिना पुरोहित के संभव नहीं है।

अत: इनके महत्त्व को समझते हुए वास्तुशास्त्र के सभी ग्रंथों में इनके आवास पर विचार किया गया है।

४.७.१ वास्तुसौख्यं के अनुसार

चत्वारिंशद्धीनाश्चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति।
षड्भागयुता दैर्घ्या दैवज्ञपुरोधसोर्भिषज: ।।

प्रतिपदार्थ

दैवज्ञपुरोधसोर्भिषज: = दैवज्ञ अर्थात् ज्योतिषी, पुरोधा अर्थात् पुरोहित और भिषक् अर्थात् वैद्य इन तीनों के, तु = तो,चतुश्चतुर्भि: हीना = क्रमश: ४-४ हाथ कम, पञ्च यावत् = ५ भेद (घरों के हैं), चत्वारिंशद् = प्रधान गृह की चौड़ाई ४० हाथ, षड्भागयुता दैर्घ्या = चौड़ाई अपने षष्ठांश अर्थात् छठे हिस्से (१/६) से अधिक होने पर लम्बाई।

यहां गौर करने वाली बात यह है कि इन तीनों ही के गृह की लम्बाई एक-समान रखी गयी है, जो इस बात का प्रतीक है कि इन तीनों का ही सामान महत्त्व अपनी परम्परा में माना गया है। इनके घरों के जो मान बताए गए हैं उनमें 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' घर की चौड़ाई ४० हाथ होती है। शेष घरों की चौड़ाई प्रधान घर की चौड़ाई की तुलना में क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है। इनके घरों की चौड़ाई में उनका षष्ठांश (१/६) यदि जोड़ दिया जाए तो लम्बाई का मान प्राप्त होता है।

ज्योतिषी आदि के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = ४० हाथ

ज्योतिषी आदि के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई = ४० + ४०/६ हाथ

= ४० + ६.१६

= ४६.१६ हाथ अर्थात् ४६ हाथ १६ अंगुल

ज्योतिषी आदि के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = ४० – ४ = ३६ हाथ

ज्योतिषी आदि के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = ३६ + ३६/६

= ३६ + ६

= ४२ हाथ

ज्योतिषी आदि के पञ्चविध-गृह-मान की तालिका

ज्योतिषी/पुरोहित/वैद्य गृह	लम्बाई	चौड़ाई
उत्तमोत्तम (प्रधान)	४६.१६ हाथ	३२ हाथ
उत्तम	४२ हाथ	२८ हाथ
मध्यम	३७.८ हाथ	२४ हाथ
अधम	३२.१६ हाथ	२० हाथ
अधमाधम	२८ हाथ	१६ हाथ

यहां उक्त 'ज्योतिषी आदि' के गृह के मान के समान वर्त्तमान समय के ज्योतिषी, वास्तुवेत्ता, डाक्टर, वैज्ञानिक, यान्त्रिक इत्यादि के आवासों के मान समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) ज्योतिषी के गृहों की चौड़ाई क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है ()

(ख) चिकित्सक के प्रधान गृह की लम्बाई ४६.१६ हाथ होती है ()

(ग) पुरोहित-गृह की चौड़ाई से षष्ठांश अधिक लम्बाई होती है ()

(घ) ज्योतिषी के 'मध्यम' गृह की चौड़ाई ३० हाथ है ()

(ङ) चिकित्सक के 'अधमाधम' गृह की लम्बाई २५ हाथ है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ वास्तुवेत्ता के सभी गृहों के प्रमाण बताइए ।

____

____

____

____

४.८ दैर्घ्य-विस्तृति के आधार पर चातुर्वर्ण्य-गृहों के प्रमाण

चातुर्वर्ण्य से अभिप्राय ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इन वर्णों से है। समाज में इन सभी वर्णों का अपना-अपना अलग स्थान और महत्त्व है। इन सभी वर्णों में कोई भी ऐसा नहीं है जो दूसरे की तुलना में कमतर है। ये चारों ही सनातन संस्कृति के चार मजबूत पाए हैं जिनमें किसी भी एक की कमज़ोरी संपूर्ण परम्परा व संस्कृति को निर्बल बनाता है। अत: आचार्यों ने सभी के आवास के प्रमाण की चर्चा वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में की है।

४.८.१ वास्तुसौख्य के अनुसार

टोडरानन्द ने 'वास्तुसौख्यं' में गृहों के प्रमाणों की चर्चा बड़े ही विस्तार से की है । वहीं पर इन वर्णों के गृह-प्रमाण भी उन्होंने निरूपित किए हैं। उनके अनुसार –

चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत् स्याच्चतुश्चतुर्हीना।
आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम्।।

सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतदैर्घ्यम्।
षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम्।।

प्रतिपदार्थ

चातुर्वर्ण्यव्यासो = चारो ही वर्णों के गृह का व्यास (यहां व्यास का अभिप्राय चौड़ाई से है), द्वात्रिंशत् = ३२ हाथ, स्यात् = हो, चतुश्चतुर्हीना = प्रधान घर की तुलना में शेष गृह क्रमश: ४-४ हाथ छोटे होते हैं। आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम् = १६ हाथ से कम न्यूनता की चौड़ाई वाला घर हीन कहलाता है। विप्राणां सदशांशं दैर्घ्यम् = ब्राह्मण वर्ण के घर की लम्बाई,उनकी चौड़ाई के दशांश अर्थात् दसवें हिस्से (१/१०) से अधिक होती है। क्षत्रस्याष्टांशसंयुतदैर्घ्यम् = क्षत्रिय के गृह की लम्बाई उसकी चौड़ाई से १/८ गुनी अधिक होती है, वैश्यस्य षड्भागयुतं = वैश्य के गृह की चौड़ाई में उसका छठवां हिस्सा १/६ जोड़ने पर उसकी लम्बाई और इसी प्रकार शूद्रस्य पादयुतम् = शूद्र के गृह की चौड़ाई में उसका चतुर्थांश (१/४) जोड़ने पर उसके गृह की लम्बाई प्राप्त होती है।

प्रिय अध्येता! यहां कुछ विषयों का स्पष्ट होना अत्यावश्यक है। चारों वर्णों के गृह-परिमाण के वर्णन में 'चतुश्चतुर्हीना' और 'आषोडशादिति' ये पद संकेत रूप में हैं जिसका स्पष्टीकरण अत्यावश्यक है। जैसा कि अभी तक आपने पढ़ा कि नृप इत्यादि सभी के ५ प्रकार के गृहों का निरूपण किया गया है उसके अनुसार क्या ब्राह्मण आदि वर्णों के भी ५ प्रकार के गृहों का वर्णन इन श्लोकों में निरूपित किया गया है?

तो मित्रों! इसका रहस्य ऊपर के दो पदों में निगूहित है। यहां 'चतुश्चतुर्हीना' इस पद का अर्थ दो सन्दर्भों में ग्रहण किया जाना चाहिए। पहला कि ब्राहमणादि प्रत्येक वर्ण के विविध गृहों की चौड़ाई क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है। दूसरा अर्थ यह है कि ब्राहमण आदि वर्णों के प्रधान गृह की चौड़ाई ३२ हाथ से आरम्भ करके क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है।

अर्थात् ब्राह्मण के 'उत्तमोत्तम' गृह की चौड़ाई =३२ हाथ
क्षत्रिय के 'उत्तमोत्तम' गृह की चौड़ाई = (३२-४) २८ हाथ
वैश्य के 'उत्तमोत्तम' गृह की चौड़ाई = (२८-४) २४ हाथ
शूद्र के 'उत्तमोत्तम' गृह की चौड़ाई = (२४-४) २० हाथ

'आषोडशादिति' इस पद में निहितार्थ यह है कि वर्ण कोई भी हो किन्तु उसके घर की चौड़ाई १६ हाथ से कम नहीं होना चाहिए। अब चूंकि सभी वर्णों के प्रधान गृह की चौड़ाई एक समान नहीं है अत: सभी के गृह-प्रकारों की संख्या में भी भेद होना अवश्यम्भावी है। ऐसी स्थिति में यदि प्रत्येक वर्ण के गृह के विषय में सूक्ष्मता से विचार करें न्यूनतम सीमा १६ हाथ तक ब्राहमण-वर्ण के ५ गृह-

भेद प्राप्त होते हैं जिनकी चौड़ाई क्रमश: ३२ हाथ, २८, २४, २०, १६ हाथ है।

क्षत्रिय-वर्ण के ४ गृह-भेद प्राप्त होते हैं जिनकी चौड़ाई क्रमश: २८, २४, २० और १६ हाथ हैं।

वैश्य वर्ण के ३ गृह-भेद प्राप्त होते हैं जिनकी चौड़ाई क्रमश: २४, २० और १६ हाथ हैं।

और शूद्र वर्ण के २ गृह-भे प्राप्त होते हैं जिनकी चौड़ाई क्रमश: २०हाथ और १६ हाथ हैं।

आइए, उदाहरण के तौर पर इन ब्राह्मण आदि वर्णों के एक-एक गृह की लम्बाई-चौड़ाई का मान निकालते हैं –

ब्राह्मण वर्ण के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = ३२ हाथ

ब्राह्मण वर्ण के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई = ३२ + ३२/१० हाथ

= ३२ + ३.४.४८

= ३५.४.४८ हाथ अर्थात् ३५ हाथ ४ अंगुल ४८ व्यंगुल

ब्राह्मण वर्ण के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = ३२-४ = २८ हाथ

ब्राह्मण वर्ण के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = २८ + २८/१० हाथ

= २८ + २.१९.१२

= ३०.१९.१२ हाथ अर्थात् ३५ हाथ १९ अंगुल १२ व्यंगुल

ब्राह्मण वर्ण के पञ्चविध-गृह-मान की तालिका

ब्राह्मण गृह	लम्बाई	चौड़ाई
उत्तमोत्तम (प्रधान)	३५.४.४८ हाथ	३२ हाथ
उत्तम	३०.१९.१२ हाथ	२८ हाथ
मध्यम	२६.९.३६ हाथ	२४ हाथ
अधम	२२ हाथ	२० हाथ
अधमाधम	१७.१४.२४ हाथ	१६ हाथ

क्षत्रिय वर्ण के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = २८ हाथ

क्षत्रिय वर्ण के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' गृह की लम्बाई = २८ + २८/८ हाथ

= २८ + ३.१२

= ३१.१२ हाथ अर्थात् ३१ हाथ १२ अंगुल

क्षत्रिय वर्ण के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = २४ हाथ

क्षत्रिय वर्ण के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = २४ + २४/८ हाथ

= २४ + ३

= २७ हाथ

क्षत्रिय वर्ण के चतुर्विध-गृह-मान की तालिका

क्षत्रिय गृह	लम्बाई	चौड़ाई
उत्तमोत्तम (प्रधान)	३१.१२ हाथ	२८ हाथ
उत्तम	२७ हाथ	२४ हाथ
मध्यम	२२.१२ हाथ	२० हाथ
अधम	१८ हाथ	१६ हाथ

वैश्य वर्ण के 'उत्तम' गृह की चौड़ाई = २४ हाथ

वैश्य वर्ण के 'उत्तम' गृह की लम्बाई = २४ + २४/६ हाथ

= २४ + ४

= २८ हाथ

वैश्य वर्ण के त्रिविध-गृह-मान की तालिका

वैश्य गृह	लम्बाई	चौड़ाई
उत्तम	२८ हाथ	२४ हाथ
मध्यम	२३.८ हाथ	२० हाथ
अधम	१८.१६ हाथ	१६ हाथ

शूद्र वर्ण के 'प्रधान' गृह की चौड़ाई = २० हाथ

वैश्य वर्ण के 'प्रधान' गृह की लम्बाई = २० + २०/४ हाथ

= २० + ५

= २५ हाथ

शूद्र वर्ण के द्विविध-गृह-मान की तालिका

शूद्र गृह	लम्बाई	चौड़ाई

प्रधान	२५ हाथ	२० हाथ
गौण	२० हाथ	१६ हाथ

बोध प्रश्न

प्र.५ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) ब्राहमण के पंचविध-गृहों की चौड़ाई क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है ()

(ख) क्षत्रिय के प्रधान गृह की लम्बाई ३३.१२ हाथ होती है ()

(ग) क्षत्रिय के मध्यम गृह की चौड़ाई २० हाथ होती है ()

(घ) वैश्य के 'मध्यम' गृह की लम्बाई २४.८ हाथ है ()

(ङ) शूद्र के 'गौण' गृह की लम्बाई २० हाथ है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.५ वैश्य वर्ण के सभी गृहों के प्रमाण बताइए ।

___

___

___

___

४.९ सारांश –

राजा इत्यादि के पांच प्रकार के गृहों का निरूपण किया है, जो क्रमश: - १. उत्तमोत्तम, २. उत्तम, ३. मध्यम,

४. अधम, और ५. अधमाधम। ये सभी कोटियां उनके दैर्घ्य और विस्तृति के आधार पर निर्धारित की गयी हैं। राजगृह के जो ५ भेद बताए गए हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' संज्ञक भेद की चौड़ाई १०८ हाथ तथा चौड़ाई के मान की सवा (१$\frac{१}{४}$)गुणित या दूसरे शब्दों में कहें तो चौड़ाई के मान से चतुर्थांश अधिक लम्बाई होती है। सेनापति के भी गृह के ५ भेद हैं जो कि क्रमश: चौड़ाई में ६-६ हाथ छोटे होते जाते हैं। आचार्य ने प्रधान गृह की चौड़ाई ६४ हाथ बताई है। इसी प्रकार सेनापति के गृहों की चौड़ाई के मान में उसका छठा भाग (१/६) जोड़ दिया जाए तो उस गृह की लम्बाई का ज्ञान हो

जाता है। मंत्रियों के घरों के जो मान बताए गए हैं उनमें 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' घर की चौड़ाई ६० हाथ होती है। शेष घरों की चौड़ाई प्रधान घर की चौड़ाई की तुलना में क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है। मंत्रियों के घरों की चौड़ाई में उनका अष्टमांश (१/८) यदि जोड़ दिया जाए तो लम्बाई का मान प्राप्त होता है। ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्य इन तीनों के 'उत्तमोत्तम' या 'प्रधान' घर की चौड़ाई ४० हाथ होती है। शेष घरों की चौड़ाई प्रधान घर की चौड़ाई की तुलना में क्रमश: ४-४ हाथ कम होती है। इनके घरों की चौड़ाई में उनका षष्ठांश (१/६) यदि जोड़ दिया जाए तो लम्बाई का मान प्राप्त होता है। ब्राह्मण आदि वर्णों के प्रधान गृह की चौड़ाई क्रमश: ३२ हाथ, २८ हाथ, २४ हाथ, २० हाथ होती है और प्रधान घर की तुलना में शेष गृह क्रमश: ४-४ हाथ छोटे होते हैं। ब्राह्मण वर्ण के घर की लम्बाई, चौड़ाई के दशांश अर्थात् दसवें हिस्से (१/१०) से अधिक क्षत्रिय के गृह की लम्बाई उसकी चौड़ाई से १/८ गुनी अधिक, वैश्य के गृह की चौड़ाई में १/६ हिस्सा जोड़ने पर उसकी लम्बाई और शूद्र के गृह की चौड़ाई में उसका चतुर्थांश (१/४) जोड़ने पर उसके गृह की लम्बाई प्राप्त होती है।

४.१० शब्दावली –

अष्टोत्तरं = १०८ नृपमन्दिरम्।

विस्तारं = चौड़ाई

अष्टाष्टोनितानि = ८-८ कम

पादसंयुक्तं = एक चौथाई अधिक जुड़ा (सवा)

सद्मनां = घरों के

चतु:षष्टि: = ६४।

षड्भागसमन्वितं = १/६ हिस्सा जुड़ा

दैर्घ्यम् = लम्बाई

वेश्मानि = घर

स्वाष्टांशयुता = अपने अष्टमांश १/८ से जुड़ा

पुरोधस: = पुरोहित का

भिषज: = वैद्य का

आषोडशात् = १६ से लेकर

न्यूनतरम् = कम

सदशांशं = दशांश १/१० से युक्त

क्षत्रस्य = क्षत्रिय का

अष्टांशसंयुतं = १/८ जुड़ा

४.११ बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.२ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र. ३ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र. ४ (क) (√) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.५ (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

४.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. राम मनोहर द्विवेदी (२०१२) बृहद्वास्तुमाला, चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२. कमलाकान्त शुक्ल (१९९९), टोडरमल्लविरचितं वास्तुसौख्यं, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

३. डा. मुरलीधर चतुर्वेदी (२००७), रामदीनविरचितं बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् श्रीधरीहिन्दीव्याख्यासहितम्, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

४.१३ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. डा. अशोक थपलियाल (२०११), वास्तुप्रबोधिनी, भारतीय ज्योतिष, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

४.१४ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. राजगृह के सभी भेदों पर प्रकाश डालिए।

२. मन्त्री के सभी प्रकार के गृहों के परिमाण को स्पष्ट करें।

३. ब्राह्मण वर्ण के सभी गृह-भेदों को विस्तार से निरूपित कीजिए।

खण्ड – 2

वास्तुपद द्वार निर्धारण, भेद, स्वरूप एवं मुहूर्त्तादि विचार

इकाई - १ वास्तुपद द्वार निर्धारण

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वास्तुशास्त्र में डिप्लोमा पाठ्यकम के चतुर्थ पत्र DVS-104 से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वास्तुपद द्वार निर्धारण। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने वर्ग, आय तथा पिण्डादि साधन का अध्ययन कर लिया है। अब आप वास्तुपद द्वार निर्धारण का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत द्वार निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय माना गया है। गृहनिर्माण में वास्तुपद द्वार निर्धारण का निर्णय विभिन्न रूपों में हमें अध्ययनोपरान्त प्राप्त होता है। यथा - राशिपरत्वेन, आयपरत्वने, वर्णायपरत्वेन आदि इत्यादि।

वास्तुपद द्वार का निर्धारण कैसे होता है? इसके कौन-कौन से प्रमुख घटक हैं? इसका प्रयोजन एवं महत्व क्या है? आदि इत्यादि तत्सम्बन्धित समस्त प्रश्नों के समाधानार्थ इस इकाई का हम सब अध्ययन करते हैं।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- वास्तु पद द्वार निर्धारण क्या है।
- द्वार का निर्धारण कैसे करते है।
- गृहनिर्माण में द्वार का महत्व क्या है।
- वास्तु शास्त्र में द्वार सम्बन्धित मुख्य विषय कौन-कौन से है।

१.३ वास्तुपद द्वार निर्धारण

'द्वार निर्धारण' वास्तु शास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। वास्तुपद द्वार निर्धारण के द्वारा शास्त्रानुसार निर्णिय कर गृह का मुख्य द्वार का निर्माण किया जाता है। गृहेश (गृह का स्वामी) के राशिवशाद् द्वारदिग्विभाग का निर्धारण करते हुए ज्योतिर्निबन्धकार कहते हैं कि –

कुलीरालिझषाणां च पूर्वद्वारं शुभावहम्।

कन्यामकरयुग्मानां दक्षिणद्वारमिष्टदम्।।

तुलाकुम्भवृषाणां च पश्चिमाभिमुखं स्मृतम्।

म्यद्वारं शुभाय स्यान्मेषसिंहधनुर्भृताम्।।

अर्थात् कर्क, वृश्चिक और मीन राशिवालों के लिए पूर्वदिशा में, कन्या, मकर और मिथुन राशिवालों के लिए दक्षिण दिशा में, तुला, कुम्भ और वृष राशिवालों के लिये पश्चिम दिशा में एवं मेष, सिंह और धनुराशिवालों के लिए उत्तर दिशा में द्वार मकान का मुख बनाना उत्तम फलदायक होता है।

इसी सन्दर्भ में 'वास्तुराजवल्लभ' ग्रन्थकार का विशेष कथन है –

राशीनामलिमीनसिंहभवनं पूर्वानतं शोभनं।

कन्याकर्कटनक्रराशिगृहिणां याम्याननं मन्दिरम्।।

राशेर्धन्वितुलायुगस्य सदनं शस्तं प्रतीचीमुखं।

पुंसां कुम्भवृषाजराशिजनुषां सौम्याननं स्याद् गृहम्।।

वृश्चिक, मीन और सिंह राशिवालों के लिए पूर्वदिशा में, कन्या, कर्क और मकर राशि वालों के लिए दक्षिण दिशा में, धनु, तुला और मिथुन राशि वालों के लिए पश्चिम दिशा में और कुम्भ, वृष तथा मेषराशिवालों के लिए उत्तर दिशा में मकान का दरवाजा बनाना उत्तम होता है।

'वृहद्दैवज्ञरंजन' के रचयिता आचार्य रामदीन दैवज्ञ द्वारा लिखित वर्ण आधारित विभिन्न राशि वालों के लिए गृह द्वार निर्णय –

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणेशुभम्।

शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरेमतम्।।

ब्राह्मण राशि (कर्क, वृश्चिक, मीन) वालों के लिए गृह द्वार पूर्व में, क्षत्रिय राशि (वृष, कन्या एवं मकर) वालों के लिए उत्तर में, वैश्य राशि (मिथुन, तुला, कुम्भ) वालों के लिए दक्षिण में तथा शूद्र राशि (मेष, सिंह एवं धनु) वालों के लिए पश्चिम दिशा में गृह द्वार बनाना शुभ फल देने वाला होता है। राजाओं के लिए उत्तर दिशा में गृहद्वार बनाना उत्तम होता है।

स्पष्टार्थ चक्र -

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	दिशा
कर्क, वृश्चिक, मीन	कन्या, मकर, मिथुन	तुला, कुम्भ, वृष	मेष, सिंह धनु	**ज्योतिर्निबन्धोक्त**
वृश्चिक, मीन, सिंह	कन्या, कर्क, मकर	धनु, तुला, मिथुन	मेष, वृष, कुम्भ	**वास्तुराजवल्लभोक्त**
ब्रह्मणराशि४,८,१२	वैश्य राशि२,६,१०	शूद्रराशि३,७,११	नृप राशि १,५,९	**वृहद्दैवज्ञरंजनोक्त**

अब आय परत्वेन 'द्वार निर्णय' कहते है –

सर्वद्वारइहध्वजोवरूणदिग्द्वारं च हित्वा हरि:।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यम सुरेशाशामुख: स्याच्छुभ:।।

अर्थात् ध्वज आय वाले गृह में सभी दिशाओं में द्वार रखना शुभद होता है। सिंह आय के लिए पश्चिम से इतर दिशाओं में, वृष आय के लिए पूर्व दिशा में, गज आय के लिए पूर्व और दक्षिण दिशाओं में द्वार शुभ होता है।

वर्णायपरत्वेन गृहद्वार निर्णय –

ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजानामुदंगमुखं भूमिभृतां च सिंहे।
विशोवृषे प्राग्वदनं गजेतु शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति।।

ब्राह्मण वर्ण और ध्वज आय वाले गृह में पश्चिम की ओर, क्षत्रिय वर्ण और सिंह आय के लिए उत्तर दिशा में, वैश्य वर्ण और वृष आय के लिए पूर्व दिशा में और शूद्रवर्ण और गज आय के लिए दक्षिण दिशा में गृह द्वार करना शुभफलदायी है।

गृह द्वार लम्बाई और चौड़ाई में ही बनाना उत्तम होता है। कोणों में द्वार नहीं बनाना चाहिए। वह अशुभ फलदायी होता है। जैसा कि कहा भी है –

द्वारमायात: कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणं द्वारं यद् दु:खशोकभयप्रदम्।।

दीवार के मध्य में द्वार बनाना आचार्यों द्वारा निषेध किया गया है। साथ ही द्वार के उपर भी द्वार नहीं बनाना चाहिए। यथा – **भित्तिमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्। आवहेत् कलहं शोकं नारीर्वा सम्प्रदूषयेत्।। द्वारस्योपरयिद्द्वारं द्वारं द्वारस्यसम्मुखम्। न कार्यं व्ययदं यच्च संकटं तद्दरिद्रकृत्।।**

१.३.१ एकाशीति, चतु:षष्टि आदि वास्तुपद निर्धारण

आइए अब हम वास्तु में एकाशीति पद, ३२ बाह्यकोण में स्थित देवताओं तथा चतु:षष्टि पद विभाग आदि का अध्ययन करते हैं।

एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखा:।
अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोणस्था:।।

अर्थात् एकाशीति ८१ पद का वास्तु बनाने के लिए १० रेखा पूर्व-पश्चिम और १० रेखा उत्तर दक्षिण

को बनाना चाहिए ऐसा करने से ८१ कोष्ठक हो जायेंगे उनमें भीतर १३ देवता और बाहर ३२ देवता होते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि वास्तुपूजन के समय ४५ देवताओं का ८१ कोष्ठक के अन्दर विन्यास करना पड़ता है। इस अभिप्राय से यहाँ ४५ देवताओं का उल्लेख किया है। किन्तु द्वार में बाहरी ३२ देवताओं के भागों का ही प्रयोजन पड़ता है। इसलिये यहाँ आगे केवल उन्हीं का विभाग क्रम आपके ज्ञानार्थ प्रस्तुत है –

एकाशीतिपदचक्रम् ।

१ शिखी	२ पर्जन्यः	३ जयन्तः	४ इन्द्रः	५ सूर्यः	६ सत्यः	७ भृशः	८आकाशः	९ वायुः
३२ दितिः	४२ आपः						४३सवित्र	१० पूषा
३१ अदितिः		४१ आपव	३४ अर्यमा			३५ सविता	११ वितथः	
३० सर्पाः		४० पृथ्वीधरः	३३ ब्रह्मा			३८ विवस्वान्	१२ बृहत्क्षतः	
२९ सोमः							१३ यमः	
२८ भल्लाटः							१४ गन्धर्वः	
२७ मुख्यः		३९रा-यक्ष्मा	३६ मित्रः			३७ इन्द्रः	१५ भृङ्गराजः	
२६ अहिः	४५ रुद्रः	२३ शोषः	२२ असुराः	२१ वरुणः	२० पुष्पदन्तः	१९ सुग्रीवः	४४विजय	१६ मृग
२५ रोगः	२४ पापः						१८ दौ०	१७ पि०

चक्र में स्थित ३२ ब्राह्यकोणस्थ देवता –

शिखिपर्यन्यजयन्तेन्द्रसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च।
ऐशान्यादि क्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे।।
पूषावितथवृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभंगराजगमृगाः।
पितृदौवारिकसुग्रीवकुसुमदन्ताऽम्बुपत्यसुराः।।
शेषोऽथ पापयक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च।
भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिदितिरिति क्रमशः।।

उक्त एकाशीति (८१) कोष्ठक के वास्तुपद में ईशान कोण से आरम्भ करके अग्नि कोण तक १ शिखि, २ पर्यन्य, ३ जयन्त, ४ इन्द्र, ५ सूर्य, ६ सत्य, ७ भृश, ८ आकाश इन आठो देवताओं का और पूर्व तथा दक्षिण (अग्नि कोण) में ९ वायु का भाग होता है। उसके बाद अग्नि कोण से नैर्ऋत्य कोण तक १० पूषा, ११ वितथ, १२ वृहत्क्षत, १३ यम, १४ गन्धर्व, १५ भृंगराज, १६ मृग, १७ पितृ, इनका फिर नैर्ऋव्य कोण से वायव्य कोण तक १८ दौवारिक, १९ सुग्रीव, २० पुष्पदन्त, २१ वरूण, २२ असुर,२३ शोष,२४ पाप और २५ रोग इनका उसके बाद वायव्य कोण से ईशान कोण तक २६ अहि, २७ मुख्य, २८ भल्लाट, २९ सोम, ३० सर्प, ३१ अदिति और ३२ दिति इन देवताओं का भाग क्रम से होता है।

नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाऽथवा चतुःषष्ठे।
द्वाराणि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः।।
अनलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनतां नरेन्द्रवाल्लभ्यम् ।
क्रोधपरता नृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ।।
अल्पसुतत्वं प्रैष्यं, नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन।।
सुतपीडारिपुवृद्धिर्नसुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्ष्ायो राग इत्परे।।
बधवन्धोरिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेनः दोषाः स्त्रियां नैःस्वम्।।

नव गुणित सूत्र से विभाजित कर ८१ पद में अथवा अष्टगुणित सूत्र से 64 पद में शिखि आदि देवताओं के विभाग होते हैं। उनमें द्वार बनाने के फल कहते हैं।

पूर्व दिशा में प्रथम शिखि भाग में द्वार बनाने से अग्निभय 2- पर्यन्त भाग में द्वार बनाने से कन्याओं का जन्म, 3- जयन्त भाग में द्वार बनानेसे प्रचुर धन लाभ, 4- इन्द्र के भाग में द्वार बनाने से राजकृपा, 5- सूर्य भाग में द्वार बनाने से क्रोधाधिक्य, 6- सत्य भाग में द्वार बनाने से झूठ की अधिकता, 7- भृश भाग में द्वार बनाने से क्रुरता, 7- आकाश भाग में द्वार करने से चौरभय होता है।

दक्षिण दिशा में 1- वायु भाग में द्वार बनाने से सन्तति की अल्पता, 2- पूषा या पौष्ण भाग में द्वार बनाने से दास वृत्ति, 3- वितथ भाग में द्वार बनाने से नीच वृत्ति, 4- वृहत्क्षतभाग में द्वार बनाने से भक्ष्य, पान और पुत्रों की वृद्धि होती है। 5- यम के भाग में द्वार बनाने से अशुभ फल की प्राप्ति, 6-

गंर्धव के अंश में द्वार बनाने से कृतघ्नता, 7- भृड.गराज के भाग में द्वार करने से दारिद्रय, 8- मृग के भाग में द्वार बनाने से सन्तति और पराक्रम की हानि होती है।

पश्रिम दिशा में 1- पितृ भाग में द्वार बनाने से संतति कष्ट, 3- दौवारिक में बनाने से शत्रुओं की वृद्धि, 3- सुग्रीव भाग में द्वार बनाने से धन और पुत्र की अप्राप्ति, 4- कुसुमदन्त नामक भाग में बनाने से पुत्रादि तथा धनधान्य की अभिवृद्धि, 5- वरूण भाग में बनाने से धन प्राप्ति, 6- असुर भाग में बनाने से राजभय, 7- शेष भाग में बनाने से धनक्षय 8- पाप पक्ष भाग में बनाने से रोगादि का भय होता है। उत्तर दिशा में 1- रोग भाग में द्वार बनाने से वध और बन्धन की प्राप्ति होती है। 2- सार्प भाग में द्वार बनाने से शत्रुवृद्धि 3- मुख्य भाग में द्वार बनाने से धनलाभ 4- भल्लाट भाग में द्वार बनाने से गुण और सम्पत्ति का लाभ 5- सौम्य भाग में बनाने से पुत्र धन की वृद्धि, 6- भौजड.ग नामक भाग में द्वार बनाने से पुत्र से विरोध, 7- आदित्य भाग में द्वार बनाने से स्त्री को कष्ट 8- दिति भाग में द्वार बनाने से निर्धनता होती है।

३२ पद विभाग

पूर्व

१ ३२	२	३	४	५	६	७	८ ९
३१							१०
३०							११
२९							१२
२८							१३
२७							१४
२६							१५
२५ २४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१६ १७

पश्चिम

उपर ३२ द्वारों का क्रमश: फल कहा गया है। जैसे कि पूर्व में प्रथम शिखि भाग में द्वार बनाने से भय २ में पर्यन्त भाग में द्वार बनाने से कन्या संतति, ३ जयन्त भाग में प्रचुर धन लाभ आदि समस्त फल, स्पष्ट है आप सभी समझ ही गये होंगे। उपर क्षेत्र में दाहिनें ओर दक्षिण तथा बायें और उत्तर दिशा ग्रहण करना चाहिए।

उपर्युक्त संदर्भ में निम्न बचन भी द्रष्टव्य है-

पूर्वाण्यैशान्यां याम्याग्नेरययां दक्षिणानिजानीयात्।
द्वाराणि नैर्ऋतात पश्चिमान्युदक्स्थानिवायव्याम्।।
आग्नेयमग्निभयं पार्जन्यंस्त्रीप्रसूतिदं द्वारम्।
प्रचुरधनदं जयन्तं नृपवल्लभकारि माहेन्द्रम्।।
शौर्येक्रोध: प्रचुर: सत्यऽनृतवादितं भृशेकौर्यम्।
चौर्यं तथान्तरिक्षे प्राग्द्वाराणि प्रदिष्टानि।।
वायव्येऽल्पसुतत्वं प्रैष्यं पीष्णेऽथनीचता वितथे।
बह्वत्रपानपुत्रं वृहत्क्षते याम्यापि रौद्रम्।।
गान्धर्वे गन्धलं नृपचौर्यभयाय भृंगराजाख्यम्।
मृगमपि सुतवीर्यघ्नं दक्षिणतो द्वारनिर्देश:।।
पित्रये शरीरपीडा दौवारिकसंज्ञिते च रिपुवृद्धि:।।
सुग्रीव धनहानि: पुत्रधनाढयं कुसुमदन्तम्।
वारूणमर्थ निचयदं नृपभयदं चासुर विनिर्दिष्टम्।।
शोषं धनहानिकरं बहुरोगं पापयक्ष्माख्यम् ।।
रोगमखं बधबन्धदमात्मजवैराभिवृद्धिदं नागम् ।
मुख्यं धनसुतवृद्धिदमनेककल्याणदं च भल्लाटम् ।।
सौम्यं धनपुत्रकरं भौजड.गे पुत्रवैररिपुवृद्धि:।
अदितौ स्त्रीदोषा: स्युर्दितौ धनं सक्षयं याति।।

६४ पद विभाग –

अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।
ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्धपदा ब्रह्मकोणस्था:।।
अष्टौ च बहिष्कोणेबर्धपदास्तदुभयस्थिता: सार्धा:।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते च।।

अर्थात् ६४ पद का वास्तु बनाने के लिए पूर्व विधि से ९ रेखायें पूर्व पश्चिम

१.३.२ दिशाओं का द्वार फल विचार -

पूर्वद्वार फलम्

अनिलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेंद्रतो लब्धिः।

क्रोधाधिकत्वमनृतं क्रौधं चौर्य क्रमात्पूर्वे[3]।।

पूर्व दिशा के प्रथम दरवाजे का नाम शिखि होता है, इसमें दरवाजा रखने पर वायु का भय होता है। दूसरे का पर्जन्य, इसमें बनाने पर कन्या का जन्म होता है। तीसरे का नाम जयन्त होता है इसमें दरवाजा रखने पर धन की अधिकता होती है। चौथे का नाम इन्द्र है, इसमें रखने पर राजप्रियता होता है। पाँचवें का नाम सूर्य हाता है इसमें बनाने पर क्रोध की अधिकता होती है। छठे का नाम सत्य होता होता है। इसमें इसमें असत्यता, सातवें का नाम भृश होता है, इसमें क्रुरता और आठवें का नाम अन्तरिक्ष होता है उसमें दरवाजा बनाने पर चोरी होती है।

<u>वृहत्संहिता ग्रन्थ में प्रतिपादित गृहद्वार फल</u>

दक्षिण द्वार फल -

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं, कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ।।

दक्षिण में अनिल पद में द्वार हो तो कम पुत्र, पूषा पद में हो तो दासभाव, वितथ में हो तो नीच कर्म व नीच आचरण, वृहत्क्षत पर हो तो अन्न की बहुतायात व पुत्र वृद्धि, यम पर हो तो अशुभ, गन्धर्व पर हो तो कृतघ्नता, भृंगराज पर हो तो निर्धनता और मृग पर हो तो पुत्र की शक्ति का ह्रास होता है।

पश्चिमद्वारफलम्

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पत्तिनृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ।।

पितर पद द्वार हो तो पुत्रों का कष्ट, दौवारिक पद हो तो शत्रु वृद्धि, सुग्रीव पद में द्वार हो तो धन व पुत्र वृद्धि, पुष्पदन्त में द्वार हो तो सुतार्थफल, वरूणपद में हो तो धनाप्ति असुर पद हो तो राजभय, शोष पद हो तो धन नाश तथा पापयक्ष्मा पद में द्वार हो तो रोगभय होता है।

उत्तरद्वारफलम्

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ।।

उत्तर दिशा में रोग पद पर द्वार हो तो मृत्यु बन्धन, सर्पपद में द्वार हो तो शत्रु वृद्धि, मुख्य पद में द्वार हो तो धन व पुत्र का लाभ, भल्लाट पद द्वार हो तो सब गुण व सम्पत्तियाँ, सोम पर द्वार हो तो पत्र से द्वेष, चरक पद पर द्वार हो तो सुत दोष अदिति पद में द्वार हो तो स्त्री द्वारा कष्ट, दिति में द्वार हो तो निर्धनता होती है।

तुला, मेष, वृष, वृश्चिक राशि के सूर्य में दक्षिण, उत्तर दिशा में दरवाजे का मुख रखना चाहिए। इसके विपरीत राशियों के सूर्य में मीन-धनु-कन्या में जो मकान बनता है वह बुद्धिहीन रोग व शोक युक्त होता है।

महर्षि गर्ग के मत से द्वार नक्षत्र -

कृत्तिकाभगमैन्द्रं च विशाखा च पुनर्वसुः।
तिष्यो हस्तस्तथाऽऽद्रां च क्रमात् पूर्वेषु निर्दिशेत्।।
चित्रा विशाखा पौष्णं च नैर्ऋतं यमदैवतम्।

वैश्वदेवाश्विनं मैत्रं क्रमाद् दक्षिणसंश्रितम्।।
पि यं प्रोष्ठपदार्यम्णमाषाढं च द्विदैवतम्।
वारूणाश्विनसावित्रं क्रमात् पश्चिम संश्रितम्।।
स्वात्याश्लेषाभिजित्सौम्यं वैष्णवं वासवं तथा।
याम्यं ब्राह्मं क्रमात् सौम्यद्वारेषु च विनिर्दिशेत्।।

पूर्व दिशा में ईशान से चलकर प्रदक्षिणा क्रम से कृत्तिका, पू. फा., ज्येष्ठा, विशाखा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, आर्द्रा ये पूर्व दिशा के द्वार नक्षत्र हैं। चित्रा, विशाखा, रेवती, मूल, भरणी, उ. षा., अश्विनी, अनुराधा ये दक्षिण दिशा के द्वार नक्षत्र हैं। मघा, उ. भा. उ. फा. उ. षा. विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, हस्त, ये पश्चिम दिशा के द्वार नक्षत्र हैं। स्वाती, श्लेषा, अभिजित्, मृगशिरा, श्रवण, ज्येष्ठा, भरणी, रोहिणी ये उत्तर दिशा के द्वार नक्षत्र हैं। द्वार नक्षत्र व गृह स्वामी से चन्द्रमा व तारा की अनुकूलता देखकर द्वार निश्चिय करना चाहिए। आय का विचार (ध्वजादि) भी आवश्यक है।

१.३.३ द्वारवेध का फल -

मार्गतरूकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ।।

दरवाजे के सामने मार्ग (सीधा Vertical गलियारा), पेड़, कोना, कुआँ, खम्भा, पानी निकलने का स्थान (नाली) हो तो अशुभ होता है। लेकिन दरवाजे की ऊँचाई से दुगनी दूरी पर उक्त चीजें हों तो वेध दोषकारक नहीं माना जाता है। यह दूरी भवन की ऊँचाई की दुगनी न होकर दरवाजे की ऊँचाई से दुगनी होनी चाहिए।

नारायण मत में -

कोणाध्वभ्रमकूपकर्द - मतरूद्वास्तंभदेवेक्षितं।
सद्मोच्चं द्विगुणाधिकांतरभवे वेधे न दोषः किल।।

मार्ग, भ्रम (कुलाल चक्रादि), कुआ, कीचड़, वृक्ष द्वारन्तर, खम्भा, देवमन्दिर से विद्ध घर का मुख नहीं बनाना चाहिये और घर की ऊँचाई से दूगनी दूरी होने पर ये दोष दाता नहीं होते हैं।

द्वारोच्छ्रायद्विगुणितां भूमिं त्यक्त्वा बहिः स्थितः।
न दोषाय भवेद्वेधो गृहस्य गृहिणोऽथवा ।।

द्वार की ऊँचाई से द्विगुणित भूमि को छोड़कर बाहर की भूमि पर द्वारवेध नहीं होता है। वेध से तात्पर्य ठीक सामने होने से है। दरवाजे के सामने खड़ी रेखात्मक स्थिति हो तो गली, नाली आदि वेध दोषकारक होती है।

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरूणा।
पड्.कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिःस्त्राविणि प्रोक्तः।।
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणाभिमुखे।।

गलियारे से वैध हो तो गृहस्वामी के लिए विनाश कारक। पेड़ से वैध हो तो घर के बालकों के लिए दोष कारक, कीचड़ व पानी के स्थान से वैध हो तो शोक कारक तथा नाली का वेध हो तो खूब धन व्यय होता है। कुआँ हो तो मानसिक अस्थिरता, मिर्गी आदि। दरवाजे के ठीक सामने देव प्रतिमा हो तो गृहस्वामी का विनाश। खम्बा हो तो स्त्रियों के लिए दोष कारक। ब्रह्मा स्थान (भीतर से) या बाहर ब्रह्मा की प्रतिमा से वेध हो तो कुलनाश होता है।

बोध प्रश्न : -

1. निम्न में 'झष' का शाब्दिक अर्थ है?
   क. मीन ख. वृष ग. तुला घ. मिथुन
2. मकर और मिथुन राशि वालों के लिए किस दिशा में द्वार बनाना शुभ होता है?
   क. पूर्व में ख. पश्चिम में ग. उत्तर में घ. दक्षिण में
3. वृहद्दैवज्ञरंजन ग्रन्थ के रचयिता कौन है?
   क. वराहमिहिर ख. भास्कर ग. रामदीन दैवज्ञ घ. वासुदेव
4. निम्न में क्षत्रिय राशियाँ कौन-कौन सी है?
   क. मिथुन, कर्क एवं सिंह ख. वृष, कन्या एवं मकर ग. तुला, वृश्चिक एवं मेष घ. कोई नहीं
5. द्वार के उपर द्वार बनाना कैसा होता है।
   क. शुभाशुभ ख. शुभ ग. अशुभ घ. कोई नहीं
6. एकाशीति पद चक्र में बाहर देवताओं की संख्या कितनी है?
   क. ३३ ख. ३४ ग. ३२ घ. ३०

१.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि 'द्वार निर्धारण' वास्तु शास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। वास्तुपद द्वार निर्धारण के द्वारा शास्त्रानुसार निर्णित कर गृह का मुख्य द्वार का निर्माण किया जाता है। गृहेश (गृह का स्वामी) के राशिवशाद् द्वारदिग्विभाग का निर्धारण करते हुए ज्योतिर्निबन्धकार कहते हैं कि – कर्क, वृश्चिक और मीन राशिवालों के लिए पूर्वदिशा में, कन्या, मकर और मिथुन राशिवालों के लिए दक्षिण दिशा में, तुला, कुम्भ और वृष राशिवालों के लिये पश्चिम दिशा में एवं मेष, सिंह और धनुराशिवालों के लिए उत्तर दिशा में द्वार मकान का मुख बनाना उत्तम फलदायक होता है। इसी सन्दर्भ में 'वास्तुराजवल्लभ' ग्रन्थकार का विशेष कथन है – वृश्चिक, मीन और सिंह राशिवालों के लिए पूर्वदिशा में, कन्या, कर्क और मकर राशि वालों के लिए दक्षिण दिशा में, धनु, तुला और मिथुन राशि वालों के लिए पश्चिम दिशा में और कुम्भ, वृष तथा मेषराशिवालों के लिए उत्तर दिशा में मकान का दरवाजा बनाना उत्तम होता है।

'वृहद्दैवज्ञरंजन' के रचयिता आचार्य रामदीन दैवज्ञ द्वारा लिखित वर्ण आधारित विभिन्न राशि वालों के लिए गृह द्वार निर्णय – ब्राह्मण राशि (कर्क, वृश्चिक, मीन) वालों के लिए गृह द्वार पूर्व में, क्षत्रिय राशि (वृष, कन्या एवं मकर) वालों के लिए उत्तर में, वैश्य राशि (मिथुन, तुला, कुम्भ) वालों के लिए दक्षिण में तथा शूद्र राशि (मेष, सिंह एवं धनु) वालों के लिए पश्चिम दिशा में गृह द्वार बनाना शुभ फल देने वाला होता है। राजाओं के लिए उत्तर दिशा में गृहद्वार बनाना उत्तम होता है।

१.५ पारिभाषिक शब्दावली

अलि – वृश्चिक राशि।

झष – मीन।

गृहेश – गृह का स्वामी।

दिग् – दिशा।

गृह द्वार – घर का द्वार।

धनाप्ति – धन की प्राप्ति।

रिपु – शत्रु।

एकाशीति – ८१ संख्या

१.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. क

२. घ

३. ग

४. ख

५. ग

६. ग

१.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वृहद्वास्तुमाला – हरिशंकर पाठक

वास्तुसार: - प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

वास्तुरत्नाकर – विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

१.८ सहायक पाठ्यसामग्री

मयमतम्

वास्तुराजवल्लभ

१.९ निबन्धात्मक प्रश्न

१. द्वार निर्णय का उल्लेख कीजिये।

२. एकाशीति वास्तु पद चक्र का सचित्र वर्णन कीजिये।

३. द्वात्रिंशत् वास्तु पद चक्र का प्रतिपादन कीजिये।

४. द्वार फल का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई – २ द्वार के भेद

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वास्तुशास्त्र में डिप्लोमा पाठ्यकम के चतुर्थ पत्र DVS-104 की द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – द्वार के भेद। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने 'वास्तुपद द्वार निर्धारण' का अध्ययन कर लिया है। अब आप द्वार के भेद का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत गृहनिर्माण की परम्परा में द्वार का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण बतलाया गया है। दिग तथा वर्ण के अनुसार द्वार के विभिन्न रूपों का उल्लेख हमें मिलता है।

आइए प्रस्तुत इकाई में हम सब वास्तुशास्त्रोक्त द्वार के विभिन्न भेदों को यहाँ समझने का प्रयास करते हैं।

२.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- वास्तुशास्त्रान्तर्गत मुख्यत: द्वार के कितने भेद है।
- गृहनिर्माण में द्वार का निर्णय कैसे करते हैं।
- द्वार का प्रयोजन एवं महत्व क्या है।
- द्वार का फल क्या है।

२.३ द्वार के भेद

अब तक आप सभी ने वास्तुपद द्वार निर्धारण के बारे में अध्ययन किया। अब आप गृह निर्माण में द्वारों के भेद के बारे में जानकारी प्राप्त करने जा रहे हैं। सामान्यतया जब आप गृह का निर्माण करते हैं तो भूमि और स्थान के अनुसार तथा स्व-स्व सुविधानुसार गृह में द्वार का निर्माण करते हैं। कुछ लोग मुख्य द्वार (प्रवेश द्वार) के अतिरिक्त भी गृह के पीछे का द्वार, दाहिनें ओर द्वार तथा बायीं ओर द्वार के साथ-साथ अन्यान्य द्वार का भी निर्माण करते हैं, परन्तु शास्त्र 'द्वार निर्माण' के सन्दर्भ में हमें क्या आदेश करता हैं इसका यहाँ हम सभी अध्ययन करने जा रहे हैं।

सर्वप्रथम द्वार तथा उसके भेद के बारे में हमें निम्नलिखित सामान्य नियम जान लेना चाहिए –

- द्वार के ऊपर द्वार नहीं बनाना चाहिए।
- यदि द्वार के ऊपर द्वार हो तो ऊपर वाला द्वार छोटा होना चाहिए।
- यदि घर में एक ही द्वार देना हो तो पूर्व दिशा का द्वार श्रेष्ठ होता है।
- दो द्वार बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम द्वार बनवाना चाहिए।
- यदि तीन द्वार बनाना हो तो किसी भी तीन दिशा में बनाया जा सकता है, परन्तु मुख्य द्वार दक्षिण दिशा में नहीं बनाना चाहिए – जैसा कि आचार्यों का भी कथन है – मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्।
- भवन के चारों कोनों में द्वार नहीं बनाना चाहिए। इससे कोणवेध लगता है।
- घर के द्वार को हमेशा भीतर की ओर खोलना चाहिए।
- द्वार का स्वयं बन्द होना कुल का नाशक होता है – पिहिते स्वयं कुलविनाश:।
- भवन में सभी दरवाजों की ऊँचाई एक जैसी होनी चाहिए। अधिक ऊँचाई वाला द्वार राजा एवं दस्यु से भय उत्पन्न करता है। गृहपति की ऊँचाई से कम ऊँचा द्वार विपत्ति उत्पन्न करता है। १५०,१४०,१३०,११६,१०९, एवं ८० अंगुल का ऊँचा द्वार उत्तम होता है। २४ अंगुल = १ हाथ = डेढ़ फीट।

अब द्वार तथा उसके भेदाभेद के सन्दर्भ में आइए विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्ति करते हैं।
द्वार वर्णन करते हुए आचार्य कथन है कि –

द्वारमायात: कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणद्वारं यद्दु:खशोकभयप्रदम्।।

अर्थात् भूखण्ड के आयाम (चौड़ाई) में किया हुआ द्वार स्थापन पुत्र, पौत्र और धन को देने वाला होता है। विस्तार एवं कोण में स्थापित द्वार दु:ख, शोक और भय को प्रदान करता है।
अत: भूखण्ड (जहाँ गृह निर्माण करना हो) का अष्टधा विभाजन कर यहाँ सभी दिशाओं में प्रदक्षिणा क्रम से एक-एक प्रकोष्ठों का आपकी जानकारी के लिए फलादेश किया जा रहा है –
चारों दिशाओं में श्रेष्ठ द्वार स्थान केवल सात ही माने गये हैं। ये हैं – जयन्त, इन्द्र, वृहत्क्षत्र,

वरुण, मुख्य, भल्लाट और सोम।

वास्तु का आठ खण्ड विभाजन हो अथवा नौ खण्ड विभाजन हो इन दोनों प्रक्रियाओं में द्वार की स्थापना जयन्त आदि सात भागों में ही होती है। अष्ट खण्ड विभाजन के आधार पर द्वार स्थापना का निम्नवत् स्वरूप बनता है –
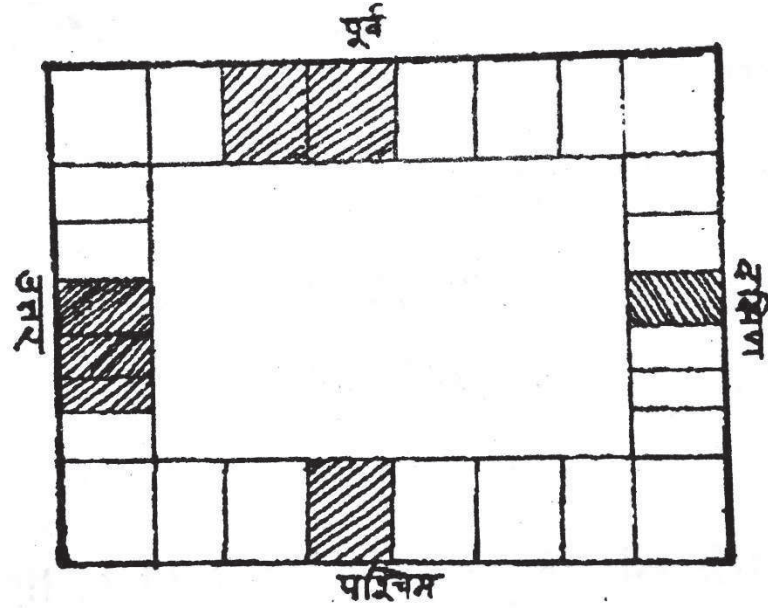
उपर के क्षेत्र में दिए गए रेखांकित भाग में ही द्वार बनाना चाहिए।

साधारण या निम्न कोटि के द्वार अत्यन्त आवश्यक होने पर ही बनाना चाहिए। ये काम चलाने वाले हो सकते हैं। उदाहरण के लिए आप नीचे दिये गये क्षेत्र को देख सकते हैं -
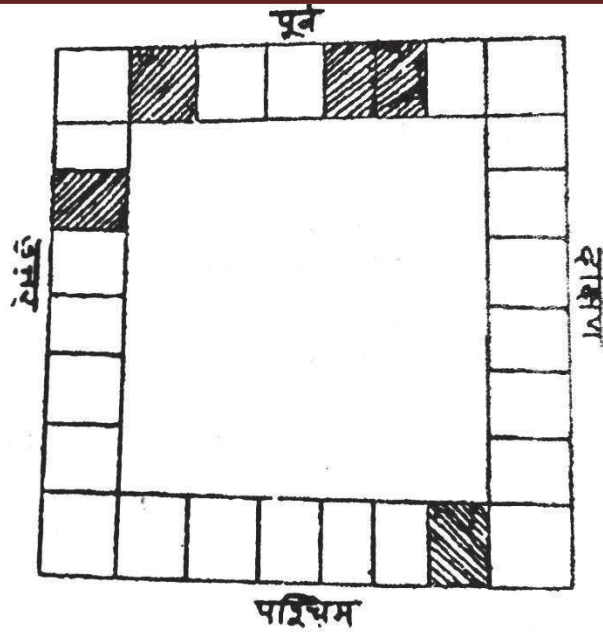
- पर्जन्य भाग में द्वार बनाने से घर में कन्याओं की वृद्धि होती है।
- सूर्य भाग में द्वार बनाने से गृह सदस्यों में क्रोध की वृद्धि होती है।
- सत्य के भाग में द्वार बनाने से झूठ बोलने में वृद्धि होती है।
- दौवारिक के भाग में द्वार बनाने से अत्यधिक व्यय की वृद्धि होती है।
- सर्प के भाग में द्वार बनाने से पुत्र से कलह की वृद्धि होती है।
- इसके अतिरिक्त शेष भागों में द्वार निर्माण वर्जित होता है।

२.३.१ आठ द्वारों का फल –

दु:खशोकौ धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम्।
स्त्रीजन्म पुत्रता हानि: प्राचीद्वारफलानि वै।।
निधनं बन्धनं भीति: पुत्रावाप्तिर्धनागम:।
यशोलाभश्चौरभयं व्याधिभीतिश्च दक्षिणे।।
शत्रुवृद्धि: पुत्रहानिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्धनागम:।
सौभाग्यं धनलाभश्च दु:खं शोकश्च पश्चिमे।।

नि:स्वं स्त्रीदूषणं हानि: संपत्प्राप्ति: सुखागम:।
दु:खागम: शत्रुबाधा चोत्तरस्यां दिशि क्रमात्।।

अर्थात् पूर्व दिशा के आठ खण्डों में स्थापित होने वाले द्वार निम्नवत् परिणाम देते हैं – दु:ख, शोक, धनलाभ, नृपपूज्यता, विशालधन, स्त्रीवृद्धि, पुत्रप्राप्ति, हानि। दक्षिण दिशा के आठ खण्डों में स्थापित होने वाले द्वार निम्नवत् परिणाम देते हैं – मृत्यु, बन्धन, भय, पुत्रप्राप्ति, धनागम, यशलाभ, चोरभय और रोगभय। पश्चिम दिशा के आठ खण्डों में स्थापित होने वाले द्वार निम्नवद् परिणाम देते हैं – शत्रुवृद्धि, पुत्रहानि, लक्ष्मीप्राप्ति, धनागम, सौभाग्य, धनलाभ, दु:ख तथा शोक। उत्तर दिशा के आठ खण्डों में स्थापित होने वाले द्वार निम्नवद् परिणाम देते हैं – दरिद्रता, स्त्रियों में दोष, हानि, सम्पत्ति, लाभ, सुखागम, दु:खागम तथा शत्रुबाधा।

विस्तारद्विगुणोत्सेधं द्वारं तद्विषमायतम्।
पश्चिमे दक्षिणे चापि कपाटं च शुभप्रदम्।।

द्वार निर्माण में विस्तार से दो गुना अधिक ऊँचाई होनी चाहिए। गृह का द्वार विषम और आयत होना चाहिए। पश्चिम और दक्षिण दिशा में भी किवाड़ (द्वार) लगाना शुभकारी होता है।
प्रायश: लोगों में धारणा होती है कि दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर मुख्यद्वार का निर्माण नहीं करना चाहिए परन्तु निर्धारित कोष्ठक में द्वार निर्माण सभी दिशाओं में होता है।

२.३.२ वर्ण के आधार पर द्वार के भेद –

व्यासगृहाणि च विद्याद्विपादनामुदग्दिशाद्यानि।
विशतां यथा भवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणत:।।

अर्थात् ब्राह्मणादि वर्णों के लिए उत्तरादि दिशाओं में द्वारवाला गृह शुभदायक होता है। इसका अर्थ है कि ब्राह्मण को गृह का द्वार उत्तर मुख का, क्षत्रिय को पूर्व दिशा का, वैश्य को दक्षिण दिशा का और शूद्र को पश्चिम दिशा का द्वार बनाना चाहिये।

विशेष – मकान के दाहिनें तरफ ५ हिस्सा और बायीं ओर ३ हिस्सा छोड़कर बीच वाले हिस्से में द्वार बनाना शुभकारी होता है। गृह में प्रवेश करते समय जो भाग दाहिने ओर पड़े वही दाहिना होता हैं और गृह से मनुष्य के निकलते समय जो बायाँ भाग पड़ें वहीं गृह का भी बायाँ भाग होगा।
द्वार निर्माण के समय उक्त बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

वास्तुराजवल्लभ ग्रन्थ में दस प्रकार के द्वार –

दैर्घ्ये सार्धशतांगुलं च दशभिर्हीनं चतुर्धा विधि:।

प्रोक्तश्चाऽथ शतं त्वशीतिसहितं युक्तं नवत्या शतम्।।
तद्वत्षोडशभिः शतं च नवभिर्युक्तं तथाऽशीतिकम्।
द्वारं मत्स्यमताऽनुसारि दशकं योग्यं विधेयं बुधैः।।

प्रथम १५० अंगुल का और दूसरे इत्यादि क्रम से १०,१० अंगुल कम अर्थात् दूसरा १४० अंगुल का, तीसरा, १३० अंगुल का, चौथा १२० अंगुल का। पाँचवाँ १८० अंगुल छठा १९० अंगुल सातवाँ ११६ अंगुल, आठवाँ १०९ अंगुल, नवाँ ८० अंगुल और दसवाँ ११० अंगुल का द्वार होता है। यह मत मूलत: मत्स्य पुराण का हैं।

द्वार के अभाव में गवाक्ष (झरोखा या खिड़की) कार्य

द्वारं चतुर्विधं प्रोक्तं वास्तुसंक्रान्तिमायजम्।
कृत्वा चान्यतमं मुख्यं गवाक्षाद्यैः पराणि च।।

श्लोक का अर्थ है कि वास्तु-सम्बन्धी, मास-सम्बन्धी, नक्षत्र-सम्बन्धी और आय सम्बन्धी ये ४ प्रकार के द्वार होते हैं। इनमें किसी को मुख्य मान के उसी ओर सदर दरवाजा बनाना चाहिये और शेष दिशा में गवाक्ष (झरोखा-खिड़की) बनाना चाहिये।

द्वार संख्या –

एकं द्वारं प्रांगमुखं शोभनं स्याच्चातुर्वक्त्रं धातृभूतेशजैने।
युग्मं प्राच्यां पश्चिमेऽथ त्रिकेषु मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्।।

यदि मकान में एक ही दरवाजा बनाना हो तो पूर्व दिशा में बनाना उत्तम होता है। ब्रह्मा, भूतेश और जैन इनके मन्दिर में चारों ओर द्वार बनाना श्रेष्ठ होता है। यदि मकान में दो ओर दरवाजा बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम दिशा में कदापि दरवाजा नहीं बनाना चाहिये।

विशेष –

बहुद्वारेष्वलिन्देषु न द्वारनियमः स्मृतः।
तथोपसदने जीर्णे द्वारे सन्धारणेऽपि च।।

जिसमें बहुत से द्वार और आलिन्द हों उस मकान में द्वार का कोई नियम नहीं अर्थात् जिस ओर चाहे दरवाजा बनवायें। मुख्य गृह के अतिरिक्त अन्य गृहों में भी द्वार का कोई नियम नहीं है। वहाँ यथारूचि द्वार बनवाना चाहिये।

२.३.३ द्वार निर्माण सम्बन्धित दोष –

नवं पुराणसंयुक्तमन्यं स्वामिनमिच्छति।

अधोग्रं राजदण्डाय विद्धं द्वारंविगर्हितम्।।
नवं पुराणसंयुक्तं द्रव्यं तु कलिकारकम्।
न मिश्रजातिद्रव्योत्थं द्वारं वा वेश्म वा शुभम्।।

इसका अर्थ है कि नवीन द्वार पुराने द्वार से संयुक्त होने पर दूसरे स्वामी की इच्छा करता है। नीचे से ऊपर विद्ध द्वार राज दण्ड देने वाला होता है और वह निन्दित कहा गया है। नया द्रव्य पुराने से संयुक्त होने पर कलि-कारक अर्थात् झगड़ा करने वाला होता है और मिश्रजाति के द्रव्य से निर्मित द्वार अथवा वेश्म अशुभ कहा गया है।

दोषयुक्त द्वार –

स्वयमुद्धाटितं द्वारमुच्चाटनकरं भवेत्।
धनहृद् बन्धुवैरं स्यादथवा कलिकारकम्।।
स्वयं यत् पिहितं द्वारं तद् भवेद् बहुदु:खदम्।
सशब्दं भयकृत् पादशीतलं गर्भपातनम्।।

अर्थात् अपने आप उद्धाटित द्वार उच्चाटनकारी होता है। वह धन-क्षय, बन्धु-वैर अथवा कलह करने वाला होता है। जो द्वार अपने आप बन्द हो जाता है वह बड़ा दु:खदायी होता है। आवाज के साथ बन्द होने वाला द्वार भी भयकारक, पाद-शीतल और गर्भ पातक होता है।

अशुभ द्वार कथन –

क्षुद्भयप्रदमाध्मा नं तं कुब्जं कुलविनाशनम्।
अत्यर्थं पीडिंतं पीडां करोत्यन्तनतं क्षयम्।।
प्रवासो बाह्यविनते दिग्भ्रान्ते दस्युतो भयम्।
मूलद्वारं क्षयं कुर्याद् विद्धं द्वारान्तरेण यत्।।

द्वार के आध्मात होने पर क्षुधा का भय उपस्थित होता है। टेढ़ा होने पर कुल विनाश होता है, अतिपीड़ित द्वार पीड़ा करने वाला और अन्त नत द्वार क्षयकारी कहा गया है। बाहर से झुका हुआ द्वार प्रवास कारक होता है एवं दिग्भ्रान्त द्वार से दस्युओं से भय कहा गया है। मूलद्वार यदि दूसरे द्वार से विद्ध हो जाता है तो क्षय करता है।

त्याज्य द्वार –

कृशं विकृतमत्युच्चं करालं शिथिलं पृथु।
वक्रं विशालमुत्तानं शूलाग्रं ह्रस्वकुक्षिकम्।।
स्वपादचलितं ह्रस्वं हीनकर्णं मुखानतम्।

पार्श्वगं सूत्रमार्गाच्च भ्रष्टं द्वारं न शोभनम्।।
तत् करोति क्षयं घोरं विनाशं स्वामिसम्पद:।।

अर्थात् कृश, विकृत, अत्युच्च, कराल, शिथिल, पृथु, वक्र, विशाल, उत्तान, स्थूलाग्र, स्वकुक्षिक, स्वपाद-चलित, ह्रसव, हीन-कर्ण, मुखानत, पार्श्वग, सूत्र मार्ग,भ्रष्ट ऐसे द्वार शुभ नहीं कहे गये हैं। ऐसे द्वार घोर नाश करने वाले एवं स्वामी की संपदाओं का विनाश करने वाले कहे गये हैं और उसमें रहने वालों के लिए सदैव कलह उपस्थित रहता है। अत: ऐसे द्वार का सदैव त्याग करना चाहिए।

२.३.४ द्वार वेध –

प्रवासो भृत्यजो द्वेषो विद्धे चत्वररथ्यया।
नाशं द्रव्यं ध्वजाविद्धं वृक्षेण शिशुदूषकम्।।
पंकविद्धे भवेच्छोक: सलिलस्राविणि व्यय:।
कूपेन विद्धेऽपस्मारो विनाशो दैवतेन च।।
स्तम्भेन दूषणं स्त्रीणां ब्रह्मणा तु कुलक्षय:।
मानादभ्यधिके द्वारे राजतो जायते भयम्।।
व्यसनं मानतो हीने चौरेभ्यश्च भयं भवेत्।।

अर्थात् चौराहे की गली से विद्ध द्वार प्रवास और नौकरों से द्वेष समुपस्थित करता है। ध्वजा से विद्ध द्वार द्रव्य का नाश करता है तथा वृक्ष से विद्ध होने पर शिशुओं को दोषदायक होता है। कीचड़ से विद्ध होने पर शोक, जल से व्यय, कूप से अपस्मार मिरगी और दैवत से विद्ध होने पर विनाश, खंभों से विद्ध होने पर स्त्रियों का दूषण, ब्रह्म से विद्ध होने पर कुल का नाश – ये दोष कहे गये हैं। प्रमाण से अधिक द्वार निर्माण राजा का भय उपस्थित करता है। मान से कम द्वार व्यसन और चोरों से भय उपस्थित करता है।

व्याधय: श्वभ्रविद्धेन धनस्य च परिक्षय:।
देवध्वजेन बन्ध: स्यात् सभयैश्वर्यसंक्षय:।।
सन्निपातभयं वाप्या तुल्या दृष्टत्वमाकृते।
ह्द्रुक कुलालचक्रेण दारिद्रयं वारिणा भवेत्।।
व्याधिरुक् किंचकूटेन आपाकेन सुतक्षय:।
निश्चतोदूखलेन स्याच्छिलया चाश्मरी भवेत्।।
तोयभाण्डेन दुर्मन्त्री भस्मना चार्शसो गृही।।
दारिद्रयं छायया विद्धे भवेद् द्वारे कुटुम्बिन:।।

स्थलस्यन्दनवल्मीकैर्विदेशगमनं भवेत्।।

अर्थात् श्वभ्र से विद्ध होने पर द्वार व्याधियाँ लाता है और धन का क्षय करता है। देव-ध्वज से बन्धन और भय के साथ ऐश्वर्य का नाश बताया गया है। वापी-वेध से सन्निपात भय बताया गया है। कुलाल चक्र से हृदय रोग, जल से दारिद्रय, कचकूट से रोग और व्याधियाँ तथा आपाक से पुत्रनाश, उदखूल से निर्धनता और शिला से अस्मरी रोग, जल के घड़े से दुर्मन्त्री और भस्म से बवासीर आदि दोष बताये गये हैं। इसी प्रकार छाया से विद्ध द्वार में गृहस्वामी के लिए दारिद्रय उपस्थित होता है और स्थल-स्यन्दन तथा बांबी आदि से विदेश गमन प्राप्त होता है।

एकाशीतिवास्तुपदचक्र –

एकाशीतिपदं कुर्यात्त्प्राकाराधिष्ठितां क्षितिम्।
मध्येन च पदं ब्रह्मस्थानं तन्निधनप्रदम्।।

दुर्ग या भवन का निर्माण पृथ्वी पर ८१ पद वास्तुचक्र के अनुसार करना चाहिये। वास्तु के मध्य स्थान को ब्रह्मस्थान कहा जाता है। ब्रह्म स्थान पर निर्माण करने से मृत्यु की प्राप्ति होती है।

पूर्व

उत्तर | दक्षिण

शिखी	पर्जन्यः	जयः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	आकाश	अनिल
दिति	आपः	जयः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	सविता	पूषा
अदितिः	अदितिः	आप-वत्स	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	वितथः	वितथः
शैलः (सर्प)	शैलः	पृथ्वी धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वांन्	वृहक्षत	वृहक्षत
कुबेरः (सोम)	कुबेरः	पृथ्वी धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यमः	यमः
मल्लाटः	मल्लाटः	पृथ्वी धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	गन्धर्वः	गन्धर्वः
मुख्यः	मुख्यः	राज यक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	मित्रः	इन्द्रः	भृङ्गः	भृङ्गः
नागः	रुद्रः	शोषः	असुरः	वरुणः	पुष्पदन्तः	सुग्रीवः	जयः	मृगः
रोगः	पापः	शोषः	असुरः	वरुणः	पुष्पदन्तः	सुग्रीवः	दौवारिक	पितर

पश्चिम

द्वात्रिंशदंशा पैशाच्या: प्राकाराय समीपगा:।
एतेषु गृहनिर्माणं शोकरोगभयप्रदम्।।

भवन के समीप ३२ अंशात्मक प्रकोष्ठ पैशाचिक हैं। इनमें गृहारम्भ करने से शोक, रोग एवं भय होता है। वास्तु के भीतर दोनों कर्ण रेखायें जहाँ प्रकोष्ठों से मिलती हैं, वे स्थान मर्म हैं तथा मध्यवर्तिनी रेखायें शिरा होती हैं। ये ३२ भाग हैं – शिखिी, पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, अनिल, पूषा, वितथ, वृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृंग मृग, पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरूण, असुर, शोष, पाप, रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति, दिति।

विशेष –

भित्तिमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।
आवहेत्कलहं शोकं नारीर्वा संप्रदूषयेत्।।

अर्थात् भित्ति के बीच में द्वार बनाने से धन,धान्य इत्यादि का नाश होता है। अथवा सर्वदा कलह होता रहता है या स्त्रियों में दोष पैदा हो जाता है।

द्वार स्थान –

मध्यद्वारं तु देवानां द्विजानामवनीभृताम्।
शेषाणामपि सर्वेषामुपमध्यं विधीयते।।

अर्थात् देव, ब्राह्मणों एवं राजाओं का द्वार मध्य में तथा शेष मनुष्यों के आवास का द्वार मध्य भाग के पार्श्व में होना चाहिये।

बोध प्रश्न –

1. यदि गृह में एक ही द्वार बनाना हो तो किस दिशा में द्वार बनाना श्रेष्ठ होता है।
   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. दक्षिण घ. उत्तर
2. मुख्य द्वार किस दिशा में नहीं बनाना चाहिये।
   क. पश्चिम ख. दक्षिण ग. पूर्व घ. उत्तर
3. ध्वजा से विद्ध द्वार का क्या फल है।
   क. राज सुख ख. द्रव्य नाश ग. मान हानि घ. समृद्धि प्राप्ति
4. वास्तुराजवल्लभ ग्रन्थानुसार द्वार के कितने भेद बतलाये गये हैं।
   क. ५ ख. १० ग. १५ घ. २०

5. सर्प के भाग में द्वार निर्माण का क्या फल होता है।
   क. लक्ष्मी प्राप्ति ख. द्रव्यनाश ग. पुत्र से कलह घ. राजसुख
6. भीत्ति के मध्य में द्वार बनाने से क्या होता है।
   क. अचल सुख ख. द्रव्य प्राप्ति ग. सन्तान सुख घ. धन नाश

२.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया जब आप गृह का निर्माण करते हैं तो भूमि और स्थान के अनुसार तथा स्व-स्व सुविधानुसार गृह में द्वार का निर्माण करते हैं। कुछ लोग मुख्य द्वार (प्रवेश द्वार) के अतिरिक्त भी गृह के पीछे का द्वार, दाहिनें ओर द्वार तथा बायीं ओर द्वार के साथ-साथ अन्यान्य द्वार का भी निर्माण करते हैं, परन्तु शास्त्र 'द्वार निर्माण' के सन्दर्भ में हमें क्या आदेश करता हैं इसका यहाँ हम सभी अध्ययन करने जा रहे हैं।

सर्वप्रथम द्वार तथा उसके भेद के बारे में हमें सामान्य नियम जान लेना चाहिये कि – द्वार के ऊपर द्वार नहीं बनाना चाहिए। यदि द्वार के ऊपर द्वार हो तो ऊपर वाला द्वार छोटा होना चाहिए। यदि घर में एक ही द्वार देना हो तो पूर्व दिशा का द्वार श्रेष्ठ होता है। दो द्वार बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम द्वार बनवाना चाहिए। यदि तीन द्वार बनाना हो तो किसी भी तीन दिशा में बनाया जा सकता है, परन्तु मुख्य द्वार दक्षिण दिशा में नहीं बनाना चाहिए – जैसा कि आचार्यों का भी कथन है – मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्। भवन के चारों कोनों में द्वार नहीं बनाना चाहिए। इससे कोणवेध लगता है। घर के द्वार को हमेशा भीतर की ओर खोलना चाहिए। द्वार का स्वयं बन्द होना कुल का नाशक होता है – पिहिते स्वयं कुलविनाश:। भवन में सभी दरवाजों की ऊँचाई एक जैसी होनी चाहिए। अधिक ऊँचाई वाला द्वार राजा एवं दस्यु से भय उत्पन्न करता है। गृहपति की ऊँचाई से कम ऊँचा द्वार विपत्ति उत्पन्न करता है। १५०,१४०,१३०,११६,१०९, एवं ८० अंगुल का ऊँचा द्वार उत्तम होता है। २४ अंगुल = १ हाथ = डेढ़ फीट। द्वार वर्णन करते हुए आचार्य कथन है कि –

द्वारमायात: कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणद्वारं यद्दु:खशोकभयप्रदम्।।

अर्थात् भूखण्ड के आयाम (चौड़ाई) में किया हुआ द्वार स्थापन पुत्र, पौत्र और धन को देने वाला होता है। विस्तार एवं कोण में स्थापित द्वार दु:ख, शोक और भय को प्रदान करता है।

२.५ पारिभाषिक शब्दावली

भूखण्ड – भूमि का भाग या टुकड़ा।

आयाम – चौड़ाई।

गृहपति – गृह का स्वामी।

दिग् – दिशा।

गृह द्वार – घर का द्वार।

मुख्य द्वार – प्रवेश द्वार।

विस्तार – लम्बाई।

द्वात्रिंशत् – ३२।

२.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. क

२. ख

३. ख

४. ख

५. ग

६. घ

२.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वृहद्वास्तुमाला – हरिशंकर पाठक

वास्तुसार: - प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

वास्तुरत्नाकर – विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

वास्तुविद्या – आचार्य कामेश्वर उपाध्याय

२.८ सहायक पाठ्यसामग्री

मयमतम् – टीकाकार – डॉ. शैलजा पाण्डेय

वास्तुराजवल्लभ -

वास्तुप्रबोधिनी – टीकाकार – विनोद शास्त्री

२.९ निबन्धात्मक प्रश्न

१. द्वार भेद का उल्लेख कीजिये।

२. वास्तुराजवल्लभ में वर्णित दस द्वारों का वर्णन कीजिये।

३. द्वात्रिंशत् वास्तु पद चक्र का प्रतिपादन कीजिये।

४. द्वार फल का विस्तृत वर्णन कीजिये।

५. द्वार वेध का विस्तृत वर्णन करें।

६. द्वार सम्बन्धित दोषों का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई – ३ मुख्य द्वार का स्वरूप

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना

३.२ उद्देश्य

३.३ मुख्य द्वार का स्वरूप

३.३.१ मुख्य द्वारों के अन्य भेद

३.३.२ मुख्य द्वार सज्जा

३.४ सारांश

३.५ पारिभाषिक शब्दावली

३.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

३.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

३.८ सहायक पाठ्यसामग्री

३.९ निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वास्तुशास्त्र में डिप्लोमा पाठ्यकम के चतुर्थ पत्र DVS-104 से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – मुख्य द्वार का स्वरूप। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने द्वार निर्धारण एवं द्वार भेद का अध्ययन कर लिया है। अब आप मुख्य द्वार का स्वरूप कैसा होना चाहिए, इसका अध्ययन करने जा रहे हैं।

मुख्य द्वार से तात्पर्य घर के मुख्य प्रवेश भाग से है। मुख्य द्वार कैसा होना चाहिए? उसका दैर्घ्य-विस्तार कितना होना चाहिए? उसका शास्त्रीय स्वरूप क्या है? गृह निर्माण में मुख्य द्वार का क्या प्रयोजन व महत्व है? आदि इत्यादि समस्त विषयों का प्रतिपादन आपके ज्ञानार्थ इस इकाई में किया जा रहा है।

आइए हम सब वास्तुशास्त्रोक्त मुख्य द्वार का स्वरूप के विषय में जानने का प्रयास करते हैं।

३.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- गृह में मुख्य द्वार का स्वरूप कैसा होता है।
- मुख्य द्वार का वास्तु शास्त्रीय अभिमत क्या है।
- मुख्य द्वार का प्रयोजन क्या है।
- मुख्य द्वार स्वरूप निर्धारण के महत्वपूर्ण घटक क्या है।

३.३ मुख्य द्वार का स्वरूप

शास्त्र वचन है कि - रूप बदलता है स्वरूप नहीं। अत: वास्तुशास्त्र के अनुसार भी गृह निर्माण की परम्परा में मुख्य द्वार का रूप तो आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु मुख्य द्वार का शास्त्रोचित स्वरूप अपरिवर्तनशील है। मुख्य द्वार हेतु सर्वश्रेष्ठ **'सात स्थान'** बतलायें गयें हैं – जयन्त, इन्द्र, वृहत्क्षत, वरूण, मुख्य, भल्लाट तथा सोम भाग। इन्हीं स्थानों पर ही गृह का मुख्य द्वार सर्वोत्तम बतलाया गया है। आचार्यों द्वारा मुख्य द्वार को हमेशा सजाकर रखने का विधान कहा गया है।

वास्तुराजवल्लभकार ने तो मुख्य द्वार को दक्षिण दिशा में कभी भी निर्मित नहीं करने का अपना मत प्रकट किया है। यथा - मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्।

मुख्य द्वार हमेशा दो पल्लों कपाटों वाला होना चाहिये। मुख्य द्वार को मार्गवेध, वृक्षवेध, कोणवेध, कूपवेध, स्तम्भवेध, नालीवेध, मंदिरवेध से मुक्त होना चाहिए। ये सभी वेध खतरनाक होते हैं। जिस वास्तुखण्ड में अनेक मार्ग प्रवेश करते हों अथवा जो वास्तुखण्ड मार्गवेध दोष से ग्रस्त हो उस पर भवन नहीं बनाना चाहिए। गृहनिर्माण में मुख्य द्वार का महत्व इतना बड़ा होता है कि जब तक गृह का मुख्य द्वार नहीं बनता तब तक गृहप्रवेश का कार्य भी संभव नहीं हो पाता।

मुख्य द्वार किसी भी भवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग या हिस्सा होता है, यह सर्वविदित है। इसकी स्थापना एवं स्थिति का निर्णय गृहस्वामी के लिए भी अत्यन्त आवश्यक होता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार द्वार की स्थिति के विविध भेद है।

मुख्य द्वार की स्थिति अर्थात् भूखण्ड के मुख की स्थिति गृहस्वामी की राशि के अनुसार होना चाहिये।

प्राचीन ग्रन्थों में अलग-अलग राशि के जातकों के अनुसार मुख्य द्वार की दिशा के बारे में निर्देशित किया गया है। प्राचीन ग्रन्थ ज्योतिर्निबन्ध, वास्तुराजवल्लभ एवं वृहद्दैवज्ञरंजन के मतानुसार विभिन्न मेषादि राशियों के जातकों के लिए द्वार की दिशा के सन्दर्भ में निर्देश निम्न प्रकार से है –

- ज्योतिर्निबन्धोक्त – इसके अनुसार कर्क, वृश्चिक और मीन राशि वालों के लिए पूर्व दिशा में तथा तुला, कुम्भ व वृष राशि वालों के लिए पश्चिम दिशा में एवं मेष, सिंह व धनु राशि वालों के लिए उत्तर दिशा में द्वार अर्थात् गृह का मुख बनाना उत्तम होता है।
- वास्तुराजवल्लभोक्त – वृश्चिक, मीन और सिंह राशि वालों के लिए पूर्व दिशा, कन्या कर्क व मकर राशि वालों के लिए दक्षिण दिशा में धनु, तुला, मिथुन राशि वालों के लिए पश्चिम दिशा में और कुम्भ, वृष तथा मेष राशि वालों के लिए उत्तर दिशा में मकान का द्वार बनाना श्रेष्ठ होता है।
- वृहद्दैवज्ञरंजन – पूर्वे ब्रह्माणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम्।
  शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे स्मृतम्।।

ब्राह्मण राशि अर्थात् कर्क, वृश्चिक व मीन राशि वालों के पूर्व दिशा में, वैश्य राशि अर्थात् वृष, कन्या व मकर वालों को दक्षिण दिशा में, शूद्र राशि अर्थात् मिथुन, तुला व कुम्भ राशि वालों को पश्चिम दिशा में एवं क्षत्रिय राशि अर्थात् मेष, सिंह व धनु राशि वालों के लिए उत्तर दिशा में घर का द्वार बनाना उत्तम होता है।

दिशा / ग्रन्थ	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
ज्योतिर्निबन्ध	कर्क वृश्चिक मीन	कन्या मकर मिथुन	तुला कुम्भ वृष	मेष सिंह धनु
वास्तुराजवल्लभ	वृश्चिक मीन सिंह	कन्या कर्क मकर	धनु तुला मिथुन	मेष वृष कुम्भ
वृहद्दैवज्ञरंजन	ब्राह्मण राशि	वैश्य राशि	शूद्र राशि	क्षत्रिय राशि

यद्यपि उपर्युक्त कई विकल्प शास्त्रों में उपलब्ध हैं परन्तु वृहद्दैवज्ञरंजन द्वार निर्देशित भेद सर्वमान्य माना जाता है, इसकी पुष्टि के लिए वास्तुप्रदीप में कहा गया है –

स्यात्प्राङ्मुखं ब्राह्मणराशिसद्म चोदङ्मुखं क्षत्रियराशिकानाम्।
वैश्यस्य ज्ञेयं यमदिंगमुखं हि शूद्राभिधानामर्थ पश्चिमास्यम्।।

एक स्थूल प्रमाण के रूप में कहा गया है कि मुख्य द्वार भवन के मध्य में नहीं होना चाहिये। यह भवन की मध्य रेखा की बांयी तरफ होना चाहिये। इसकी सही स्थिति ज्ञात करने के लिए भवन की चौड़ाई को ९ बराबर हिस्सों में बाँटा जाता है। फिर दॉयी तरफ से ५ भाग एवं बाँयी तरफ से ३ भाग छोड़कर अर्थात् बॉयी तरफ से चौथे भाग में द्वार स्थापना शुभ मानी जाती है।

3/9 द्वार 5/9
1 2 3 4 5 6 7 8 9
(दाँया और बाँया भाग उसको मानना चाहिए, जो घर से बाहर निकल
समय हो।)
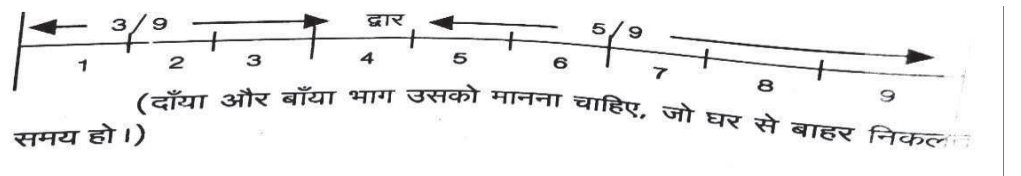
नवगृह विधि भूखण्ड के सामने वाले भाग अर्थात् चौड़ाई को ९ समान भागों में विभक्त करके बॉयी ओर से प्रथम भाग में क्रमश: सूर्य, चन्द्र इत्यादि ग्रहों की स्थिति मानी गयी है।

सड़क

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	राहु	केतु

भूखण्ड

जिस गृह के क्षेत्र में मुख्य द्वार बनाया जायेगा। उस क्षेत्र का ग्रह, भवन में रहने वालों पर, अपने स्वभाव के अनुसार शुभ, अशुभ प्रभाव डालता है। मुख्य द्वार के लिए बुध, गुरु, शुक्र, क्षेत्र उत्तम व सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनि, राहु एवं केतु क्षेत्र त्याज्य माने जाते हैं।

८१ वर्गों वाले परमशायिकम् पद विन्यास पर कुल ४५ देवता स्थित होते हैं इनमें से बाहरी सीमा पर ३२ वर्गों में ३२ देवता स्थित है। इन देवताओं के वर्गों पर मुख्य द्वार की स्थिति के भिन्न-भिन्न फल कहे गये हैं जो निम्न प्रकार है –

<u>पदम्शायिकम् पद विन्यास</u>

उत्तर

पश्चिम / पूर्व

रोग	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	भुजंग	अदिति	दिति	शिखि
पापयक्ष्मा								पर्जन्य
शोष								जयंत
असुर								इन्द्र
वरूण								सूर्य
पुष्पदंत								सत्य
सुग्रीव								भृश
द्वारपाल								व्योम
पितर	मृग	भृगंराज	गन्धर्व	यम	वृहत्क्षत	वितथ	पूषा	अनिल

दक्षिण

पूर्व दिशा :-

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रोर्य चौर्यं च पूर्वेण।।

1. शिखि – इस वर्ग पर मुख्य द्वार बनाने से दु:ख एवं अग्नि से
2. +९६ भय होता है।
3. पर्जन्य – इस वर्ग पर द्वार बनाने से कन्या रत्न में वृद्धि एवं निर्धनता होती है।
4. जयन्त – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धनागम होता है।
5. इन्द्र – इस वर्ग पर द्वार बनाने से राज सम्मान में वृद्धि एवं यश प्राप्ति होती है।
6. सूर्य – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धन प्राप्ति परन्तु क्रोध की अधिकता रहती है।
7. सत्य – इस वर्ग पर द्वार बनाने से चोरी, कन्याओं की वृद्धि एवं असत्य भाषण की अधिकता होती है।
8. भ्रश – इस वर्ग पर द्वार बनाने से पुत्रहानि व क्रूरता उत्पन्न होती है।
9. व्योम – इस वर्ग पर द्वार बनाने से चोरी का भय होता है।

दक्षिण दिशा : -

अल्पसुतत्वं प्रेष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धि:।
रौद्रं कृतघ्नमघनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन।।

1. अनिल :- इस वर्ग पर द्वार बनाने से पुत्र सन्तान में कमी तथा मृत्यु होती है।
2. पूषा – इस वर्ग पर द्वार बनाने से दासत्व व बन्धन की प्राप्ति होती है।
3. वितथ – इस वर्ग पर द्वार बनाने से नीचता एवं भय की वृद्धि होती है।
4. सोम – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धन एवं पुत्र लाभ होता है।
5. यम – इस वर्ग पर द्वार बनाने से अशांति होती है।
6. गन्धर्व – इस वर्ग पर द्वार बनाने से यश वृद्धि, निर्भयता परन्तु कृतघ्नता बढ़ती है।
7. भृंगराज – इस वर्ग पर द्वार बनाने से निर्धनता, चोर भय होता है।
8. मृग – इस वर्ग पर द्वार बनाने से पुत्र नाश एवं रोग भय होता है।

पश्चिम दिशा –

सुतपीड़ारिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्ति: सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पन्ननृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे।।

1. पितर – इस वर्ग पर द्वार बनाने से पुत्रक्षय, निर्धनता एवं शत्रुओं से भय रहता है।

2. द्वारपाल – इस वर्ग पर द्वार बनाने से भार्या दु:ख तथा भय होता है।
3. सुग्रीव – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धन वृद्धि होती है।
4. पुष्पदन्त – इस वर्ग पर द्वार बनाने से पुत्र तथा धन की वृद्धि होती है।
5. वरूण – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धन तथा सौभाग्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।
6. असुर – इस वर्ग पर द्वार बनाने से राजभय तथा मानसिक संताप होता है।
7. शोष – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धन का नाश एवं दु:खों की प्राप्ति होती है।
8. पापयक्ष्मा – इस वर्ग पर द्वार बनाने से रोग भय एवं मन का उच्चाटन होता है।

उत्तर दिशा –

वधवन्धो रिपुवृद्धि: सुतधनलाभ: समस्तगुणसम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैर सुतेन दोषा: स्त्रिया नै:स्वम्।।

1. रोग – इस वर्ग पर द्वार बनाने से मृत्यु, बन्धन, स्त्रीहानि एवं निर्धनता होती है।
2. नाग – इस वर्ग पर द्वार बनाने से शत्रुवृद्धि, निर्बलता एवं भय होता है।
3. मुख्य – इस स्थान पर द्वार बनाने से पुत्र- धनादि लाभ होता है।
4. भल्लाट – इस स्थान पर द्वार बनाने से धन- धान्य तथा सम्पत्ति की वृद्धि होती है।
5. सोम – इस स्थान पर द्वार बनाने से पुत्र, धनागम एवं सर्वसमृद्धि होती है।
6. मृग – इस वर्ग पर द्वार बनाने से शत्रुभय तथा राजभय होता है।
7. अदिति – इस वर्ग पर द्वार बनाने से कुल की स्त्रियों में दोष, शत्रुभय एवं मानसिक अशांति होती है।
8. दिति – इस वर्ग पर द्वार बनाने से धनागम एवं सर्व समृद्धि में रूकावट होती है।

३.३.१ मुख्य द्वारों के अन्य भेद –

1. सव्य द्वार – प्रथम द्वार से प्रवेश के बाद भीतरी द्वार यदि दॉयी तरफ पड़े तो उसे सव्य द्वार कहते है। ऐसे द्वार से सुख धन-धान्य एवं पुत्र-पौत्रादि व सर्वसमृद्धि होती है।
2. अपसव्य द्वार – यदि प्रथम द्वार से प्रवेश के उपरोक्त भीतरी द्वार यदि बॉयी तरफ स्थित हो तो द्वार को अपसव्य कहते है। अपसव्य द्वार से धन की कमी बन्धु-बान्धवों की कमी, स्त्री की दासता तथा रोग वृद्धि होती है। वास्तुशास्त्र के अनुसार वामावर्त द्वारा सदा विनाशकारक और सव्य सदा कल्याणकारक होता है।

3. मुख्य द्वार की चौखट – मुख्य द्वार की चौखट स्थाापना के लिए तिथि के अनुसार फल निम्न प्रकार से है –
   पंचमी तिथि में द्वार स्थापना करने से धन लाभ, इसके अतिरिक्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियॉ भी शुभ होती है। प्रतिपदा तिथि को द्वार स्थापना करने से दु:ख की प्राप्ति होती है। अत: यह वर्जित है। तृतीया में रोग, चतुर्थी में भय, षष्ठी में कुलनाश, दशमी में धननाश और पूर्णिमा-अमावस्या में वैरकारक होती है।

   भवेत्पूषणी मैत्रपुष्ये च शाक्रे करे दस्रचित्राऽनिले चादितौ च।
   गुरूश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे तिथौ नन्दपूर्णाजया द्वारशारंखा।।

4. रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती और पुनर्वसु नक्षत्र, रवि, सोम, बुध, गुरू, शुक्रवार तथा नन्दा, जया व पूर्णा तिथियॉ द्वार स्थापना में शुभ होती है।
5. मेष, सिंह, धनु राशि वालों के लिए उत्तर, वृष, कन्या, मकर राशि वालों के लिए दक्षिण, मिथुन, तुला, कुम्भ राशि वाले जातकों के लिए पश्चिम व कर्क व मीन राशि वालों के लिए पूर्व दिशा में द्वार बनाना शुभ होता है।
6. दिशाओं के आधार पर स्थापित **मुख्य द्वार का फल** इस प्रकार है –
   पूर्व – इस दिशा में स्थित द्वार 'विजय द्वार' कहलाता है। यह सर्वत्र विजय करने वाला सुखदायक एवं शुभफल देने वाला होता है।
   दक्षिण – इस दिशा में स्थित द्वार 'यमद्वार' कहलाता है। जो संघर्ष कराने वाला तथा स्त्रियों के लिए दु:खदायी होता है।
   पश्चिम – इस दिशा में स्थित द्वार 'मकर द्वार' कहलाता है। जो आलस्यप्रद तथा विशेष प्रयत्न करने पर सिद्ध देने वाला है।
   उत्तर – इस दिशा में स्थित द्वार कुबेर द्वार कहलाता है। जो सर्वसमृद्धि एवं सुख देने वाला होता है।
7. द्वार की ऊँचाई, चौड़ाई से दुगनी से अधिक होना चाहिये।
8. मार्ग, वृक्ष, कूप, स्तम्भ से वेधयुक्त द्वार अशुभ होता है किन्तु द्वार की ऊँचाई से दुगुनी दूरी पर ये सब हो तो उक्त दोष नहीं होते हैं।

9. दरवाजा यदि अपने-आप खुलता हो तो 'उन्माद' रोग होता है। स्वयं बन्द हो तो कुल नाश, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चोर भय व शारीरिक कष्ट होता है। द्वार के उपर द्वार शुभ नहीं होता है। द्वार का झुकाव गृह के अन्दर के तरफ हो तो गृहस्वामी का मरण होता है। यदि बाहर की तरफ झुकाव हो तो परदेश में निवास करता है।
10. वायव्य दिशा में द्वार वाले गृह में, गृहस्वामी बहुत कम ही रह पाते है एवं दक्षिण दिशा वाले मकान अधिक बेचे जाते है।
11. द्वार सरलता से खुलना चाहिए। द्वार खुलने पर कर्कश ध्वनि गृहस्वामी के लिए शुभ नहीं होती है। द्वार के कपाट आपस में टकराने नहीं चाहिए, टकराने वाले द्वार पारिवारिक झगड़े का कारण बन सकते है।
12. मुख्य द्वार को छोड़कर भवन में द्वारों की संख्या सम होनी चाहिए। विषम संख्या अशुभ होती है। साथ ही इनकी कुल संख्या १०,२०,३० नहीं होना चाहिए।
13. द्वारस्योपरि यद् द्वारं द्वारं द्वारस्य सम्मुखं। न कार्यं व्ययदं यच्च संकटं तद्दरिद्रकृत्।। अर्थात् द्वार के उपर द्वार और द्वार के सामने द्वार का द्वार व्यय कराने वाला और दरिद्रता का देने वाला होता है।

३.३.२ मुख्य द्वार सज्जा : -

मुख्य प्रवेश द्वार पर निम्न प्रतीक स्थापित करना शुभ होता है।

- कुल देवता की मूर्ति
- द्वार के दोनों तरफ पहरेदार
- शंख व पद्मनिधि
- गाय-बछड़ा
- लक्ष्मी जी
- कमल के आसन पर शुभ आठ प्रतीकों की माला – अष्टमंगल
- गणेश जी की मूर्ति
- काले घोड़े की नाल
- भगवद् प्रतिमा

बोध प्रश्न –

1. मुख्य द्वार निर्माण हेतु निम्न में कौन सा स्थान बतलाया गया है।
   क.जयन्त ख. सोम ग. भल्लाट घ. उपर्युक्त सभी
2. पूर्व दिशा में स्थित द्वार को क्या कहते है।
   क.विजय ख. यम ग. मकर घ. कोई नहीं
3. वास्तुराजवल्ल्भ ग्रन्थ के अनुसार वृश्चिक, मीन और सिंह राशि वालों के लिए किस दिशा में गृह का मुख्य द्वार बनाना चाहिये।
   क.दक्षिण ख. पश्चिम ग. पूर्व घ. उत्तर
4. वास्तुराजवल्लभ ग्रन्थानुसार द्वार के कितने भेद बतलाये गये हैं।
   क.५ ख. १० ग. १५ घ. २०
5. मुख्य द्वार को छोड़कर भवन में द्वारों की संख्या क्या होनी चाहिए। ।
   क. विषम ख. सम ग. बराबर घ. कोई नहीं
6. पंचमी तिथि में द्वार स्थापना करने का क्या फल है।
   क.धन लाभ ख. सुख ग. सन्तान सुख घ. धन नाश

३.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि शास्त्र वचन है कि - रूप बदलता है स्वरूप नहीं। अत: वास्तुशास्त्र के अनुसार भी गृह निर्माण की परम्परा में मुख्य द्वार का रूप तो आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु मुख्य द्वार का शास्त्रोचित स्वरूप अपरिवर्तनशील है। मुख्य द्वार हेतु सर्वश्रेष्ठ **'सात स्थान'** बतलायें गयें हैं – जयन्त, इन्द्र, वृहत्क्षत, वरूण, मुख्य, भल्लाट तथा सोम भाग। इन्हीं स्थानों पर ही गृह का मुख्य द्वार सर्वोत्तम बतलाया गया है। आचार्यों द्वारा मुख्य द्वार को हमेशा सजाकर रखने का विधान कहा गया है। वास्तुराजवल्लभकार ने तो मुख्य द्वार को दक्षिण दिशा में कभी भी निर्मित नहीं करने का अपना मत प्रकट किया है। यथा - मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्।

मुख्य द्वार हमेशा दो पल्लों कपाटों वाला होना चाहिये। मुख्य द्वार को मार्गवेध, वृक्षवेध, कोणवेध, कूपवेध, स्तम्भवेध, नालीवेध, मंदिरवेध से मुक्त होना चाहिए। ये सभी वेध खतरनाक होते हैं। जिस

वास्तुखण्ड में अनेक मार्ग प्रवेश करते हों अथवा जो वास्तुखण्ड मार्गवेध दोष से ग्रस्त हो उस पर भवन नहीं बनाना चाहिए। गृहनिर्माण में मुख्य द्वार का महत्व इतना बड़ा होता है कि जब तक गृह का मुख्य द्वार नहीं बनता तब तक गृहप्रवेश का कार्य भी संभव नहीं हो पाता।

मुख्य द्वार किसी भी भवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग या हिस्सा होता है, यह सर्वविदित है। इसकी स्थापना एवं स्थिति का निर्णय गृहस्वामी के लिए भी अत्यन्त आवश्यक होता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार द्वार की स्थिति के विविध भेद है।

मुख्य द्वार की स्थिति अर्थात् भूखण्ड के मुख की स्थिति गृहस्वामी की राशि के अनुसार होना चाहिये।

३.५ पारिभाषिक शब्दावली

सर्वविदित – सभी के द्वारा जाना गया।

भूखण्ड – भूमि का भाग या टुकड़ा।

हिस्सा – भाग।

गृहपति – गृह का स्वामी।

रूप – परिवर्तनशील

गृह द्वार – घर का द्वार।

मुख्य द्वार – प्रवेश द्वार।

स्वरूप – अपरिवर्तनशील।

एकाशीति – ८१।

३.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. घ

२. क

३. ग

४. ख

५. क

६. क

३.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वृहद्वास्तुमाला – हरिशंकर पाठक

वास्तुसार: - प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

वास्तुरत्नाकर – विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

वास्तुप्रबोधिनी – आचार्य विनोद शास्त्री

३.८ सहायक पाठ्यसामग्री

मयमतम् – टीकाकार – डॉ. शैलजा पाण्डेय

वास्तुराजवल्लभ -

वास्तुप्रबोधिनी – टीकाकार – विनोद शास्त्री

३.९ निबन्धात्मक प्रश्न

१. मुख्य द्वार से क्या तात्पर्य है। स्पष्ट कीजिये।

२. मुख्य द्वार के स्वरूप का वर्णन कीजिये।

३. मुख्य द्वार का शुभाशुभ फल लिखिये।

४. मुख्य द्वार के भेदाभेद का निरूपण कीजिये।

५. मुख्य द्वार सज्जा का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई – ४ द्वारस्थापन मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना

DVS-104 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई में आप सभी अध्येताओं का स्वागत है। इस इकाई का शीर्षक है – द्वार स्थापन मुहूर्त्त। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने द्वार निर्धारण, द्वार भेद तथा मुख्य द्वारादि सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप वास्तुपद द्वार स्थापन मुहूर्त्त का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत द्वार स्थापन का अत्यन्त महत्व बतलाया गया है। गृहनिर्माण की प्रक्रिया में द्वार स्थापन एक महत्वपूर्ण घटक है। मुख्य द्वार गृह का प्रवेश होता है तथा इसका प्रभाव गृहपति एवं गृह में निवास करने वाले प्रत्येक सदस्यों पर भी पड़ता है। अत: वास्तुशास्त्र में कथित नियम एवं शुभ मुहूर्त के अनुसार ही गृह में द्वार स्थापन का कार्य करना कराना चाहिए।

आइए हम सब द्वार निर्णय, द्वार के भेद एवं मुख्य द्वार के पश्चात् अब द्वार स्थापन विधान का अध्ययन करते हैं।

४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- द्वार स्थापन किसे कहते है।
- द्वार स्थापन कैसे करना चाहिए।
- द्वार स्थापन का शुभाशुभ मुहूर्त्त कौन सा है।
- गृह निर्माण में द्वार स्थापन का क्या महत्व है।
- वास्तु शास्त्र के अनतर्गत ‘द्वार स्थापन’ का प्रयोजन क्या है।

४.३ द्वार स्थापन मुहूर्त्त

गृह निर्माण के अन्तर्गत द्वारों के विविध विषयों का ज्ञान करते हुए अब हम सभी द्वार स्थापन के लिए शास्त्रोक्त शुभाशुभ मुहूर्त्त का अध्ययन करने जा रहे हैं।
आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्त्तचिन्तामणि ग्रन्थ में **‘द्वारस्थापन मुहूर्त्त’** का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि – **अश्विनी चोत्तरा हस्तपुष्यश्रुतिमृगेषु च। रोहिण्यां स्वातिभेऽन्त्ये च द्वारप्रशाखां प्ररोपयेत्।।**
अर्थात् अश्विनी, तीनो उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती इन ११ नक्षत्रों

में द्वार स्थापना करना चाहिए।

मुहूर्त्तमुक्तावली का कथन है –

भवेत्पूषणी मैत्रपुष्ये च शाक्रे करे दस्रचित्राऽनिले चादितौ च।
गुरुश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे तिथौनन्दपूर्णाजया द्वारप्रशाखा।।

इसका अर्थ है कि रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु इन ९ नक्षत्रों में, वृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, बुध इन वारों में और नन्दा १,६,११, पूर्णा ५,१०,१५ और जया ३,८,१३ इन तिथियों में द्वार प्रशाखा का स्थापना करना उत्तम होता है।

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरलग्ने शुभे तिथौ।
द्वारं स्थाप्यं मृगं चित्रं वर्गं संपद्धिवर्द्धनः।।

ध्रुव संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी), स्थिर राशि लग्न शुभ तिथि में द्वारस्थापन शुभ होता है। तथा मृगशिरा, चित्रा में कुल व सम्पत्ति की वृद्धि करने वाला होता है।

चरस्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ।
शुभे कपाटयोगः स्याद्द्विस्वभावोदये गृहम्।।

चर-स्थिर संज्ञक नक्षत्र बुध, शुक्र, शुभ तिथि एवं द्विस्वभाव लग्न में द्वार (चौखट) लगाना शुभ होता है।

ज्योतिप्रकाश का कथन –

अस्तदोषोत्र न ग्राह्यः प्रति दैवसिको बुधैः।
नास्तदोषः सदा भानोर्न मैत्रेन्द्रस्य नीचता।।

विद्वानजनों को द्वार स्थापन में प्रतिदिनीय अस्तदोष नहीं ग्रहण करना चाहिए। सूर्य का अस्त दोष एवं मित्र व नीचत्व दोष भी नहीं होता है।

द्वारस्थापना में शुभनक्षत्र –

द्वारस्थापननक्षत्राण्युच्यन्तेश्विनि चोत्तराः।
स्वातौ पूष्णि च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणम्।।

अश्विनी, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी ये नक्षत्र द्वारस्थापन के लिये शुभ होते है।

द्वारस्थापना के लिए तिथिविचारः -

पंचमी धनदा चैव मुनिनन्दवसौ शुभम्।
प्रतिपत्सु न कर्त्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात्।।
द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपत्रुविनाशनम्।

तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भंगकारिणी।।

कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी।

विरोधकृदमा पूर्णा नस्याच्छाखावरोपणम्।।

पंचमी तिथि में द्वार स्थापन करने से धन लाभ, इसके अतिरिक्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियॉ भी शुभ है। प्रतिपदा तिथि को द्वार स्थापन करने से दु:ख प्राप्ति होती है, अत: यह वर्जित है। तृतीया में रोग चतुर्थ में भंग, षष्ठी में कुलनाश, दशमी में धन नाश और पूर्णिमा, अमावस्या वैरकारक होती है।

प्रशस्त द्वार स्थापना –

पूर्वादौ त्रिषडायपंचमलवे द्वा: सव्यतोंकोद्धृते।

वैध्येद्वयंशमुच्छ्रिताब्धिलवका सर्वासु दिक्षुदिता।।

गृह की लम्बाई को ९ से भाग देकर पूर्वादि दिशा की भीत में दरवाजा वाम भाग से ३।६।५।५ वे भाग में बनवाना चाहिये। अर्थात् पूर्व दिशा में तीसरे में, दक्षिण में छठे में पश्चिम और उत्तर दिशा के पाँचवें हिस्से में दरवाजा बनाना चाहिये। या सभी दिशाओं में चौथे भाग में दो भाग तुल्य उँचा निर्माण कराना चाहिए।

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्र सव्याद्द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे।

चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतु: पंचमके तथोदक्।।

घर की लम्बाई के ९ भाग करके बायीं ओर से पूर्व दिशा में पहले के दो हिस्से छोड़कर तीसरे चौथे भाग में, दक्षिण में चौथे, छठे भाग में और पश्चिम उत्तर में चौथे पॉचवे भाग में दरवाजा बनाना चाहिये।

द्वारमायामत: कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।

विस्तारकोणं द्वारं य: दु:खशोकभयप्रदम्।।

आयाम दैर्घ्य से दरवाजा बनाने पर पुत्र, पौत्र व धन की प्राप्ति और चौड़ाई के कोण में दरवाजा निर्माण कराने पर दु:ख, शोक, भय की प्राप्ति होती है।

विश्वकर्मा प्रकाश में –

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।

गृह में मध्य भाग में दरवाजा रखने पर धन, अन्न का नाश होता है।

देवागारे विहारे च प्रजायां मंडपेषु च।

प्रतोल्यां च मखे चैव मध्ये द्वारं निवेशयेत्।।

देवमन्दिर, बिहार, सूति, मण्डप, प्रतोलि और यज्ञ में बीच में ही दरवाजे का निर्माण कराना चाहिये।

भारद्वाज –

शिरा मर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वश:।
विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत्।।

गृह वास्तु में शिरो, मर्म, वंश व नाल के बीच को छोड़कर द्वार बनाना चाहिये।

द्वार चक्रम् –

दिनककरकिरणाक्रांतर्क्षतो द्वारचक्रे युगयुगयमवेदद्विद्विवेदद्विरामै:।
मितमुडुगणभगं विन्यसेदूर्ध्वतांतर्नियममखिलदिंगनाप्यध: कोणभंसत्।।

सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे दरवाजे के उपरी भाग से ४।४।२।४।२।२।४।२।३ नक्षत्रों का न्यास समस्त दिशाओं में दरवाजा बनाने पर करना चाहिये। इसमें कोणस्थ व देहली के नक्षत्र में दरवाजा बनाना अशुभ होता है।

रामदैवज्ञ का मत –

सूर्यर्क्षायुगभै: शिरस्यथफलं लक्ष्मी: तत: कोणभै
र्नागैरूद्वसनं ततो गजमितै: शाखासु सौख्यं भवेत्।
देहल्यां गुणभैर्मृतेर्गृहपतेर्मध्यस्थितेर्वेदभै:।
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्।।

घर के दरवाजे को जिस दिन रखना हो उस दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे दिन नक्षत्र तक आगे बताई हुई रीति से उसे देखकर शुभ होने पर रखना चाहिए। जैसे पहले के चार ४ शिर न्यास करने पर, इनमें दिन नक्षत्र हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके बाद के दो-दो नक्षत्र कोणों में स्थापित करने पर इनमें दिन नक्षत्र हो तो उसमें मकान स्वामी का उद्वास होता है अर्थात् चारों चौखट में होने पर सुख, इसके पश्चात् ३ नक्षत्र देहली में होने से मालिक का मरण, पुन: ४ नक्षत्र मध्य में स्थापित करने पर दिन नक्षत्र होने पर दरवाजा रखने पर स्वामी को सुख मिलता है।
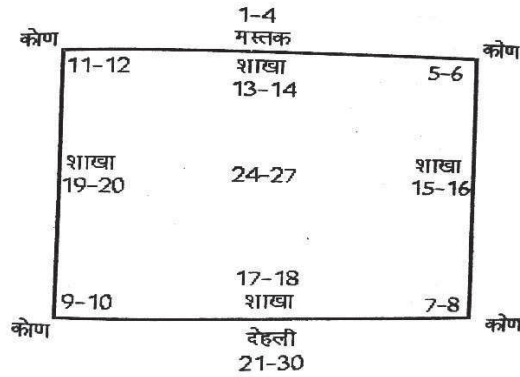
द्वारचक्रफल -

स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य
२७ नक्षत्र	४	८	८	३	४
फल	लक्ष्मी प्राप्ति	उद्वास	सौख्य	मरण	सुख

४.३.१ द्वार (देहली) चक्र –

मूले भौमे त्रिऋक्षं गृहपतिमरणं पंचगर्भ सुखं स्या
न्मध्ये देयाष्टऋक्षं धनसुखसुखदं पुच्छदेशेष्टहानि:।
पश्चाद्देयाष्टऋक्षं गृहपतिसुखदं भाग्यपुत्रार्थदियं
सूर्यार्क्षाच्चिन्द्रऋक्षं प्रतिदिन गणयेद्धौमचक्रं विलोक्य।।

देहली के मूल में भौम के नक्षत्र से ३ नक्षत्र स्थापित करने पर इन्हीं में दिन नक्षत्र हो तो मकान मालिक की मृत्यु, इसके बाद ५ नक्षत्र गर्भ के नक्षत्र में होने पर सुख, तत्पश्चात् ४ चार नक्षत्र मध्य नक्षत्र में हो तो धन-पुत्र सुख की लब्धि, इसके बाद के ८ नक्षत्र पुच्छ के नक्षत्र में हानि और इसके पीछे के ८ नक्षत्र पीठ के दिन नक्षत्र हो तो भाग्य वृद्धि, पुत्र, धन की प्राप्ति होती है।

स्पष्टार्थ चक्र –

स्थान	मूल	गर्भ	मध्य	पुच्छ	पृष्ठ
२८ नक्षत्र	३	५	४	८	८
फल	स्वामी मरण	सुत सुख	धन सुत सुख	हानि	सुख

मुहूर्त्तकल्पद्रुम –

सूर्यर्क्षाद्युगनागाष्टगुणदवेदै: शुभाशुभम्।
शिर: कोणद्वारशाखा देहलीमध्यगै: क्रमात्।।

४।८।८।३।४ नक्षत्र तक कपाटचक्र में सूर्य के नक्षत्र से मस्तक, कोण, दरवाजों की चौखट, देहली और मध्य में क्रम से स्थापित करके शुभाशुभ समझकर आदेश देना चाहिए।

स्पष्ट चक्र -

सूर्य नक्षत्र से स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य
२७ नक्षत्र	४	८	८	३	४
फल	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

गृह में द्वारस्थापन का कार्य आचार्यों के द्वारा प्रत्येक वर्णों के लिये पृथक् – पृथक् कहा गया है। यथा -

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिण शुभम्।
शूद्राणां पश्चिमे द्वार नृपाणामुत्तरे मतम्।।

ब्राह्मण राशि के लिये पूर्वद्वार, क्षत्रियराशि के लिये उत्तर द्वार वैश्य राशि के लिये दक्षिण द्वार और शूद्रराशि के लिये पश्चिम द्वार शुभ है।

महेश्वर मत में द्वार विचार –

सर्वद्वार इहध्वजो वरूणदिग्द्वारं च हित्वा हरि:।
प्राग्द्वारो वृषभोगजोयमसुरेशाशामुख: स्याच्छुभ:।।

पूर्ववर्णित ध्वज आय को सभी दिशाओं में द्वार शुभ होता है, सिंह आय को पश्चिम के अतिरिक्त अन्य द्वार भी शुभ होते है। वृष आय को पूर्वद्वार और गज आय को दक्षिण और पूर्व द्वार शुभ होते है

आयवर्णदृष्ट्या द्वार विचार –

ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजाना
मुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे।
विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु
शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति।।

ध्वज आय और ब्राह्मण वर्ण को पश्चिम मुख द्वार सिंह आय, क्षत्रिय वर्ण का उत्तर द्वार, वृष आय, वैश्य वर्ण को पूर्व मुख द्वार और गजआय, शूद्र जाति को दक्षिण मुख द्वार शुभ होता है।

मार्तण्डोक्त द्वारविचार –

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवेद्वा: सव्यतोङ्कौद्भूते।
दैर्घ्ये व्द्यंशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासुदिक्षूतिदता।।

वराहमिहिरोक्त द्वारवेध फलम् –

मार्ग तरू कोण कूप स्तम्भ भ्रम विद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय।।

मार्ग, वृक्ष , कोण, कूप,स्तम्भ, चक्र से वेधयुक्त द्वार अशुभ होता है। किन्तु द्वार की उँचाई से दूरी पर ये सब हों तो उक्त दोष नहीं होते।

विशेष फल विचार –

रथ्या विद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरूणा।
पङ्द्वारे शोकोव्ययोऽम्बु नि:स्राविणिप्रोक्त:।।
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषा: कुलनाशो ब्राह्मणाभिमुखे।।

मार्ग से वेध युक्त गृह द्वार गृहपति का नाश करता है। वृक्ष से वेध युक्त गृह द्वार बालकों के लिये अहित कारक होता है, पंक विद्ध द्वार शोक करता है। जल निकलने वाले मार्ग से विद्ध द्वार धन व्यय कराता है, कुँए से विद्ध द्वार अपस्मार रोग देता है, देव मूर्ति से विद्धद्वार विनाश कारक होता है। स्तम्भ विद्ध द्वार स्त्री को दुश्चरित्र बनाता है, ब्राह्मण से विद्ध द्वार कुल नाश कराता है।

४.३.२ द्वार विषय में विशेष विचार –

उन्मादः स्वयमुद्धाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च।।
द्वार द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय शंकटं यच्च।
आव्यात्तं क्षुद्धयं कुब्जं कुलनाशनं भवति।।
पीडाकरमतिपीडितमन्तविनतं भवेदभावाय।
वाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा।।

दरवाजा यदि अपने आप खुलता हो तो उन्माद रोग होता है। स्वयं बन्द हो तो कुल नाश, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चोर भय और शारीरिक कष्ट होता है। द्वार के उपर द्वार शुभ नहीं होता है। मोटाई में कमद्वार भी अच्छा नहीं होता, जो अधिक मोटा दरवाजा होता है वह भूख का भय कराता है। यदि टेढ़ा हो तो कुल का नाश करता है द्वार पर यदि गूलर का पेड़ हो तो गृहपति को कष्ट देता है। गृह के भीतर झुकाव हो तो गृहपति का मरण होता है यदि बाहर की ओर झुका हो तो परदेश में निवास करता है और यदि दूसरी दिशा में झुका हो तो चोर पीड़ादायक होता है

तत्र विशेष विचारः -

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्धया।
घटफलपत्रप्रमथादिभिष्च तन्मंगलैश्चिनुयात्।।

प्रधान द्वार की रचना जिस प्रकार की गई हो अन्य द्वारों की भी उसी प्रकार करे और उसको कलश, श्रीफल, लता, पत्र एवं सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत करना चाहिये।

वृहत्संहितोक्त द्वारों का शुभाशुभफल –

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण।।

गृह भित्ति दीवार के 9 विभाग करने से प्रत्येक भित्ति में आठ – आठ द्वार होते है इस प्रकार चारों भित्तियों के 32 द्वार होते है। पूर्व के 8 द्वारों का फल प्रथम शिखिद्वार से वायु भय, द्वितीय पर्जन्य द्वार से कन्या लाभ, तृतीय जयन्त द्वार से धनलाभ, चतुर्थ इन्द्र द्वार से राजप्रियता, पंचम सूर्य द्वार से क्रोध की अधिकता, षष्ठ सत्य द्वार से असत्यता, सप्तम भृशद्वार से क्रूरता और अष्टम अन्तरिक्ष द्वार से चौर भय होता है।

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं कृतघ्नमधतं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन।।

दक्षिण के 8 द्वारों का फल – प्रथम अनिल द्वार से पुत्रों की संख्या में कभी द्वितीय पौष्ण द्वार से दासवृत्ति, तृतीय विघद्वार से नीचता, चतुर्थ वृहत्क्षत द्वार से भक्ष्यपान, पुत्र वृद्धि, पंचम याम्य द्वार से अशुभ, षष्ठ गन्धर्वद्वार से कृतघ्न, सप्तम भृंगराज द्वार से धन हीनता और अष्टम मृगद्वार से बल नाश होता है।

सुतपीडारिपुवृद्धिर्नसुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥

पश्चिम के 8 द्वारों का फल – प्रथम पितृद्वार से पुत्र कष्ट, द्वितीय दौवारिक द्वार से शत्रुवृद्धि, तृतीय सुग्रीव द्वार से धन, पुत्र हानि, चतुर्थ कुसुभदन्त द्वार से पुत्र धन फल की प्राप्ति, पंचम वरूण द्वार से धन-सम्पत्ति, षष्ठ असुर द्वार से राजभय, सप्तम शोष द्वार से धन नाश, और अष्टम पापयक्ष्मा द्वार से रोग भय होता है।

वधवन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुण सम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम्।।

उत्तर के 8 द्वारों का फल –

प्रथम रोग द्वार से बध – बन्धन, द्वितीय सार्प द्वार से रिपुवृद्धि, तृतीय मुख्य द्वार से पुत्र धन लाभ, चतुर्थ भल्लाट द्वार से सद – गुण – सम्पत्ति, पंचम सौभ्य द्वार से पुत्र धन लाभ, षष्ठ भुजंग द्वार से पुत्र वैर, सप्तम आदित्य द्वार से स्त्रीजन्म दोष और अष्टम दिति द्वार से निर्धनता होती है।

रामदैवज्ञ के मत मे द्वार चक्रम् –

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै।
र्नागैरूद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः।
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्।।

सूर्य के नक्षत्र से द्वारचक्र का विचार करके द्वार निर्माण करने से लक्ष्मी प्राप्ति, 8 नक्षत्र कोण में दें इनसे उद्वास (परदेश जाने की इच्छा) 8 नक्षत्र शाखा में दे इनसे सुख फिर 3 नक्षत्र देहली में दें, इसमें गृहपति की मृत्यु, 4 नक्षत्र बीच में दें इनसे सुख प्राप्ति होता है। इस चक्र के द्वारा निर्माण शुभ होता है।

बोध प्रश्न

1. द्वारस्थापन के लिए प्रशस्त नक्षत्र है।

   क. तीनों उत्तरा ख. हस्त ग. अश्विनी घ. सभी

2. जया संज्ञक तिथि कौन है।

   क. १,११,६ ख. २,७,१२ ग. ३,८,१३ घ.९,४,१४

3. दरवाजा यदि अपने आप खुलता हो तो कौन सा रोग होता है?

क. उन्माद रोग ख. मानसिक रोग ग. नेत्र रोग घ. कोई नहीं

4. पश्चिम के आठ द्वारों के फल में प्रथम द्वार का फल है?

   क. पुत्र कष्ट ख. पत्नी कष्ट ग. पिता कष्ट घ. पति कष्ट

5. मुहूर्त्तचिन्तामणि के प्रणेता कौन है।

   क. नारायण ख. राम दैवज्ञ ग. केशव घ. पृथुयशस

6. मुहूर्त्तमुक्तावली के अनुसार कितने नक्षत्रों में द्वारस्थापन प्रशस्त होता है।

   क. ११ ख.९ ग. ७ घ. १२

४.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्त्तचिन्तामणि ग्रन्थ में **'द्वारस्थापन मुहूर्त्त'** का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि – **अश्विनी चोत्तरा हस्तपुष्यश्रुतिमृगेषु च। रोहिण्यां स्वातिभेऽन्त्ये च द्वारप्रशाखां प्ररोपयेत्।।** अर्थात् अश्विनी, तीनो उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती इन ११ नक्षत्रों में द्वार स्थापना करना चाहिए।

मुहूर्त्तमुक्तावली के अनुसार रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु इन ९ नक्षत्रों में, वृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, बुध इन वारों में और नन्दा १,६,११, पूर्णा ५,१०,१५ और जया ३,८,१३ इन तिथियों में द्वार प्रशाखा का स्थापना करना उत्तम होता है।

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरलग्ने शुभे तिथौ।
द्वारं स्थाप्यं मृगं चित्रं वर्गं संपद्धिवर्द्धनः।।

ध्रुव संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी), स्थिर राशि लग्न शुभ तिथि में द्वारस्थापन शुभ होता है। तथा मृगशिरा, चित्रा में कुल व सम्पत्ति की वृद्धि करने वाला होता है।

चर-स्थिर संज्ञक नक्षत्र बुध, शुक्र, शुभ तिथि एवं द्विस्वभाव लग्न में द्वार (चौखट) लगाना शुभ होता है।

विद्वानजनों को द्वार स्थापन में प्रतिदिनीय अस्तदोष नहीं ग्रहण करना चाहिए। सूर्य का अस्त दोष एवं मित्र व नीचत्व दोष भी नहीं होता है।

४.५ पारिभाषिक शब्दावली

श्रुति – श्रवण।

मृग – मृगशिरा।

ध्रुव संज्ञक – तीनों उत्तरा और रोहिणी।

चौखट – द्वार।

द्विस्वभाव – ३,६,९,१२

पौष्ण – रेवती।

द्वार स्थापन– द्वार की स्थापना।

मुहूर्त्त – शुभाशुभ समय।

४.६ बोध प्रश्नों के उत्तर

१. घ

२. क

३. ग

४. क

५. ख

६. ख

४.७ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वृहद्वास्तुमाला – हरिशंकर पाठक

वास्तुसार: - प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

वास्तुरत्नाकर – विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

४.८ सहायक पाठ्यसामग्री

मयमतम् – टीकाकार – डॉ. शैलजा पाण्डेय

वास्तुराजवल्लभ -

वास्तुप्रबोधिनी – टीकाकार – विनोद शास्त्री

४.९ निबन्धात्मक प्रश्न

१. द्वार स्थापना मुहूर्त्त लिखिये।

२. मुहूर्त्तमुक्तावली के अनुसार द्वार स्थापन का वर्णन कीजिये।

३. मुहूर्त्तचिन्तामणि में वर्णित द्वारस्थापन का उल्लेख कीजिये।

४. दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व दिशा का फल लिखिये।

५. विभिन्न मतानुसार द्वार विचार का प्रतिपादन कीजिये।

खण्ड – 3

गृहायु, दोष व वास्तुशान्ति विचार

इकाई – १ गृहायु विचार

इकाई की संरचना-

१.१ प्रस्तावना-

वास्तु शास्त्र मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है अतः मेरा विश्वास है कि आपकी वास्तु शास्त्र में अत्यंत रुचि है इसी कारण आप सभी लोग इस महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम को पढ़ रहे हैं। हम सभी जानते हैं कि मानव की मुख्य आवश्यकताओं में भोजन निवास एवं वस्त्र प्रमुख हैं, जिनमें निवास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि कोई भी मानव या प्राणी एक निश्चित निवास स्थान पर सुरक्षित एवं भयमुक्त वातावरण में निवास करना चाहता है जिससे कि वह अपने इस जीवन में पारिवारिक सदस्यों के साथ सुख पूर्वक एवं आनंदमय जीवन यापन का निर्वाह कर सकें वास्तु शास्त्र इन्हीं सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है कि मनुष्य को किस प्रकार अधिकाधिक सुरक्षित एवं सुखमय गृह निर्माण की संकल्पना प्राप्त हो सके जिससे कि वह अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकें। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से मनुष्य द्वारा बनाए जाने वाले अपने सपनों के घर की आयु का ज्ञान अर्थात घर की आयु कितनी होगी इसका ज्ञान हम प्रस्तुत इकाई में प्राप्त करेंगे, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि जो गृह निर्माण वह कर आ रहा है, वह सुरक्षित एवं दीर्घकालीन रहे। वास्तु शास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र में किस प्रकार के योग से गृह आयु का ज्ञान किया जाता है एवं किन योगों से घर की आयु अत्यंत कम होती है या शीघ्र ही नष्ट हो जाती है इन सब का अध्ययन हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

१.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु शास्त्र के महत्व को समझ सकेंगे।
- गृह की आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- गृह की आयु का साधन किस प्रकार किया जाता है इस विषय में भी आप जान जाएंगे।
- यह समझ जाएंगे कि गृह की आयु के वर्ष प्रमाण कितने प्रकार के हो सकते हैं।
- यह बता सकेंगे कि गृह शीघ्र नष्ट होगा या उसकी आयु दीर्घ रहेगी।

१.३ गृहायु विचार –

वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार मनुष्य द्वारा बनाए जाने वाले गृह की आयु का विचार वास्तु शास्त्र में किया गया है। मानव की एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि वह जो कोई भी कार्य

कर रहा है उसका फल उसे अच्छा प्राप्त हो एवं वह दीर्घकाल तक रहे। वर्तमान समय में मनुष्य के जीवन में गृह निर्माण की संकल्पना एक स्वप्न की भांति होती है। जब भी मनुष्य गृह का निर्माण करना चाहता है तो वह इस प्रकार के गृह का निर्माण करना चाहता है कि वह भवन प्राकृतिक उत्पातों से सुरक्षित रहे एवं उसके द्वारा बनाए जाने वाला भवन दीर्घकालीन अवधि तक सुरक्षिता रहे जिससे कि उस में निवास करने वाले मनुष्य भयमुक्त वातावरण में दीर्घ काल की अवधि तक भवन का सुख प्राप्त कर सके। इसी भावना के मूल में वास्तु शास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से हम बनाए जाने वाले भवन की आयु का ज्ञान भी कर सकते हैं, अर्थात भवन जिस काल विशेष में बनाया जा रहा है उसके अनुसार तात्कालिक ग्रह स्थिति के अनुसार तथा गृह पिण्ड (गृह क्षेत्रफल) के अनुसार भवन की आयु का विचार हमारे ग्रंथों में किया गया जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से कर सकते हैं –

१.३.१ - गृह की आयु अस्सी वर्ष प्रमाण के योग-

भवन की आयु के 80 वर्ष प्रमाण के योग हमारे शास्त्र ग्रंथों में प्राप्त होते हैं इसके अनुसार विश्वकर्म -प्रकाश में बताया गया है कि जिस समय गृह का निर्माण कार्य प्रारंभ किया जा रहा हो अर्थात गृह निर्माण के आरंभ काल की लग्न के समय चतुर्थ भाव में गुरु एवं दशम भाव में चंद्र तथा ग्यारवे भाव में मंगल एवं सूर्य हो तो उस भवन की आयु 80 वर्ष की होती है यथा-

शिवके ज्येऽम्बरे चन्द्रे लाभे च कुजभास्करौ |
प्रारम्भः क्रियते यस्य अशीत्यायुः क्रमाद् भवेत् ||[1]

इसी योग को हम गृह निर्माण काल की तात्कालिक लग्न कुण्डली के माध्यम से जान सकते है यथा –

[1] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 25
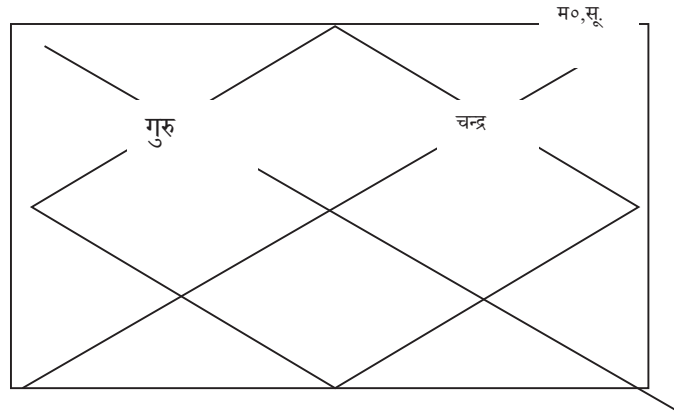
इसी प्रकार गृह की आयु के 80 वर्ष प्रमाण का एक अन्य योग भी प्राप्त होता है जिसके अनुसार जिस समय गृहारंभ किया जा रहा हो उस समय की लग्न दो पाप ग्रहों के बीच में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि ना हो, शनि अष्टम भाव में हो तो इस योग में निर्मित गृह की आयु 80 वर्ष की होती है | यथा-

पापान्तरगते लग्ने न च सौम्ययुते क्षिते |
अष्टमस्थे अर्कपुत्रे च अशीत्यब्दाद विहन्यते ||[2]
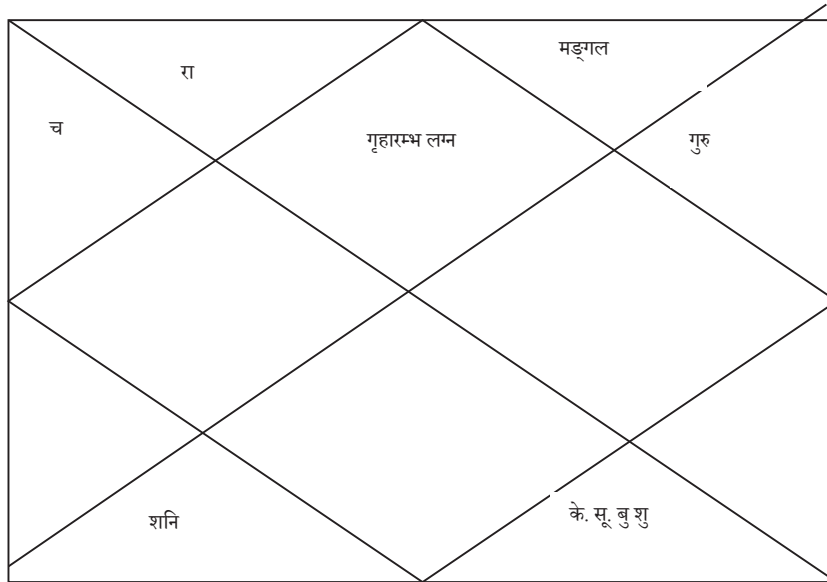
[2] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० ३६

१.३.२- गृह-आयु शत(100) वर्ष प्रमाण के योग -

गृह की आयु का प्रमाण 100 वर्षों का भी होता है इसके सिद्धांत हमारे आचार्यों ने प्रतिपादित किए हैं कि गृहारंभ कालीन लग्न में यदि गुरु बैठा हूं और सूर्य छठे भाव में विद्यमान हो तथा बुध सप्तम भाव में हो, शुक्र चौथे भाव में हो तथा शनि तीसरे घर में हो तो ऐसे योग में निर्मित ग्रह की आयु 100 वर्ष की होती है यथा विश्वकर्मा प्रकाश में बताया गया है-

गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे द्यूने सौम्ये सुखे सिते |

तृतीयस्थेऽर्कपुत्रे च तद्गृहं शतमायुषम् ||[3]

यथा उदाहरण कुण्डली के माध्यम से –
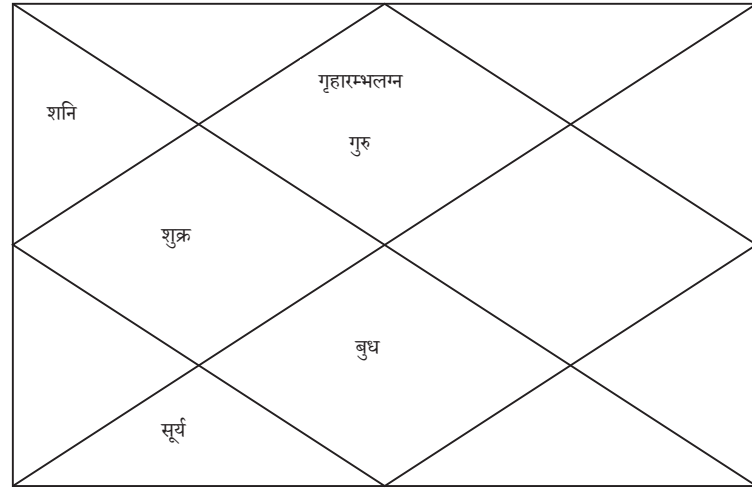
एक अन्य योग के अनुसार भी गृह की आयु 100 वर्ष की होती है जैसे गृहारंभ कालीन लग्न में शुक्र विद्यमान हो, बुध दशम भाव में हो, सूर्य एकादश भाव में तथा गुरु केंद्र में हो तो ऐसी अवस्था में गृह की आयु एक 100 वर्ष की होती है। यथा –

भृगुर्लग्नेऽम्बरे सौम्ये लाभस्थाने च भास्करे |

गुरुः केन्द्रगतो यत्र शतवर्षाणि तिष्ठति ||[4]

इसी योग को बृहद्वास्तुमाला मे इस श्लोक के माध्यम से बताया गया है यथा-

---

[3] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 23

[4] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 24

लग्नाम्बरायेषुभृगुज्ञभानुभिः केन्द्रे गुरौवर्षशतायुरालयम् ।[5]

यथा उदाहरण कुण्डली के माध्यम से -
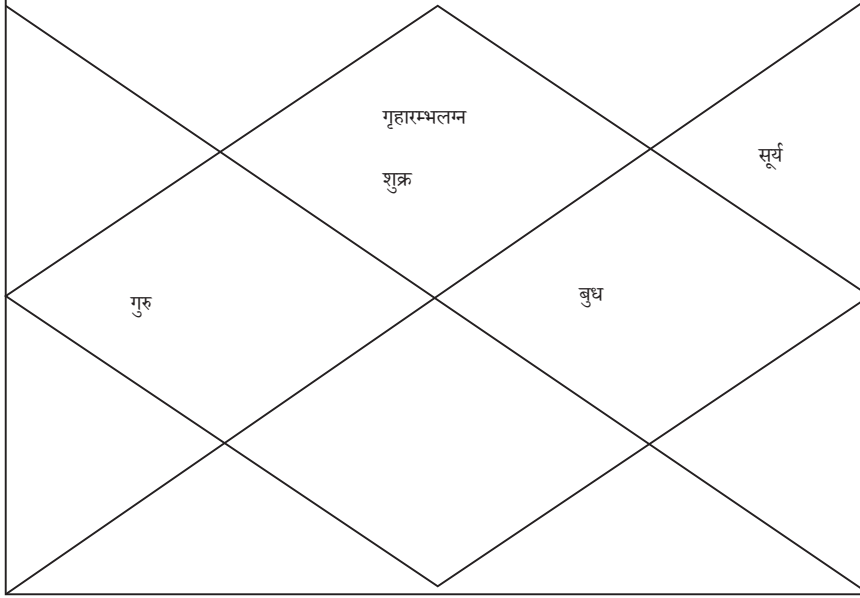
एवमेव गृहारंभ कालीन लग्न में शनि हो तथा सप्तम भाव में मंगल हो एवं उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि ना हो तो इस योग में भी गृह की आयु का प्रमाण भी 100 वर्षों का होता है। यथा-

मन्दे लग्नगते चैव कुजे सप्तम संस्थिते।
शुभैरवीक्षिते वापि शतवर्षाणि हन्यते ॥[6]

१.३.३ - गृह की आयु द्विशत(200) वर्ष के योग – गृह आयु के विचार के क्रम में 200 वर्ष भी ग्रह के आयु का प्रमाण शास्त्रों में बताया गया है यथा विश्वकर्मा प्रकाश के अनुसार गृहारंभ कालीन लग्न में शुक्र विद्यमान हो पांचवे भाव में गुरु हो छठे भाव में मंगल तथा तृतीय भाव में सूर्य बैठा हो तो इस योग में बनने वाला गृह 200 वर्षों तक बना रहता है

लग्ने भृगौ पुत्रगेज्ये षष्ठे भौमे तृतीयगे।
रवौ यस्य गृहारम्भः स च तिष्ठेच्छतद्वयम् ॥[7]

[5] वृहदवास्तुमाला श्लो ८५
[6] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० ३७
[7] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 26

यथा उदाहरण कुण्डली के माध्यम से -
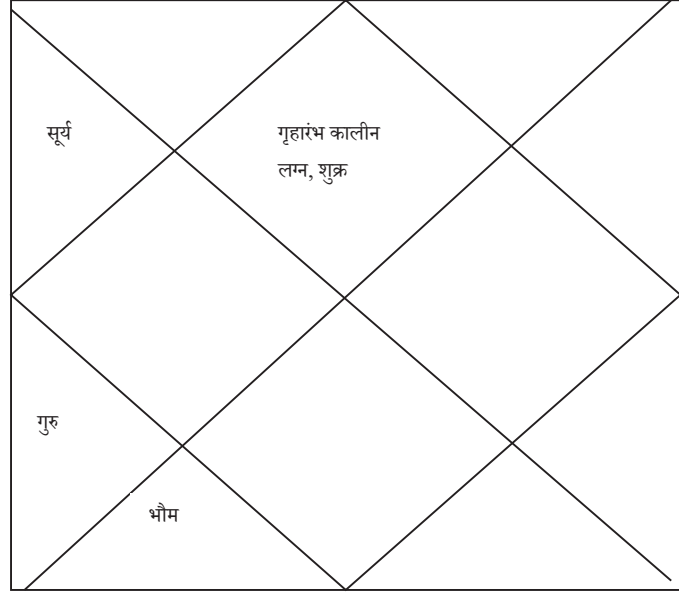
इसी प्रकार एक अन्य योग के माध्यम से भी भवन की आयु का प्रमाण 200 वर्ष का होता है या था गृहारंभ कालीन लग्न में गुरु तथा शुक्र दोनों विराजमान हो मंगल छठे भाव में बैठा हो तथा सूर्य ग्यारहवें भाव में बैठा हो तो भी गृह की आयु 200 वर्ष की होती है।

लग्नस्थौ गुरुशुक्रौ च रिपुराशिगते कुजे | सूर्ये लाभगते यस्य द्विशाब्दानि तिष्ठति ||[8]

कुण्डली के माध्यम से -

गृहारंभ कालीन
लग्न, गुरु, शुक्र
सूर्य
भौम
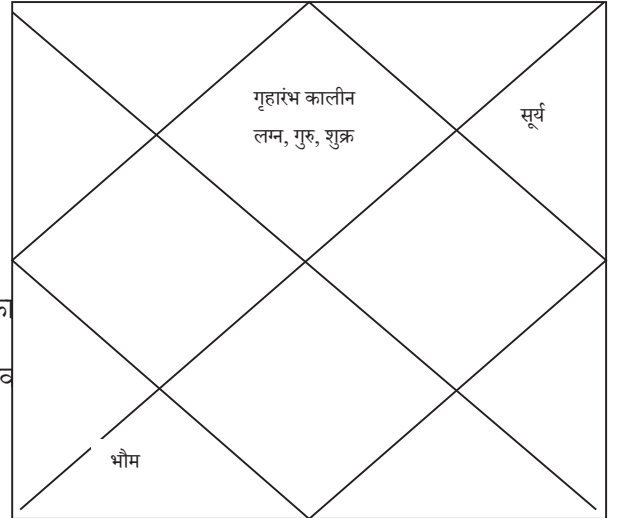
गृह की आयु का 200 वर्ष प्रमाण का

स्वराशि या उच्च राशि के होकर लग्न में अथव

है वह 200 वर्ष पर्यंत बना रहता है। जैसे

[8] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 27

स्वोच्चे स्वभवने सौम्यैर्लग्नस्थे वापि केन्द्रगैः |

प्रारम्भः क्रियते यस्य स तिष्ठति शतद्वयम् ||[9]
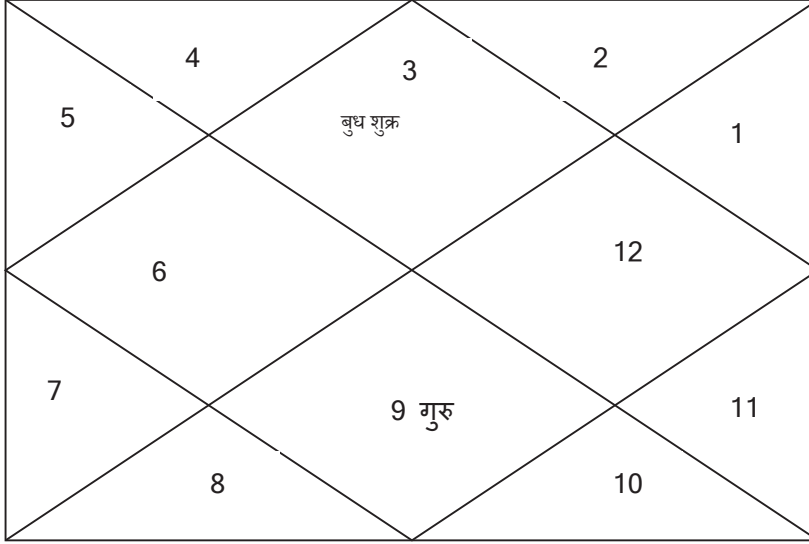
अभ्यासप्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नो मे सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

1. गृहारम्भकालीन लग्न के आधार पर गृह की आयु का निर्धारण किया जाता है |
2. गृह निर्माण के आरंभ काल की लग्न के समय चतुर्थ भाव में गुरु एवं दशम भाव में चंद्र तथा 11 वे भाव में मंगल एवं सूर्य हो तो उस भवन की आयु 80 वर्ष की होती है |
3. भृगु शब्द का अर्थ गुरु होता है |
4. गृहारम्भकाल में शुभ ग्रह स्वराशि या उच्च राशि के होकर लग्न में अथवा केंद्र में बैठे हो तो भवन की आयु 200 वर्ष होती है |

[9] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 29

5. गृहारंभ कालीन लग्न में यदि गुरु बैठा हूं और सूर्य छठे भाव में विद्यमान हो तथा बुध सप्तम भाव में हो शुक्र चौथे भाव में हो तथा शनि तीसरे घर में हो तो ऐसे योग में निर्मित ग्रह की आयु 200 वर्ष होती है |

१.३.४ – गृह की आयु सहस्त्र (1000) वर्षात्मक- शास्त्रों में भवन की आयु 1000 वर्ष प्रमाण की भी बताई गई है अर्थात शुभ विशेष काल में किया गया गृहारंभ से गृह आयु 1000 वर्ष तक की हो सकती है। जैसे गृह आरंभ की लग्न में स्वराशि या उच्च राशि का शुक्र बैठा हो अथवा चतुर्थ भाव में स्वराशि या उच्च राशि का गुरु बैठा हूं तथा स्वराशि या उच्च राशि का होकर शनि ग्यारहवें भाव में बैठा हो तो ग्रह की आयु या स्थिति 1000 वर्ष से भी अधिक की होती है | यथा –

स्वोच्चस्थो वा भृगुर्लग्ने स्वोच्चे जीवे सुखस्थिते | स्वोच्चे लाभगते मन्दे सहस्त्राणां समास्थितिः ||

कुण्डली द्वारा योग की स्थिति –

योग-1
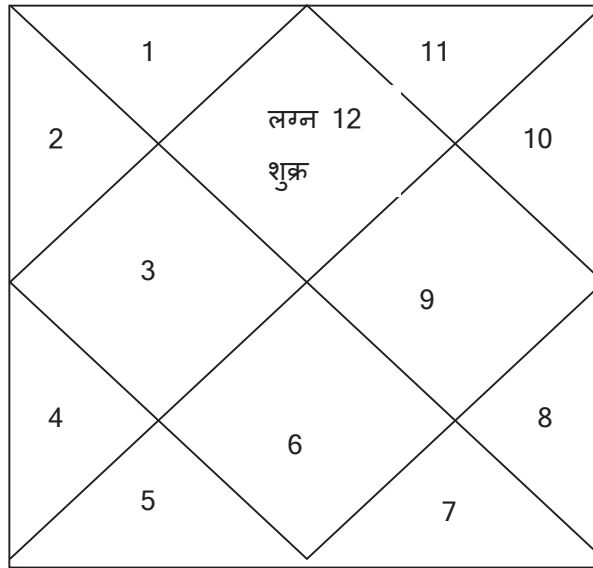
योग - 2
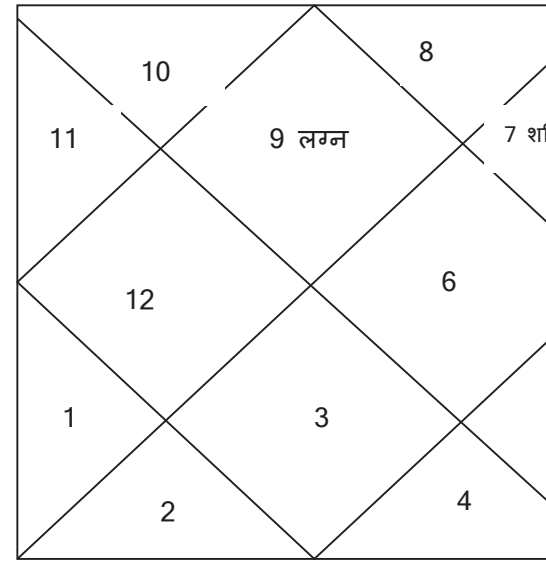
योग-3 **योग-4**
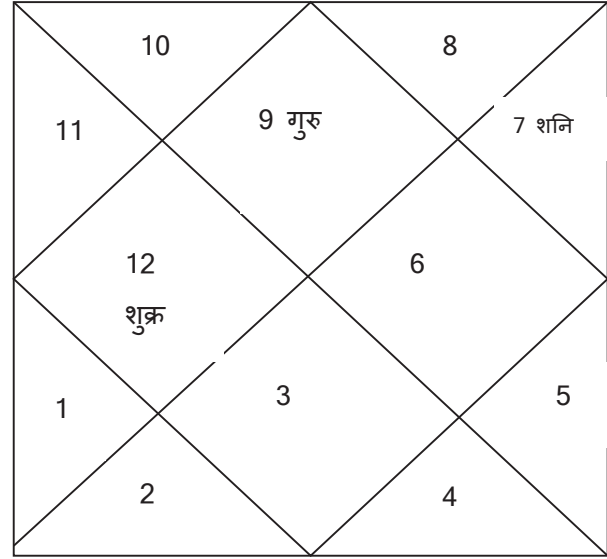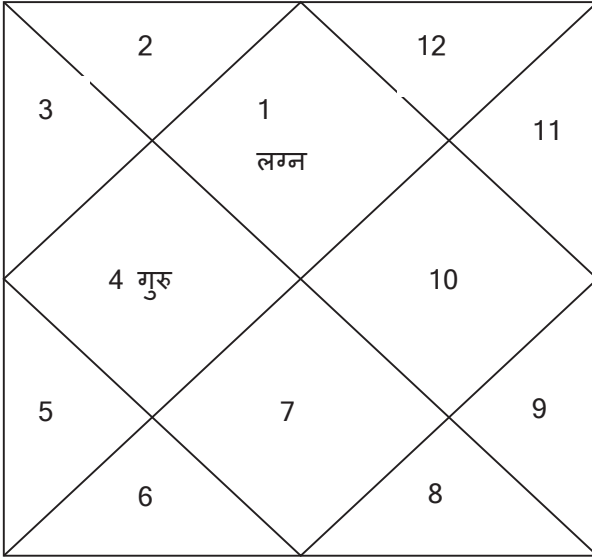
१.३.५ – शीघ्र नष्ट होने वाले गृह के योग - गृह आयु विचार के प्रसंग में हम सामान्य जीवन में देखते हैं कि भवन निर्माण तो अच्छी तरह से हुआ लेकिन किसी कारणवश वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है इसमें कहीं ना कहीं कोई योग विशेष कारण रहता है। हमारे शास्त्र-ग्रन्थों में भवन के शीघ्र नष्ट होने के योग का प्रमाण भी बताया गया है जैसे यदि लग्न में क्षीण चंद्रमा (कृष्ण पक्ष की सार्ध सप्तमी से शुक्ल पक्ष की सार्ध सप्तमी तक का) तथा अष्टम भाव में मंगल विद्यमान हो तो इस योग में प्रारंभ किया गया गृह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यथा -

लग्नगे शशिनि क्षीणे मृत्युस्थाने च भूसुते।
प्रारम्भः क्रियते यस्य शीघ्रं तद्धि विनश्यति ||[10]

१.३.६ – अन्य गृह संबंधी योग - गृह निर्माण में कुछ वर्जित योग भी बताए गए हैं। इन योगों के अनुसार यदि भवन स्वामी की कुंडली में भवन निर्माण के समय जिस ग्रह की दशा चल रही हो और वह भवन निर्माण

[10] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 38

समय में निर्बल हो तथा उसके वर्ण का स्वामी ग्रह निर्बल हो साथ ही सूर्य पीड़ित नक्षत्र में हो तो गृह निर्माण ना करें।

दशापतौ बलैर्हीने वर्णनाथे तथैव च |
पीडितर्क्षगते सूर्ये न विदध्यात्कदाचन ||[11]

इसी प्रकार कई बार हमें ऐसा देखने को भी प्राप्त होता है कि गृह का निर्माण तो हमारे द्वारा कराया जाता है लेकिन किसी परिस्थिति वश आप उस भवन का सुख भोग नहीं कर पाते हैं इसका मुख्य कारण जन्म कुंडली में हमारी ग्रह स्थिति भी होती है जैसे यदि एक भी ग्रह जन्म कुंडली में शत्रु नवांश का होकर दशम या सप्तम भाव में बैठा हो तथा गृह कर्ता के वर्ण ब्राम्हण आदि का स्वामी ग्रह यदि निर्बल हो तो वह गृह निर्माण के उपरांत दूसरे के हाथ में चला जाता है |

१.३.७ – गृहपिण्ड द्वारा गृह-आयु का ज्ञान – गृह की आयु का निर्धारण गृहपिण्ड के माध्यम से भी किया जाता है। इस विधि के अनुसार भवन के पिण्ड या क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके 120 से भाग देने पर शेष मान के बराबर गृह की आयु होती है। जब तक आयु की समाप्ति न हो तब तक घर शुभ या पूर्णायु युक्त मकान शुभ होता है। यथा –

गृहस्य पिण्डं गजभिर्विगुण्यं विभाजितं शून्यदिवाकरेण।
यच्छेषमायुः कथितं मुनीन्द्रैरायुष्य भवने शुभं स्यात् ॥[12]

सूत्र – गृहपिण्ड (क्षेत्रफल) x 8 / 120 = गृह आयु प्रमाण

उदाहरण – जैसे गृह का पिण्ड मान (क्षेत्रफल) = 40 X 30 = 1200 हस्तवर्ग है। तो सूत्रानुसार

(1200 X 8) / 120 = 9600 / 120 = 80 वर्ष अतः 1200 हस्त वर्ग वाले भवन की आयु 80 वर्ष की हुई ।

गृह आयु की अन्य विधि तथा गृह विनाश का कारण – हस्तात्मक गृहपिण्ड या क्षेत्रफल को 8 से गुणा कर 60 से विभक्त करने पर प्राप्त लब्धि को 10 से गुणा करने पर गृह की आयु का मान वर्षों में प्राप्त होता है। भाग देने पर जो शेष बचे उसमें पाँच से भाग देने पर जो शेष हो उसके क्रम से अर्थात 1 शेष बचे तो

[11] विश्वकर्मप्रकाशः तृतीयोऽध्यायः श्लो० 39
[12] बृहदवास्तुमाला गणनाविचार श्लो॰ 29

पृथ्वी तत्व से दो शेष बचे तो जल तत्व से तीन शेष बचे तो अग्नि तत्व से चार शेष बचे तो वायु तत्व से शून्य शेष बचे तो आकाश तत्व के द्वारा गृह आयु पूर्णा होने पर गृह का विनाश हो जाता है। पृथ्वी तत्व आए तो पुराना होकर घर गिर जाता है , जल तत्व हो तो जल के द्वारा घर का विनाश, वायु तत्व हो तो घर के अंगों(लकड़ी, दीवाल आदि) में रोग हो जाने से घर गिर जाता है , आकाश तत्व हो तो आयु पूर्ण होने पर गृह शून्य हो जाता है। यथा –

हस्तात्मकं क्षेत्रफलं गजाहतं संवत्सरैर्भाजितलब्धकं यत्।
तत्खेन्दुगुण्यं भवनस्य जीवनं यच्छेषितं भुतहृतं विलीयते ॥
पृथिव्यापोऽनलो वायुराकाश इति पञ्चभिः ।
गृहस्यायुषि संपूर्णे विकारो जायते ध्रुवम् ॥[13]

अभ्यासप्रश्न – 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1- शुक्र केंद्र या लग्न में .... राशि का हो तो भवन की आयु 1000 वर्ष की होती है|
2- चतुर्थ भाव में .... ग्रह उच्च का हो तो भवन की आयु 1000 वर्ष की होती है|
3- उच्च का शनि एकादश भाव में विराजमान हो तो गृह की आयु .... वर्ष की होती है|
4- गृह विनाश प्रक्रिया में यदि वायु तत्व शेष रूप में प्राप्त हो तो गृह का विनाश गृह में ....होने से होता है |
5- कृष्ण पक्ष की सार्द्ध सप्तमी से शुक्ल पक्ष की सार्द्ध सप्तमी तक चंद्र ....रहता है|

१.४ सारांश

सारांश रूप में प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात हम यह ज्ञात कर चुके हैं कि गृह की निर्माण कालीन जो लग्न होती है उसके अनुसार तथा ग्रहों की स्थिति के अनुसार उस गृह की आयु का प्रमाण भिन्न-भिन्न वर्षों में प्राप्त होता है अर्थात गृह निर्माण कालीन लग्न स्थिति के अनुसार कुछ योग 80 वर्ष की आयु के प्रमाण के प्राप्त होते हैं, कुछ योग 100 वर्ष गृह की आयु के प्रमाण के होते

[13] बृहदवास्तुमाला गणनाविचार श्लो० 31-30

हैं, कुछ योग(ग्रह स्थिति) गृह की आयु 200 वर्ष प्रमाण के भी शास्त्रों में प्रतिपादित किए गए हैं एवं कुछ योग या ग्रह स्थिति में तो किया गया गृह निर्माण कार्य से गृह की आयु 1 हजार से अधिक वर्ष प्रमाण की होती है | इसका प्रमाण आज भी हम देख पाते है कि कई वर्षों पूर्व बनाए गए मंदिर , किला इत्यादि आज भी सुरक्षित अवस्था में दिखाई देते है। साथ ही साथ शीघ्र नष्ट होने वाले भवन के योग भी शास्त्रों में बताए गए हैं एवं ग्रहों की परस्पर स्थिति वशात् भवन निर्माण के पश्चात भी उसका सुख प्राप्त नहीं कर पाना इस प्रकार के योगो का भी उल्लेख हमारे शास्त्रों में प्राप्त होता है। साथ ही साथ गृहपिण्ड द्वारा भी गृह आयु का विचार शास्त्रों मेन किया गया है। अतः मनुष्य को चाहिए की जब भी वह गृह निर्माण का कार्य आरंभ करने जा रहा हो उस समय तात्कालिक ग्रह स्थिति का विचार करना अत्यावश्यक है क्योंकि वह अपने पूरे जीवन की संचित निधि को अपने स्वप्न रुपी गृह के निर्माण में लगाता है यदि उस गृह निर्माण का फल उसे शुभ प्राप्त ना हो उस मनुष्य के लिए यह अत्यंत कष्ट कर होता है वास्तु शास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र इन्हीं बातों का मार्गदर्शन करता है। अतः मनुष्य को अवश्य ही शास्त्रोक्त विधि से गृह निर्माण करना चाहिये। जिससे वह गृह का सुख पुरी तरह से प्राप्त कर सके।

१.५ पारिभाषिक शब्दाबली

1- **गृहायु** – गृह अथवा भवन की आयु अर्थात भवन कितने वर्ष तक सुरक्षित रहेगा|
2- **पापग्रह** – राहू, मंगल, शनि, केतू तथा सूर्य ज्योतिष शास्त्र में पापग्रह माने जाते हैं |
3- **पापान्तरगते**- पाप ग्रहों के मध्य में अर्थात भाव के अगले एवं पिछले भाव में पाप ग्रह हो|
4- **गृहारम्भकालीन लग्न** – जिस समय भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया जाता है उस समय की लग्न |
5- **क्षीणचंद्र** – चन्द्र की सामान्यतः दो अवस्थाये रहती है एका पूर्ण चंद्र एवं एक क्षीण चंद्र | कृष्ण पक्ष की सार्द्ध सप्तमी से शुक्ल पक्ष की सार्द्ध सप्तमी तक चंद्र क्षीण रहता है | अर्थात उसका बल कम रहता है |
6- **स्वोच्च** – ग्रह की उच्च अवस्था या राशि जैसे सूर्य की स्वोच्च राशि मेष है |
7- **स्वराशि-** ग्रह जिस राशि का स्वामी होता है वह उसकी स्वराशि होती है जैसे – सूर्य की सिंह स्वराशि है |
8- **केंद्र** – कुंडली में 1-4-7-10 भाव केंद्र भाव होते हैं |

१.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1-

1- सत्य , 2 –सत्य, 3- असत्य, 4- सत्य, 5- असत्य |

अभ्यास -2

1- उच्च , 2- गुरु , 3- 1000 वर्ष , 4 –रोग , 5 – क्षीण चन्द्र |

१.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची-

(क) मूल लेखक – विश्वकर्मा , सम्पादक एवं टीकाकार –महर्षि अभय कात्यायन , विश्वकर्मप्रकाशः(२०१३) तृतीतोऽध्यायः श्लो २३-३९ , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ख) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) गणनाविचार श्लो ८२-८६ , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ग) मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००९) वास्तुप्रकरण , चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी |

नोट -अन्य संदर्भो का उद्धरण प्रत्येक संदर्भ के पृष्ठ पर है |

१.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

मयमतम् – मयमुनि

बृहत्संहिता – वराहमिहिर

बृहज्जातकम् – वराहमिहिर

वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

१.९ निबन्धात्मक प्रश्न -

1. वास्तु शास्त्र के अनुसार गृहायु के ८० वर्ष प्रमाण के योग को बताइये।
2. गृह की आयु १०० वर्ष की कब होती है।
3. वास्तु शास्त्र (ज्योतिष) के अनुसार शीघ्र गृह नष्ट होने के कारण बताइये।
4. गृह पिण्डद्वारा गृह आयु ज्ञान प्रक्रिया को उदाहरण सहित लिखिए।
5. गृहायु पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

इकाई - २ जलस्थापन निर्धारण

इकाई की संरचना-

२.१ प्रस्तावना-

आप लोगो को वास्तु शास्त्र में रुचि है यह मेरा विश्वास है इसी कारण आप वास्तु शास्त्र के इस पाठ्यक्रम को पढ रहे हैं। वर्तमान काल में वास्तु शास्त्र की महत्ता से आप लोग भलीभाति परिचित है। मानव जीवन में वास्तु शास्त्र अत्यंत उपयोगी शास्त्र है। हम सभी जानते हैं कि हमारा यह शरीर पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु) से मिलकर बना है। जिस प्रकार मानव जीवन में इन पंचमहाभूतों का सामंजस्य आवश्यक है उसी प्रकार इस पृथ्वी एवं हमारे घर में भी इन पंचमहाभूतों का सामञ्जस्य आवश्यक है। पंचमहाभूतों में भी जल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि कहा जाता है कि **"जल ही जीवन है"**। अतः प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि वास्तु के अनुसार जलस्थापन निर्धारण के सिद्धान्त क्या हैं एवं घर में किस प्रकार घर में जल की स्थापना की जानी चाहिए तथा पानी की टंकी, भूमिगत जल की व्यवस्था, जल निकासी के विभिन्न सिद्धांत क्या है।

२.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ समझ सकेंगे कि पंचमहाभूतों का मानव जीवन में क्या महत्व है।
- ❖ वास्तु शास्त्र में जलस्थापन निर्धारण के महत्व को जान सकेंगे।
- ❖ यह बता सकेंगे कि घर में भूमिगत जल की व्यवस्था कहाँ की जाती है।
- ❖ समझ जाएँगे कि पानी की टंकी इत्यादि का उचित स्थान घर में कहाँ होता है।
- ❖ जल निकासी की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है इस बारें में आप अवगत हो जाएँगे।
- ❖ जलाशय मुहूर्त के विषय मे अवगत हो जायेगे।

२.३ जलस्थापन निर्धारण –

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा।
तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता॥
अग्निष्टोमसमः कूपः सोश्वमेधसमो मरौ।
कूपः प्रवृत्त्पानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम्॥
कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान्भोगानुपाश्नुते।

तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितम् ॥[14]

इहलोक में बिना जल के जीवन निर्वाह नही हो सकता इसलिये विद्वान् पुरुष को जलाशय बनबाना चाहिये। एक कूप बनवा देने से अग्निष्टोम के तुल्य फल मिलता है। वही कूप यदि मरुभुमि में बनबाया जाय तो अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल होता है। बनाये हुये कूप में यदि पुष्कल जल(अर्थात पर्याप्त) रहे जिससे लोगो की तृप्ति होती रहे तो बनबाने वाले के संपूर्ण दुष्कर्म नष्ट हो जाते है। कूप बनाने वाला स्वर्ग में जाकर नाना प्रकार के सुखों को भोगता है। यदि वह कूप निर्जल देश में हो तो बहुत काल तक बनबाने वाले को स्वर्ग में रहना पडता है। इस प्रकार हमारे शास्त्रो में जल एवं जलाशय निर्माण की महिमा को बताया गया है।

वास्तु शास्त्र पञ्चमहाभूतों के सामंजस्य से गृहनिर्माण अथवा वास्तु के सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है। पंचमहाभूतों में जल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। हमारे दैनिक जीवन में भी जल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जल के बिना जीवन की संकल्पना भी संभव नहीं है। जल का प्रयोग पर्यावरण में बहुत प्रकार से किया जाता है चाहे पीने के विषय में हो या दैनिक क्रियाओं के संपादन में हो, कृषि कार्य, पर्यावरण को संतुलित बनाने में भी जल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हम जानते है कि पृथ्वी पर जल के अनेक श्रोत है जिनमें सागर, नदियां, वर्षा का जल, भूमिगत जल इत्यादि प्रमुख हैं। इसी जल के स्थान से संबधित नियमों का प्रतिपादन हमारे वास्तु शास्त्र में अत्यन्त समीचीनतया किया गया है। जिसके परिपालन से मानव जीवन और सुखमय व व्यवस्थित बनता है। उन्हीं नियमों के बारे में हम प्रस्तुत इकाई में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

२.३.१-आवास आदि में भूमिगत जल का निर्धारण –

भूमिगत-जल से तात्पर्य पृथ्वी के गर्भ में विद्यमान जल राशि से है। प्राचीन काल से ही भूमिगत

जल से संबन्धित निर्माण होते आ रहे हैं जिनमें कूप प्रमुख है आधुनिक युग में भूमिगत जल के लिये बोरिंग, या भूमिगत टेंक का निर्माण कार्य किया जाता है। इसी भूमिगत जल हेतु वास्तु शास्त्र में व्यापक विचार किया गया है एवं सभी आचार्यो ने एकमत से भूमिगत जल हेतु ईशान, पूर्व, उत्तर, और पश्चिम दिशा को अति उत्तम माना है। वास्तव में ईशान के स्वामी महादेव भगवान शिव है और संपूर्ण विश्व में जल से उनका अभिषेक होता है अतः उन्हे जल अत्यन्त प्रिय है। कहा भी गया है कि -

"जलधारा शिवप्रिया"

[14] वास्तुरत्नाकर जलाशयप्रकरण श्लो 01 से 03 तक

शिव और जल का यह पारस्परिक संबन्ध ईशान में जल व्यवस्था को परिपुष्ट करता है। पूर्व –उत्तर में भूमिगत जल के स्थान का कारण वास्तु शास्त्र के मूल सिद्धान्त के कारण है। वास्तु शास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि प्लवत्व के अनुसार सर्वदा भूमि का पूर्वोत्तर भाग नीचा रहना चाहिये। यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है इसी कारण भूमिगत जल का सर्वोत्तम स्थान ईशान दिशा (कोण) को माना जाता है। पश्चिम दिशा के स्वामी वरुण है जो स्वयम् जल के देवता है अतः भूमिगत जल का स्थान पश्चिम में भी शुभ माना गया है। आवास या भवन के विभिन्न स्थान में भूमिगत जल के निर्माण के फल का विवेचन मुहुर्तचिन्तामणि में निम्नवत् किया गया है –

कूपे वास्तोर्मध्यदेषे र्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः |
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च संपत्पीडा शत्रुतः स्याच्चसौख्यम् ||[15]

अर्थात् यदि वास्तु (गृह पिण्ड) के मध्य में भूमिगत जल यथा कूप, बोरिंग या नलकूप हो तो गृह स्वामी का धननाश, ईशान कोण में हो तो पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्यवृद्धि , अग्नि कोण में पुत्र नाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैऋत्य कोण में मृत्यु, पश्चिम में संपत्ति, वायव्य में शत्रुपीडा तथा उत्तर में दिशा में सुख की प्राप्ति होती है |

यथा तालिका माध्यम से भूमिगत जल निर्माण (कूप, बोरिन्ग, नलकूप) आदि का फल -

दिशा	मध्य	ईशान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर
फल	धननाश	पुष्टि	ऐश्वर्य	पुत्रनाश	स्त्रीनाश	मृत्यु	संपत्ति	शत्रुभय	सौख्य

चित्र के माध्यम से विभिन्न दिशाओं मे कूपादि का शुभाशुभत्व-

15 मुहूर्तचिन्तामणिः वास्तुप्रकरण श्लो० 20

ईशान		पूर्व		आग्नेय
	शुभ (पुष्टि)	शुभ (ऐश्वर्य)	अशुभ (पुत्र नाश)	
उत्तर	शुभ (सुख)	अशुभ (धनहानि)	अशुभ (स्त्री नाश)	दक्षिण
	अशुभ (शत्रुभय)	शुभ (धन लाभ)	अशुभ (मृत्यु)	
वायव्य		पश्चिम		नैऋत्य

निम्न लिखित स्थानो में भूमिगत जल निर्माण किया जाना चाहिये –
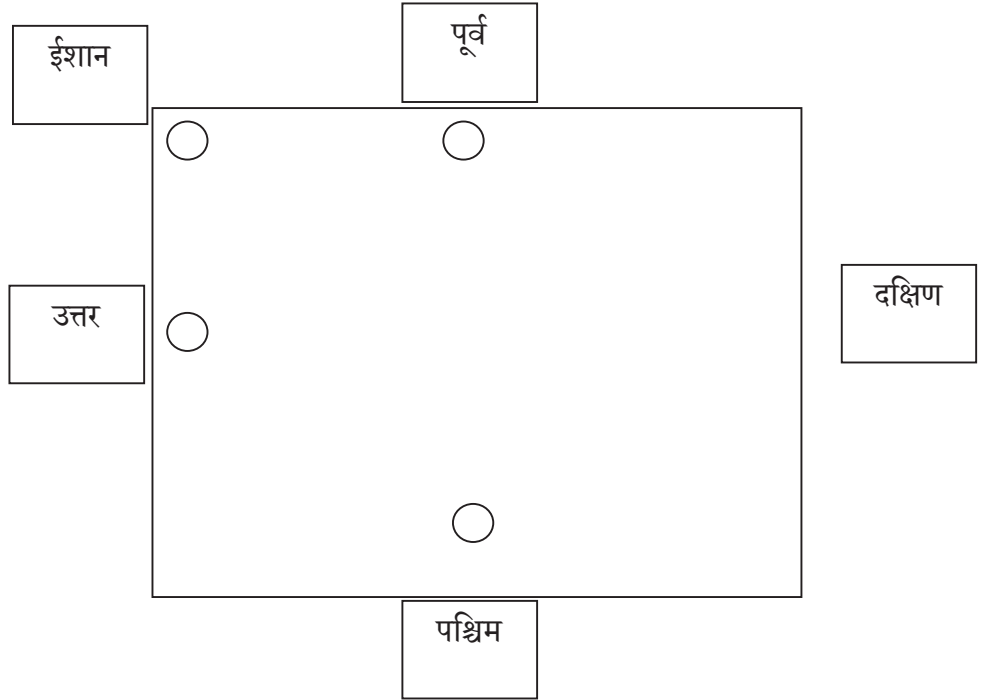
भवन में कूपादि के निर्माण के समय निम्नलिखित बातों को अवश्य ध्यान रखना चाहिये –

1.- घर में मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही जल का बोरिंग या कूप नहीं करना चाहिये।

2.- भवन के ब्रह्मस्थल (मध्यस्थल) पर कभी भी जल के बोरिंग हेतु गड्डा नहीं करना चाहिये।

3.- आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, और वायव्य में भूमिगत जल निर्माण कार्य नहीं करना चाहिये।

4.- ईशान, पूर्व, उत्तर और पश्चिम भूमिगत जल के लिये उत्तम स्थान है।

5.- जल का बोरिंग कभी भी दीवार के बिल्कुल पास नही करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

1. भूमिगत जल के अन्तर्गत कूप आता है।
2. कूपादि का निर्माण दक्षिण दिशा मे शुभ होता है।
3. ईशान –पूर्व उत्तर भूमिगत जल के लिये उपयुक्त स्थान नहीं है।
4. ब्रह्मस्थल हमेशा रिक्त रहना चाहिये।
5. भूमिगत जल का निर्माण पश्चिम दिशा में करने से संपत्ति का नाश होता है|

२.३.२ घर मे जलसंग्रह का स्थान -

जल प्राप्ति के स्थान का तो वास्तु शास्त्र में अत्यन्त महत्व है ही, साथ ही साथ वास्तु के अनुसार जल संग्रह के स्थान का भी विशेष महत्व होता है। बृहत्संहिता में जलसंग्रह के विषय मे बताया गया है कि –

प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्व्यं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥[16]

अर्थात् यदि पूर्व दिशा में जल संग्रह करने से पुत्र हानि, आग्नेय कोण में जल संग्रह से आग का डर , दक्षिण में स्त्रियों में कलह, पश्चिम में स्त्रीयो में दुःशीलता वायव्य में निर्धनता, उत्तर में धनवृद्धि और ईशान में पुत्रवृद्धि होती है। चित्र के माध्यम से वास्तु (घर) में जल संग्रह का फल निम्न प्रकार से है।

ईशान | पूर्व | आग्नेय

शुभ (पुत्रवृद्धि)	अशुभ (पुत्रहानि)	अशुभ (अग्नि भय)
शुभ (धनवृद्धि)		अशुभ (शत्रु भय)
अशुभ (निर्धनता)	शुभ (स्त्रीयो मे दुःशीलता)	अशुभ (स्त्रीयो मे कलह)

उत्तर (left) | दक्षिण (right)

वायव्य | पश्चिम | नैऋत्य

[16] बृहत्संहिता वास्तुविद्याध्यायः - श्लोक ११९

यहाँ एक बात ध्यान रखने योग्य होती है कि घर के छत पर यदि जल संग्रह करना हो यथा पानी की टंकी इत्यादि तो उसके लिये हमें वास्तु शास्त्र के मूल सिद्धान्त को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये अर्थात् वास्तु शास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि भवन का पूर्व उत्तर भाग नीचा और पश्चिम भाग उन्नत होना चाहिये। अतः ऐसा कोई भी निर्माण जो भवन के दक्षिण पश्चिम भाग को उन्नत करे वह वास्तु-सम्मत और जो भवन के उत्तर-पूर्व भाग को उन्नत करे वह वास्तु नियम के विरुद्ध है अतःभवन में ओवरहैड टंकी का निर्माण भी भवन के दक्षिण पश्चिम या नैऋत्य कोण में ही करना चाहिये। पानी की टंकी के निर्माण में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये -

1. पानी की ओवरहैड टंकी सदैव दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य कोण में ही करे।
2. पूर्व-उत्तर तथा ईशान में कभी भी पानी की ओवरहैड टंकी नही रखनी चाहिये।
3. यदि परिस्थिति वश पूर्व, उत्तर या ईशान में पानी की टंकी रखनी पडे तो दक्षिण पश्चिम भाग में कोई कक्ष या इस प्रकार कोई निर्माण कार्य करना चाहिये जो पानी की टंकी से उन्नत हो।

2.3.3 जल निकासी – जिस प्रकार हमें वास्तु शास्त्र के अनुसार जल के स्रोत का निर्माण उचित दिशा या स्थान में करना चाहिये उसी प्रकार जल की निकासी भी महत्वपूर्ण है। यथा-

गृहाद् वारि निस्सारणार्थं प्रकुर्याद् बिलं पूर्व काष्ठादिके तत्फलं च।
शुभं चाशुभं दुखदं पुत्रहानिः समं शोभनं वृद्धिदं पुत्रदं च॥[17]

अर्थात् घर के जल की निकासी के लिये पूर्व, ईशान, वायव्य एवं पश्चिम दिशा उचित है। शेष दिशा अर्थात् आग्नेय, दक्षिण, और नैऋत्य दिशा से जल निकासी अशुभ फल देने वाली होती है। इसका दिशा के अनुसार फल क्या होता है यह हम निम्नचक्र के माध्यम से समझ सकते है -

दिशा	**फल**
पूर्व	शुभ
आग्नेय	अशुभ,धनक्षय
दक्षिण	दुख
नैऋत्य	पुत्रहानि

17 वास्तुमाणिक्यरत्नाकर

पश्चिम	समफल
वायव्य	शुभ
उत्तर	राज सम्मान
ईशान	सुख- संपति

अभ्यास प्रश्न- 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1. पूर्व दिशा में जल संग्रह का फल .... होता है।
2. वायव्य कोण से जल निकासी का फल .... होता है।
3. पानी की ओवरहैड टंकी का निर्माण ....दिशाओं में शुभ होता है।
4. वायव्य में जल संग्रह .... कारक होता है।
5. पूर्व दिशा से जलनिकासी .... होती है।

२.३.४. जलाशय मुहूर्त एवं कूप चक्र –

कूप-चक्र –कूप (कुआँ) आदि खुदवाते समय कूप चक्र का विचार अवश्य करना चाहिये। कूप चक्र के अनुसार विभिन्न ग्रहों की नक्षत्र स्थिति के अनुसार वर्तमान नक्षत्र अनुसार जल विचार किया जाता है अर्थात् जल की प्राप्ति कैसी होगी स्वाद कैसा होगा इसका विचार कूप चक्र के माध्यम से किया जाता है। यथा सर्वप्रथम सूर्य नक्षत्र के अनुसार कूप चक्र के अनुसार जल का विचार करे तो, सूर्य नक्षत्र से (सूर्य जिस नक्षत्र में हो) तीन नक्षत्र तक यदि वर्तमान नक्षत्र (चन्द्र नक्षत्र) हो तो इस समय यदि कुआँ खोदा जाये तो इसे मध्य भाग का जल कहते है एवं स्वादिष्ट जल की प्राप्ति होती है। एवं तीन नक्षत्र के बाद अर्थात् सूर्य नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र चार नक्षत्र से 6 नक्षत्र तक रहे तो पूर्व दिशा में (कूप के) जल की प्राप्ति होगी है एवं इससे स्वल्प जल की प्राप्ति होती है। इसे विस्तृत रूप से निम्न चक्र के माध्यम से समझ सकते है|

सूर्य नक्षत्र से कूपचक्र[18]

दिशा	नक्षत्र	फल
मध्य	3	स्वादिष्ट जल
पूर्व	3	स्वल्प जल
आग्नेय	3	स्वादिष्ट जल
दक्षिण	3	जल- नाश
नैऋत्य	3	स्वादिष्ट जल
पश्चिम	3	क्षार-जल
वायव्य	3	शीतल-जल
उत्तर	3	मिश्रित-जल
ईशान	3	क्षार-जल

नोट - दिशा से तात्पर्य कूप के किस भाग से जल प्राप्ति से है।

रोहिणी नक्षत्र से कूप चक्र - रोहिणी नक्षत्र के अनुसार भी कूप चक्र का निर्माण किया जाता है। अर्थात् रोहिणी नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र की स्थिति के अनुसार कूपादि के जल का विचार किया जाता है जैसे – रोहिणी नक्षत्र से वर्तमान दिन के नक्षत्र तक गिने, प्रथम तीन नक्षत्र मध्य में 3-3 पूर्वादि आठ दिशा-विदिशाओं में रखें। क्रमशः फल 3 स्वादु जल, 3 खण्डित जल, 3 सुजल, 3 निर्जल, 3 अमृत जल, 3 शोभन जल, 3 जलहानि, 3 स्वादु जल, 3 क्षार अल्प एवं तीक्ष्ण जल होता है|

यथा चक्र के माध्यम से

[18] कुपेर्कभान्मध्यगतैसस्त्रिभिभै: स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिस्त्रिभिः |
स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं च मिश्रितम् ||
(वृहद्वास्तुमाला दकार्गलं श्लो०११६)

रोहिणी नक्षत्र से कूप चक्र[19]

दिशा	नक्षत्र	फल
मध्य	3(रोहिणी, मृगशिरा आर्द्रा)	स्वादिष्ट जल
पूर्व	3(पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा)	स्वल्प जल
आग्नेय	3(मघा, पू. फा०,उ० फा०)	स्वादिष्ट जल
दक्षिण	3(हस्त, चित्रा, स्वाती	जल- नाश
नैऋत्य	3(विशाखा, अनु., ज्येष्ठा)	स्वादिष्ट जल
पश्चिम	3(मूल, पू०षा०, उ०षा०)	क्षार-जल
वायव्य	3(श्रवण,धनिष्ठा, शतभिषा)	शीतल-जल
उत्तर	3(पू०भा०, उ०भा०, रेवती)	मिश्रित-जल
ईशान	3(अश्विनी, भरणी, कृतिका)	क्षार-जल

भौम नक्षत्र से कूप चक्र - भौम नक्षत्र से भी कूप चक्र के निर्माण का फल शास्त्रो में बताया गया है अर्थात् भौम नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र तक गिनने से यदि प्रथम नक्षत्र हो तो जल से वध का भय एवं उसके बाद अग्रिम 5 नक्षत्रों तक सिद्धि इसी प्रकार आगे का भी फल बताया गया है जो हम निम्न तालिका से समझ सकते है यथा –

भौम नक्षत्र से कूप चक्र[20]

[19] वृहद्वास्तुमाला दकार्गलं श्लो०११७- १२०

[20] वृहद्वास्तुमाला दकार्गलं श्लो-१२१

नक्षत्र	फल
1	जल से वध
5	सिद्धि
4	अभन्ग
3	असिद्धि
3	रोग
4	यश
3	यश,प्रसिद्धि
4	जल-भङ्ग

राहू नक्षत्र से कूप चक्र – राहू नक्षत्र से कूपादि का विचार किया जाता है। राहू नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र (चन्द्र नक्षत्र) तक गिनने पर 3 नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं मे एवं अन्तिम 4 नक्षत्र में मध्य मे जानकर शुभाशुभ फल इस प्रकार समझना चाहिये यथा –

राह नक्षत्र से कूप चक्र[21]

दिशा	नक्षत्र	फल
पूर्व	3	शोक
आग्नेय	3	जल लाभ
दक्षिण	3	स्वामी मृत्यु
नैऋत्य	3	दुःख
पश्चिम	3	सुख
वायव्य	3	जल-वृद्धि
उत्तर	3	निर्जलम्
ईशान	3	जल-सिद्धि
मध्य	4	सजल

विभिन्न- कूपचक्रों का प्रयोजन – उपर्युक्त कूप-चक्रों का प्रयोजन यह है कि यदि उपर्युक्त प्रकार से वर्तमान नक्षत्र में किये जाने वाले कूप खुदवाने के कार्य में यदि सभी प्रशस्त आये तो निश्चित ही वहाँ जल की प्राप्ति अवश्य होगी। यथा वास्तुरत्नाकर में कहा गया है कि –

रोहिण्यृक्षात्सूर्याभाद् भौमभाच्च राहो ऋक्षाद् गण्यते कूपचक्रम्।

यस्मिन्काले सर्वमेतत्प्रशस्तं तस्मिन्भूमौ निर्जलायां जलत्वम् ॥[22]

---

[21] वृहद्वास्तुमाला दकार्गलं श्लो-१२२-१२५

[22] वास्तुरत्नाकर जलाशयप्रकरणम् श्लो ३६

जलाशय मुहूर्त- शुभ समय में किये गये कार्य शुभफल दायक होते है। अतः ज्योतिष एवं वास्तु शास्त्र में मुहूर्त का विशेष महत्व होता है। किसी भी कार्य का यदि शुभारम्भ शुभ मुहूर्त में हो तो वह निश्चित ही फलप्रदायक होता है, अतः जलाशय निर्माण में भी शुभ मुहूर्त का विचार करना आवश्यक होता है।

कूपादि के मुहूर्त के विषय में बृहद्वास्तुमाला में बताया गया है कि –

चित्रा स्वातिपुनर्वसु मृगशिरो मुलाश्विनीरोहिणी-

हस्ताः पुष्यधनिष्ठकं शतभिषक् मित्रोत्तरारेवती |

एतेषु श्रवणान्वितेषु मकरे लग्ने च कुम्भे झषे

वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्ते दिने ||[23]

अर्थात् चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण नक्षत्रों में मकर, कुम्भ, मीन लग्न में शुभ दिनों में कूपादि का निर्माण शुभ होता है।

विस्तार से कूपादि आरम्भ मुहूर्त निम्नवत है –

1. उत्तरायण में (चैत्र मास को छोडकर), पृथ्वी शयन नक्षत्र न हो अर्थात् अभीष्ट नक्षत्र सूर्य नक्षत्र (सूर्य जिस नक्षत्र में हो) से 5, 7, 9, 12, 19, 26 वा नक्षत्र न हो अर्थात् इन नक्षत्रो में पृथ्वी शयन करती है।
2. **नक्षत्र** - चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, अश्विनी ,रोहिणी, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, तीनो उत्तरा, रेवती, श्रवण इन नक्षत्रो में कूपादि का आरम्भ शुभ होता है।
3. **तिथि** – 2, 3, 5, 6, 7, 13, 15 तिथियों में कूपारम्भ शुभ होता है।
4. **वार-** सोम, बुध, गुरु एवं शुक्रवार।
5. **लग्न** – 2, 3, 4, 6, 7, 9, 10, 11, 12 लग्न हो एवं शुभ ग्रह केन्द्र व पाप ग्रह त्रिषडाय में हो।

अभ्यास प्रश्न – 3

---

[23] बृहद्वास्तुमाला दकार्गलम श्लो० १३६-१३७

निम्नलिखित प्रश्नो में सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

1. कूप चक्र मुख्य रूप से चार प्रकार से बनाये जाते है।
2. रोहिणी चक्र के अनुसार यदि मृगशिरा में जलाशय का निर्माण किया जाये तो स्वादिष्ट जल की प्राप्ति होती है।
3. उत्तरायण में जलाशय का आरम्भ नहीं करना चाहिये।
4. चित्रा नक्षत्र में कूपादि का निर्माण शुभदायक होता है।
5. जलाशय निर्माण कालिक लग्न में शुभ ग्रहो की स्थिति केन्द्र मे अशुभफल दायक होती है।

२.४ सारांश -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने वास्तु शास्त्र के अनुसार जलस्थापन से संबधित सिद्धान्तों को जाना। वास्तु के अनुसार भूमिगत जल निर्धारण के अपने सिद्धान्त हैं यथा इसके लिये प्रशस्त दिशा ईशान, पूर्व, उत्तर एवं पश्चिम दिशा को उपयुक्त बताया गया है। इसी प्रकार जल संग्रह के विषय में भी कुछ विशेष बातों को आपने जाना जैसे यदि सामान्य रूप से भवन में जल संग्रह करना हो तो ईशान एवं उत्तर दिशा को प्रशस्त बताया गया है। इसी प्रकार यदि पानी की टंकी इत्यादि के माध्यम से भवन के ऊपर यदि जल संग्रह करना हो तो दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य दिशा में करना चाहिये यहाँ वास्तु शास्त्र के मूल सिद्धान्त के अनुसार पानी की टंकी आदि का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार भवन के बाहर जल निकासी के विषय में भी आपने इस इकाई में जाना यथा जल निकासी पूर्व, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान दिशा में होना चाहिये। इसी क्रम में जलाशय के महत्व एवं कूप चक्र के सिद्धान्त से अवगत हुये, जिसमें मुख्य रूप से 4 प्रकार से कूप चक्र का अवलोकन करना चाहिये यथा सूर्य नक्षत्र से कूप चक्र, भौम(मङ्गल) नक्षत्र से कूप चक्र, रोहिणी नक्षत्र से कूप चक्र, राहू नक्षत्र से कूप चक्र इन चारों नक्षत्र से यदि प्रशस्त योग प्राप्त होता है तो उस स्थान पर निश्चित ही जल की प्राप्ति होती है। साथ ही साथ जल प्राप्ति के भी कुछ योग से अवगत हुये एवं अन्त में जलाशय आदि के निर्माण के शुभ मुहूर्त को जाना। इस प्रकार जैसे मानव जीवन में जल का कितना महत्वपूर्ण स्थान होता है एवं उस जल से संबन्धित नियमो का ख्याल रखकर कार्य किया जाये तो वह निश्चित ही मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

२.५ पारिभाषिक शब्दाबली -

जल-स्थापन –= जल के स्थान या जल का स्रोत।

उदक = जल।

भूमिगत जल = भूमि के गर्भ से प्राप्त होने वाला जल यथा –कूप (कुआँ) बोरिंग, नलकूप इत्यादि।

जल-निकासी = भवन से जल के बाहर जाने का मार्ग।

कूप- चक्र = जल हेतु उपयुक्त स्थान के ज्ञान का बोधक चक्र।

मुहूर्त = जलाशय आदि के निर्माण कार्य हेतु उपयुक्त काल को बताने वाला।

उत्तरायण = सूर्य जब मकर राशि से कन्या राशि मे रहता है उस काल को उत्तरायण कहते है।

विदिशा = चार मुख्य दिशाओं के मध्य वाले कोण को ईशान आदि विदिशा कहते है।

२.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न - 1

1-सत्य, 2 –असत्य , 3 – असत्य , 4 - सत्य, 5- सत्य |

अभ्यास प्रश्न- 2

1-अशुभ (पुत्र हानि), 2 –शुभ , 3 –दक्षिण,पश्चिम, नैऋत्य , 4 - अशुभ , 5- शुभ|

अभ्यास प्रश्न – 3

1-सत्य, 2 –सत्य , 3 – असत्य , 4 - सत्य, 5-असत्य |

२.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची -

(घ) मूल लेखक – श्री विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी, वास्तुरत्नाकर (२०१४) जलाशयप्रकरण श्लो 01 से 03 तक , चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।

(ङ) मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार –पण्डित अच्युतानन्द झा, बृहत्संहिता(२०११) वास्तुविद्याध्यायः श्लो ११९ , चौखंभा विद्या भवन,वाराणसी।

(च) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) दकार्गलं श्लो०११६ , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

(छ) मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००९) वास्तुप्रकरण श्लो० 20, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

नोट -अन्य संदर्भो का उद्धरण प्रत्येक संदर्भ के पृष्ठ पर है।

२.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

भारतीय वास्तु शास्त्र – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

विश्वकर्मा प्रकाश – अभय कात्यायन

मयमतम्- श्रीभोजदेव

गृह वास्तु का शास्त्रीय विधान – डा देशबन्धु शास्त्री

२.९ निबन्धात्मक प्रश्न -

1. वास्तु शास्त्र के अनुसार जलाशय के महत्व को समझाइये |
2. भूमिगत जल निर्माण के विषय मे विस्तृत विवेचन करे |
3. कूप-चक्र पर टिप्पणी लिखे |
4. चित्र के माध्यम से जलसंग्रह के स्थान एवं पानी की टकी आदि के स्थान के विषय मे लिखे |
5. जलाशय मुहूर्त को लिखिये |

इकाई – ३ गृहदशा विचार

इकाई की संरचना-

३.१ प्रस्तावना -

ज्योतिष शास्त्र एवं वास्तु शास्त्र के महत्व एवं मुख्य सिद्धांतों से आप भलीभाँति परिचित है ऐसा मेरा विश्वास है। प्रस्तुत इकाई का शीर्षक 'गृहदशाविचार' है। आप ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दशा पद्धति से परिचित होंगे। हम सभी जानते है कि एक समय या काल या घटना की स्थिति विशेष को दशा कहा जाता है। दशा पद्धति के अनुसार ही ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार समय विशेष में विशेष फलप्रद होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में दशाये कई प्रकार की होती है जैसे - विशोंत्तरीय दशा, अष्टोंत्तरीय, योगिनी दशा, पिंड दशा इत्यादि। इसमें भी मुख्यतया विशोंत्तरीय दशा का प्रचलन एवं उपयोग अधिक किया जाता है। विशोंत्तरीय दशा के अंतर्गत महादशा, अंतर्दशा, प्रत्यंतरदशा, विदशा एवं उपदशा होती है। इनके अनुसार ही ग्रह दशा अनुसार सूक्ष्मतम काल का फलकथन किया जाता है। जिस मानव की दशा अंतर्दशा का विचार किया जाता है उसी प्रकार गृह की दशा का भी विचार किया जाता है। अर्थात गृह की दशा के अनुसार उस गृह का फल कैसा होगा इसका चिंतन प्रस्तुत इकाई में हम करेंगे। साथ ही साथ गृह दशा के आनयन की विधि तथा शुभ एवं अशुभ दशा के विषय में भी अध्ययन करेंगे। एवं गृह दशा के भेद कितने होते है तथा कौन सी गृह दशा का प्रयोगा अधिक किया जाता है इसका ज्ञान भी हम प्रस्तुत इकाई में ग्रहण करेंगे।

३.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ दशा के स्वरूप एवं दशा के भेद का ज्ञान प्राप्त होगा।
- ❖ ग्रहों के दशा वर्ष प्रमाण का ज्ञान होगा।
- ❖ गृह दशा के बारे में ज्ञान होगा।
- ❖ गृह दशा की साधन विधि से अवगत होंगे।
- ❖ गृह की दशा के अनुसार गृह के शुभाशुभ फल प्रक्रिया से अवगत होंगे।

३.३ गृहदशा विचार -

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार घटनाओं के काल को निर्धारित करने वाली पद्धति को दशा पद्धति कहा जाता है। दशा शब्द का अर्थ स्थिति, अवस्था, अथवा परिस्थिति है। दशा शब्द का वास्तविक अर्थ उस अच्छी, बुरी या सामान्य स्थिति या परिस्थिति से है जो जीवन के किसी भी विभाग से संबंध रखती हुई किसी समय विशेष में पाई जाये। किसी विशेष समय में क्या क्या और कैसी कैसी घटनाएँ

घट सकती है इस बात का निर्णय ज्योतिष शास्त्र में मौलिक रूप से कुंडली में ग्रहों की अच्छी एवं बुरी स्थिति पर निर्भर करता है। क्योंकि जन्मकालीन ग्रह स्थिति के अनुसार भविष्य में उनकी दशा के अनुसार ही ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। जन्मकालीन ग्रह स्थिति का अर्थ समझने का ज्ञान ही ज्योतिष शास्त्र में कुशलता का द्योतक होता है। इस ग्रह स्थिति के ज्ञान शैली में दशा पद्धति का विशेष महत्व है। जब किसी ग्रह की महादशा होती है तब मानो उस ग्रह का राज्य चल रहा होता है। जैसी ग्रह की प्रकृति या गुण होगा उसके दशा काल में व्यक्ति के जीवन में उस प्रकार की घटनाये घटती है।

३.३.०१ दशा स्वरूप एवं दशा के भेद

बृहत्पाराशर होराशास्त्र आदि ग्रन्थों में अनेकप्रकार की दशाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जैसे – 1 विशोंत्तरीय दशा 2- अष्टोंत्तरीय 3- योगिनी दशा 4- पिंड दशा 5- चक्र दशा 6- चरदशा 7- केंद्रदशा, 8-काल दशा इत्यादि हैं। इस प्रकार की कुल 38 दशाओं का विवरण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन दशा भेदों में विंशोत्तरीय दशा, अष्टोत्तरीय दशा, योगिनी दशा आदि का व्यवहार वर्तमान में अधिक किया जाता है। इसमें भी विशेषकर विंशोत्तरीय दशा का ही प्रचलन सामान्यतया अधिक होता है।

३.३.०२.विशोंत्तरी दशा विचार - विंशोत्तरीय दशा में आयु 120 वर्ष मानकर ग्रहों के काल का विभाजन किया जाता है| दशाएँ पाँच प्रकार की होती है – महादशा, अंतर दशा, प्रत्यंतर दशा, विदशा, और उपदशा। यहाँ हम महादशा के विषय में अध्ययन करेंगे। कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ कर के नव नव नक्षत्र की 3 आवृत्ति में गिनने पर क्रम से सूर्य, चंद्र ,मंगल , राहू, गुरु, शनि, बुध, केतू और शुक्र दशास्वामी होते है। इनके दशा वर्ष क्रमशः 6, 10, 7, 18, 16, 19, 17, 7, 20 होते है। इस प्रकार कुल 120 वर्ष महादशा में होते हैं। जातक के जन्म समय के काल में किस

नक्षत्र	कृत्तिका, उ॰ फा॰, उ॰ षा॰	रोहिणी, हस्त, श्रवण	मृग॰,चित्रा, धनिष्ठा	आर्द्रा, स्वाती , शत॰	पुन॰, विशा॰, पू॰ भा॰	पुष्य, अनु॰, उ॰भा॰	आश्लेषा, ज्येश्ठा, रेवती	मघा, मूल, अश्विनी	पू॰फा॰, पू॰ शा॰, भरणी
दशास्वामी	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहू	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशा वर्ष	6	10	7	18	16	19	17	7	20

अर्थात यदि किसी जातक का जन्म कृतिका नक्षत्र में हुआ है तो उस समय उसकी सूर्य की महादशा चल रही है इसके बाद अन्य ग्रहों की महादशा रहेगी। जन्म काल में भुक्त दशा एवं भोग्य दशा का ज्ञान भयात एवं भभोग के माध्यम से किया जाता है। अर्थात भुक्त दशा ज्ञान के लिए महादशा वर्ष में पलात्मक भयात का गुणा करके पलात्मक भभोग से भाग देने पर ग्रह की दशा के भुक्त वर्ष का मान आ जाता है । एवं भुक्त दशा मान को ग्रह के दशा वर्ष प्रमाण से घटाने पर ग्रह का भोग्य दशा प्रमाण आ जाता है।

सूत्र – महादशा का भुक्तमान = पलात्मक भयात x महादशा वर्ष प्रमाण(जन्म कालिक ग्रह के) / पलात्मक भभोग

महादशा का भोग्य मान = महादशा वर्ष प्रमाण(जन्म कालिक ग्रह के) – भुक्त दशा मान।

उदाहरण - दिनाङ्क- 21-07-2020 श्रावण शुक्ल प्रतिपदा समय सायं – 6-00 बजे सुर्योदय 5-19 प्रातः स्थान –वाराणसी ऋषिकेश पंचांग अनुसार -

३३	२८	१४	र	४४	२८	रा	११	५	आर्द्रा	४०	४२	रा	९	३५	व्याघात	४२	४८	रा	१०	२५	भ	१४	३४	श	४४	२८	ध्वांक्ष	१९	१४
३३	२६	३०	चं	४३	४	रा	१०	३३	पुनर्वसु	४१	११	रा	९	४७	हर्षण	३९	१३	रा	९	०	च	१३	४६	नाग	४३	४	धूम्र	२०	१५

दि.मा. घ.	प.	श्रीसंवत् २०७७ शकः १९४२ याम्यायनं सौम्यगोलः वर्षर्त्तुः।।																									योगाः	अं.
३३	२४	१	मं	४०	२६	रा	९	२९	पुष्य	४०	२८	रा	९	३०	वज्र	३४	४१	रा	७	११	किं	११	४५	बव	४०	२६	प्रवर्धमान	२१
३३	२१	२	बु	३६	४७	रा	८	३	श्लेषा	३८	४५	रा	८	५०	सिद्धि	२९	१८	दि	५	३	बा	८	३७	कौ	३६	४७	राक्षस	२२
३३	१९	३	गु	३२	१७	सा	६	१५	मघा	३६	११	रा	७	४८	व्यतिपात	२३	१६	दि	२	३८	तै	४	३३	गर	३२ ५१	१७ ४१	मुसल	२३
३३	१७	४	शु	२७	४	दि	४	११	पू.फा.	३२	५४	सा	६	३१	वरीयान	१६	३४	दि	११	५९	भ	२७	४	वव	५४	१२	सिद्धि	२४

इष्टकाल साधन –

जन्म समय = 18 -00

सूर्योदय – 5-19

इष्टकाल =12- 41 घण्टा / मि० = 31- 42 घटी /पल

वर्तमान नक्षत्र - पुष्य आज का सम्पूर्ण मान = 40-28 घटी / पल

गत नक्षत्र पुनर्वसु गत दिन पुनर्वसु का मान = 41-11 घटी / पल

अतः गत दिन पुष्य नक्षत्र का मान = 60 -00

- 41-11

वर्तमान नक्षत्र पुष्य का गत दिन मान = 18- 49

इष्टकाल = + 31- 42

भयात् = 50- 31

भभोग साधन

वर्तमान नक्षत्र का गत दिन मान = 18- 49

वर्तमान नक्षत्र - पुष्य आज का सम्पूर्ण मान = + 40-28 घटी /पल

भभोग 59- 17 घटी /पल

जन्म नक्षत्र – पुष्य अतः वर्तमान दशा शनि की है एवं शनि के दशा वर्ष = 19 वर्ष

भयात् = 50- 31 घटी पल = 3031पलात्मक भयात्

भभोग = 59- 17 घटी पल = 3557 पलात्मक भभोग

सूत्रानुसार- पलात्मक भयात् = 3031 X 19 = 57589 / 3557 पलात्मक भभोग

3557) 57589 (16 वर्ष

- 3557

= 22019

- 21342

= XX677

X 12

3557) 8124 (2 माह

- 7114

= 1010

X 30

3557) 30300 (8 दिन

-28456

X 1844

X 60

3557)110640 (31 घटी

- 10671

X X 3920

- 3557

363

अतः शनि की भोग्य दशा का मान =

		वर्ष - मास - दिन - घटी
शनि दशा वर्ष	=	19 - 00 - 00 - 00
शनि की भुक्त दशा का मान =	-	16 - 2 - 8 - 31
शनि की भोग्य दशा का मान	=	2- 09 - 17- 29

३.३.०३. गृहदशा- विंशोत्तरीयदशा -

ग्राम या नगर के जिस किसी भी भाग्य दिशा में निवास का फल दशा के माध्यम से भी ज्ञात किया जाता है इस दशा का ज्ञान निम्न प्रकार से किया जाता है यथा अकारादि जो वर्ग हैं उनके क्रम से 8, 5,6, 4, 7, 1, 3, 2 यह स्वर अंक होते हैं इसके पश्चात ग्राम, दिशा और निवास कर्ता के वर्गों के स्वर अंक को जोड़कर 9 का भाग देने पर जो शेष संख्या बचती है उसकी दशा क्रमशः एक से शेष तो सूर्य की दशा, दो शेष बचे तो चंद्र की, तीन शेष बचे तो भौम की, चार शेष बचे तो राहु की, 5 शेष बचे तो बृहस्पति की, छह से से बचे तो शनि की, 7 शेष बचे तो बुध की, 8 शेष बचे तो केतु की, तथा 0 शेष बचे तो शुक्र की दशा होती है। सभी ग्रहों के दशा वर्ष प्रमाण इस प्रकार हैं सूर्य के 6, चंद्र के 10, भौम के 7 राहु के 18, वृहस्पति के 16, शनि के 19, बुध के 17, केतु के 7 शुक्र के 20 वर्ष। इनमें आई हुई दशा से उत्तरोत्तर क्रम से दशा फल की कल्पना करनी चाहिए यथा सूर्य की दशा

में मानसिक उद्विग्नता, चंद्र की दशा में धन की पूर्णता, भौम दशा में भय से व्याकुलता, राहु की दशा में स्वास्थ्य हानि व पीड़ा, बृहस्पति की दशा में सुख , शनि की दशा में रोग, बुध की दशा में सुख, केतु की दशा में दुख, शुक्र की दशा में आनंद की प्राप्ति होती है अर्थात शुभ ग्रहों की दशा में शुभ फल एवं अशुभ ग्रहों की दशा में उस ग्राम में निवास करने पर अशुभ फल प्राप्त होता है – यथा –

गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात ॥
गृहपतेरभिधापुरदिङ्गिता नवहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥
अथाष्टवर्गाः क्रमतोऽष्टवाण तर्काब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विभिश्च ।
नृग्रामदिग्वर्णमिताडवयोगे सूर्याद्दशेशाः नवभिर्विभक्तात् ॥
सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दसौम्याश्च केतुभृर्गुजः क्रमेण ।
षड्दिङ्नगाधृत्यवनीश्वरान्क्चन्द्राघनास्ससप्तखास्तदब्दाः ॥
स्वेष्वेशु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं च दशाक्रमेण ।।[24]

यथा चक्र के माध्यम से-

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
वर्ग	अ वर्ग (अ, इ, उ, ऋ, ए , ऐ, ओ, औ, अं,अः)	क वर्ग क ,ख, ग, घ, ङ	च वर्ग च , छ , ज, झ , ञ	ट वर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण)	त वर्ग (त, थ, द, ध, न)	प वर्ग प, फ, ब, भ, म	य वर्ग य, र , ल, व	श वर्ग श , ष, स, ह
अङ्क	8	5	6	4	7	1	3	2

[24] बृहदवास्तुमाला, श्लोक सं .21-24

एवं उपर्युक्त चक्र के अनुसार दशा साधन के उपरांत दशा का फल भी इस प्रकार होता है जैसे सूर्य की दशा आए तो मानसिक उद्विग्नता, चन्द्र की दशा में धन प्राप्ति, मंगल की दशा में अग्नि से हानि, राहू की दशा में स्वास्थ्य पीड़ा, गुरु की दशा में सुख, शनि की दशा में रोग, बुध की दशा में सुख, केतू की दशा में दुःख, शुक्र की दशा में आनंद की प्राप्ति होती है। यथा बृहदवास्तु माला के अनुसार –

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो वह्न्यभिभूतो ज्वरपीडिताङ्गः।

सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखाढ्यो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ॥ [25]

यथा दशाफल विवरण तालिका के माध्यम से -

दशा क्रम, दशावर्ष एवं दशा फल तालिका

दशा क्रम	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहू	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशा वर्ष	6	10	7	18	16	19	17	7	20
दशा फल	उद्वेग	धनयुक्त	अग्नि भय	ज्वर पीडा	सुख	रोग	सुख	दुःख	आनन्द

उदाहरण – सूरत नगर में रोहित नामक व्यक्ति को नगर के ईशान कोण में गृह बनबाना है तो उस समय गृह की दशा का ज्ञान उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार हम इस प्रकार कर सकते है यथा –

सूरत (श वर्ग) का अंक = 2

रोहित (य वर्ग) का अंक = 3

ईशान कोण का अंक = 2

[25] बृहदवास्तुमाला, श्लोक सं .25

अतः 2+3+2 = 7 / 9 = लब्धि 0 एवं शेष 7 अतः उस समय बुध की दशा है जो कि शुभ दायक है जो कि 17 वर्ष तक रहेगी उसके बाद केतू की दशा रहेगी इसी क्रम में आगे भी फल को जानना चाहिए | अतःआगत दशा में मकान बनबाना एवं उसके बाद निवास करना शुभदायक रहेगा।

2- इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण के माध्यम से - देहरादून नगर में गणेश को नगर के उत्तर दिशा में गृह बनबाना है तो उस समय गृह की दशा का ज्ञान तथा उसका शुभाशुभत्व उरयुक्त सिद्धान्त के अनुसार निम्नवत कर सकते है –

देहरादून (त वर्ग) का अंक = 7

गणेश (क वर्ग) का अंक = 5

उत्तर दिशा का अंक = 3

अतः 7+5+3 = 15 / 9 = लब्धि 1 एवं शेष 6 अतः उस समय शनि की दशा है जो कि रोग कारक है जो कि 19 वर्ष तक रहेगी उसके बाद बुध की दशा रहेगी जिसका फल शुभ होता है। इसी क्रम में आगे भी फल को जानना चाहिए | अतःआगत दशा में मकान बनबाना रोगकारक एवं उसके बाद की दशा(बुध) शुभदायक रहेगी।

भवन की दशा की गणना कब से आरंभ करे – भवन की दशा का आरंभ कब से किया जाए इस विषय में ग्रंथों में ज्यादा प्रकाश नहीं डाला गया है एवं इस संदर्भ में मतान्तर भी प्राप्त होते हैं यथा –

1- कुछ आचार्यों के अनुसार भवन के शिलान्यास से भवन की दशा की गणना की जाती है।
2- अन्य कुछ आचार्यों का मत है कि भवन के पूर्ण निर्माण होने के पश्चात वास्तु शांति के अनंतर जब गृह में प्रवेश किया जाता हा तब से गृह की दशा की गणना की जानी चाहिए।
3- वास्तु शांति हो या नहीं हो लेकिन जब भवन का पूर्ण निर्माण हो जाए तब से गृह दशा की गणना होनी चाहिए।

उपर्युक्त तीनों सिद्धांतों में से अंतिम सिद्धान्त के अनुसार गृहदशा का निर्धारण किया जाना चाहिए।

अभ्यासप्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नो मे सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

1. विंशोत्तरीय दशा के अन्तर्गत 5 दशाये (महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर दशा, विदशा, तथा उपदशा) आती हैं।
2. विंशोत्तरीय दशा का वर्ष प्रमाण 108 वर्ष का होता है।
3. त वर्ग का स्वरांक 7 होता है।
4. उत्तर दिशा का स्वरांक 5 होता है।
5. गुरु ग्रह की दशा सुख कारक होती है।

३.०३.०४. अष्टोत्तरीदशा विचार - अष्टोत्तरी दशा एवं विंशोत्तरीय दशा में किसका प्रयोग फल कथन के लिए किया जाना चाहिए इसके बारे में हमारे शास्त्रों में प्रमाण प्राप्त होता है कि किसी जातक का जन्म यदि शुक्ल पक्ष में हो तो अष्टोत्तरी दशा से फल कहें और यदि किसी जातक का जन्म कृष्ण पक्ष में हो तो विंशोत्तरीय दशा से फल कहना चाहिए एवं कुछ आचार्यों का मत है कि कृष्ण पक्ष में दिन में तथा शुक्ल पक्ष में रात्रि में जन्म हो तो अष्टोत्तरी दशा से फल कहना चाहिए। अष्टोत्तरी दशा में कुल 108 वर्ष होते हैं तथा दशा का काल पूर्ण हो जाने पर पुनः प्रारंभ वाली दशा से इसका काल पुनः प्रारंभ हो जाता है। इस दशा में अभिजीत सहित 28 नक्षत्रों से दशा का ज्ञान किया जाता है तथा इसकी दशा केवल आठ ग्रहों की होती है, केतु ग्रह की दशा नहीं होती जबकि विंशोत्तरीय दशा में ऐसा नहीं होता है वहां 9 ग्रहों की दशा होती है। अष्टोत्तरी दशा का क्रम भी विंशोत्तरी दशा के क्रम से भिन्न होता है एवं इसका आनयन नक्षत्र के अनुसार पृथक पृथक होता है निम्न सारणी के माध्यम से हम अष्टोत्तरी दशा का ज्ञान समझ सकते हैं –

ग्रह दशा क्रम	दशा वर्ष	जन्म नक्षत्र	नक्षत्र संख्या
सूर्य	6	आर्द्रा- पुनर्वसु-पुष्य- आश्लेषा	4
चन्द्र	15	मघा- पूर्वा फाल्गुनी- उत्तराफाल्गुनी	3

मंगल	8	हस्त –चित्रा – स्वाती –विशाखा	4
बुध	17	अनुराधा- ज्येष्ठा –मूल	3
शनि	10	पूर्वाषाड़ा- उ षा- अभिजित- श्रवण	4
बृहस्पति	19	धनिष्ठा- शतभिषा- पूर्वा भाद्रपद	3
राहू	12	उ भा – रेवती- अश्विनी-भरणी	4
शुक्र	21	कृत्तिका –रोहिणी – मृगशिरा	3

३.३.०५. गृहदशा- अष्टोत्तरीयदशा – गृह की अष्टोत्तरीय दशा की गणना या साधन के लिए भी ऊपर दिये गए चक्र और सूत्र का उपयोग किया जाता है। अर्थात ग्राम या नगर के वर्ग का स्वरांक, दिशा के वर्ग का स्वरांक एवं निवासकर्ता के नाम के वर्ग का स्वरांक का योग करके उसमें 8 से भाग देने पर जो शेष बचे तो निम्नलिखित अनुसार अष्टोत्तरीय दशा के समझना चाहिए यथा –

1 शेष बचे तो सूर्य की दशा = 6 वर्ष

2 शेष बचे तो चन्द्र की दशा = 15 वर्ष

3 शेष बचे तो मंगल की दशा = 8 वर्ष

4 शेष बचे तो बुध की दशा = 17 वर्ष

5 शेष बचे तो शनि की दशा = 10 वर्ष

6 शेष बचे तो गुरु की दशा = 19 वर्ष

7 शेष बचे तो राहू की दशा = 12 वर्ष

0 शेष बचे तो शुक्र की दशा = 21 वर्ष

उपर्युक्त दशा फल का विचार ग्रहों के अनुसार जानना चाहिए अर्थात शुभ ग्रहों की दशा रहने पर शुभ फल एवं पापग्रहों की दशा अशुभफल देने वाली होती है। यथा वास्तुरत्नाकर में कहा गया है कि –

गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात ॥

गृहपतेरभिधापुरदिङ्किता वसुहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥

रविनिशाकरमङ्गलचन्द्रजा: शनिबृहस्पतिराहुकविग्रहाः ॥[26]

उदाहरण - देहरादून नगर में गणेश को नगर के उत्तर दिशा में गृह बनबाना है तो उस समय गृह की अष्टोत्तरीय दशा का ज्ञान तथा उसका शुभाशुभत्व उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार निम्नवत कर सकते है –

देहरादून (त वर्ग) का अंक = 7

गणेश (क वर्ग) का अंक = 5

उत्तर दिशा का अंक = 3

अतः 7+5+3 = 15 / 8 = लब्धि 1 एवं शेष 7 अतः उस समय राहू की दशा है जो कि अशुभ कारक है जो कि 12 वर्ष तक रहेगी उसके बाद शुक्र की दशा रहेगी जिसका फल शुभ होता है। इसी क्रम में आगे भी फल को जानना चाहिए | अतः आगत दशा में मकान बनबाना अशुभ कारक एवं उसके बाद की दशा (शुक्र) शुभदायक रहेगी।

अभ्यासप्रश्न – 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1- अष्टोत्तरीय दशा का वर्ष प्रमाण .... होता है।
2- अष्टोत्तरीय दशा का आरंभ .... नक्षत्र के क्रम से होता है।
3- अष्टोत्तरीय दशा में शनि का दशा वर्ष प्रमाण .... होता है।
4- अष्टोत्तरीय दशा में कुल ....ग्रहों की दशा होती है।
5- गृह दशा में राहू की दशा का फल .... होता है।

३.४ सारांश -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत हमने जाना कि दशा क्या होती है एवं इसके प्रमुख भेद कौन कौन से होते है तथा इनमे से मुख्य रूप से विंशोंत्तरीय दशा एवं अष्टोत्तरीय दशा का प्रयोग अधिक किया जाता है । उसमें भी मुख्य रूप से विंशोंत्तरीय दशा का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है । विंशोंत्तरीय दशा का वर्ष प्रमाण १२० वर्ष तथा अष्टोत्तरीय दशा का वर्ष प्रमाण १०८ वर्ष का होता है । नक्षत्र के अनुसार भी दोनों दशाओं का आनयन भिन्न भिन्न नक्षत्र से होता है जैसे विंशोंत्तरीय दशा

[26] वास्तुरत्नाकर श्लोक संख्या 41

का आरंभ कृत्तिका नक्षत्र से गणना करके तथा अष्टोत्तरीय दशा की गणना आर्द्रा नक्षत्र से की जाती है। गृह दशा का विशोंत्तरीय दशा के अनुसार आनयन ग्राम या नगर के वर्ग का स्वरांक, दिशा के वर्ग का स्वरांक एवं निवासकर्ता के नाम के वर्ग का स्वरांक का योग करके उसमें ९ से भाग देने से शेष के अनुसार किया जाता है तथा अष्टोत्तरीय दशा के अनुसार गृह दशा का आनयन ग्राम या नगर के वर्ग का स्वरांक, दिशा के वर्ग का स्वरांक एवं निवासकर्ता के नाम के वर्ग का स्वरांक का योग करके उसमें ८ से भाग देने से शेष के अनुसार किया जाता है। गृहा दशा का आरंभ सामान्यतया गृह निर्माण के अनंतर ही किया जाना चाहिए। साथ ही साथ प्रस्तुत इकाई में गृह की दशा के शुभाशुभ फल विचार की भी हमने जाना अर्थात गृहा पर जिस प्रकार के ग्रह की दशा होगी उस समय उस ग्रह में वास का फल भी कुछ उस प्रकार ही होगा।

३.५ पारिभाषिक शब्दावली

विशोंत्तरीय दशा – दशा भेद के अंतर्गत एक दशा जो १२० वर्ष प्रमाण की होती है। एवं वर्तमान में ग्रहदशा में सबसे ज्यादा उपयोग इसी दशा का होता है।

अष्टोत्तरीय दशा - दशा भेद के अंतर्गत एक दशा जो १०८ वर्ष प्रमाण की होती है। इसमें ८ ग्रहों की दशा होती है केतू की दशा नहीं होती है।

गृह दशा – भवन की दशा या भवन के निर्माण काल से अग्रिम वर्षों तक किन किन ग्रहों की दशा उस गृह पर रहेगी जिसके कारण उस गृह में निवास का फल का विचार किया जाता है।

३.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1-

1- सत्य , 2 –असत्य, 3- सत्य, 4- असत्य, 5- सत्य।

अभ्यास -2

1- 108 वर्ष , 2- आर्द्रा , 3- 10 वर्ष , 4 –8 ग्रहों की , 5 – अशुभ।

३.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) गणनाविचार श्लो ८२-८६ , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2- मूल लेखक – श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद , वास्तुरत्नाकर (द्वादश संस्करण) (२०१४) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।

3- मूल लेखक – सत्यदेव शर्मा , बृहद भारतीय कुंडली विज्ञान (नूतन संस्करण २००२ ,जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।

नोट -अन्य संदर्भो का उद्धरण प्रत्येक संदर्भ के पृष्ठ पर है |

३.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

१- बृहत्पाराशरहोराशास्त्र – पाराशर

२- वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

३- वास्तु रत्नावली –श्री जीव नाथ दैवज्ञ

४- विश्वकर्म प्रकाश – विश्वकर्मा

३.९ निबन्धात्मक प्रश्न

१- दशा का स्वरूप एवं भेद के बारे में लिखिए।

२- ज्योतिष शास्त्रानुसार विशोंत्तरीय दशा के बारे में लिखिए।

३- गृह दशा पर टिप्पणी लिखिए।

४- अष्टोत्तरीय दशा को स्पष्ट कीजिये।

५- प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई – ४ गृहदोष विचार

इकाई की संरचना-

४.१ प्रस्तावना

४.२ उद्देश्य

४.३ गृहदोष विचार

४.३.१- भूमि के दोष

1- प्लवत्व दोष

2- वीथि के अनुसार भूमि के दोष

3- पृष्ठ भाग के अनुसार त्याज्य भूमि

4- भूमि के आकार संबंधि दोष

5- शल्य दोष

४.३.२-मर्म वेध दोष

४.३.३-मुख्य द्वार संबंधि दोष

४.३.४ द्वार वेध दोष

४.३.५ विभिन्न दिशाओं के दोष

४.३.६ वृक्ष संबंधि दोष

४.३.७ गृह निर्माण प्रक्रिया में मुहूर्त संबंधि दोष

४.४ सारांश

४.५ पारिभाषिक शब्दाबली

४.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

४.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

४.८ सहायक पाठ्यसामग्री

४.९ निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना -

आप वास्तु शास्त्र के मुख्य सिद्धांतों से परिचित होंगे ऐसा मेरा विश्वास है। प्रस्तुत इकाई का शीर्षक "गृहदोष विचार" है। हम सभी जानते है कि हमारे शास्त्रों में जो सिद्धान्त या नियम प्रतिपादित किए जाते हैं वे पुनतः वैज्ञानिक होते हैं एवं उनके अनुसार किया गया कार्य सुख -समृद्धि दायक, शान्ति दायक एवं शुभ कारक होते हैं। एवं उन नियमों के विरुद्ध किया गया कार्य दोषकारक होते हैं। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से भी हम वास्तु शास्त्र के अनुसार जो गृह के मुख्य दोष होते हैं उनका विचार करेंगे। जैसे भूमि के जो शुभ लक्षण या सिद्धान्त बताए गए है उनके विपरीत जो नियम होते है वे दोष कारक होते है जैसे भूमि के सिद्धान्त में भूमि का प्लवत्व (ढलान) पूर्व उत्तर एवं इशान दिशा में शुभकारक माना जाता है इसके विपरीत यदि भूमि का प्लवत्व यदि दक्षिण नैऋत्य या पश्चिम हो तो वह दोष कारक होता है। इसी प्रकार वास्तु शास्त्र में कई दोष बताए गए हैं जिनका अध्ययान हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

४.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु शास्त्र के मुख्य गृहदोष से अवगत हो पाएंगे।
- भूमि के प्रमुख दोष से परिचित हो पाएंगे।
- कौन सा वृक्ष किस दिशा में दोष कारक होता है इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- मुख्य द्वार एवं द्वार वेध तथा मर्म वेध के विषय में जानकारी प्रपट करेंगे।
- दिशाओं के विभिन दोष एवं मुहूर्त संबन्धि दोषों से अवगत हो पाएंगे।

४.३ गृह दोष विचार

४.३.१- भूमि के दोष –

गृह दोष विचार क्रम में भवन निर्माण हेतु भूमि की ही आवश्यकता होती है। यदि भूमि दोष कारक

होगी तो निश्चित रूप से उस प बनने वाला भवन भी दोष कारक होगा। वास्तु शास्त्र में भूमि के शुभ और अशुभ या दोष के ज्ञान के लिए विभिन्न सिद्धान्त बताए गये हैं उनका अध्ययन हम प्रस्तुत इकाई के माध्यम
से करेंगे।

1- प्लवत्व दोष – गृह दोष विचार के अंतर्गत भूमि के प्ल्वत्व या ढलान के अनुसार भूमि का शुभाशुभत्व या दोष आदि विचार किया जाता है। अर्थात् भूमि का ढलान किस दिशा उत्तम माना गया है एवं किस दिशा में दोष कारक माना गया है, इसका विचार वास्तु शास्त्र में बड़े ही उत्तम तरीके से किया गया है। सामान्यतः आठों दिशाओं (चार मुख्य दिशा एवं चार विदिशा) में भूमि का प्लवत्व या ढलान का शुभाशुभ फल क्रमश: इस प्रकार है- पूर्व दिशा की ओर यदि भूमि का ढलान हो तो वैसी भूमि अत्यंत शुभ होती है जो कि धन-दायक होती है, यदि भूखंड या प्लाट या भूमि का ढलान अग्नि कोण में तो वैसी भूमि का फल अच्छा नहीं होता है उसमें दाह इत्यादि की संभावना रहती है दक्षिण दिशा में यदि भूमि का प्लवत्व हो तो मृत्यु, नैऋत्य कोण में धन का नाश, पश्चिम दिशा में पुत्र की हानि, वायव्य कोण में यदि भूमि का ढलान हो तो परदेश में निवास, उत्तर दिशा में यदि प्लवत्व हो तो धन का आगम एवं ईशान कोण में यदि ढलान हो तो विद्या का लाभ होता है यदि भूखंड के मध्य में गड्ढा हो या ढलान हो तो वैसी भूमि भी कष्टदायक होती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि केवल पूर्व ईशान एवं उत्तर दिशा में भूमि का ढलान शुभ दायक होता है तथा अन्य दिशाओं में यदि भूमि का ढलान हो तो वह दोषकारक या अशुभ फलदायक होता है जब भी भूखंड का चयन करना हो तो उसमें यह निश्चित करना होगा कि भूमि का ढलान उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में हो। यथा –

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयं। प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च॥
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही। मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवततपरा॥[27]

[27] बृहदवास्तुमाला श्लोक 35-36

इसी तरह भूमि का दिशा एवं कोणों के मध्य भाग में भी प्लवत्व या भूखण्ड का भाग उठा हुआ या ऊंचा रहता है वैसे भूखण्ड की संज्ञा तथा उसका शुभ एवं अशुभ फल भी वास्तु शास्त्र में बताया गया है इसके अनुसार भूखण्ड के दोष की ज्ञान करना चाहिये यथा-[28]

क्रम संख्या	वास्तु संज्ञा	प्लवत्व (ढलान)	उन्नति (ऊँचा)	फल (प्रभाव)
01	पितामह वास्तु	पश्चिम एवं वायव्य के मध्य प्लवत्व या ढलान	पूर्व और आग्नेय के मध्य का भाग ऊँचा	शुभ भूखण्ड
02	सुपथ	पश्चिम –वायव्य	दक्षिण –आग्नेय	प्रशस्त (शुभ)

[28] वृहदवास्तुमाला श्लोक 46-64

03	दीर्घायु	उत्तर- ईशान	दक्षिण –नैऋत्य	कुल वृद्धि
04	पुण्यक	पूर्व –ईशान	पश्चिम –नैऋत्य	शुभ
05	**अपथ**	**पूर्व –आग्नेय**	**पश्चिम –वायव्य**	**शत्रुता ,कलह**
06	**रोगकृत्**	**दक्षिण –आग्नेय**	**उत्तर –वायव्य**	**रोग**
07	**अर्गल**	**दक्षिण –नैऋत्य**	**उत्तर –ईशान**	**महापाप (अशुभ)**
08	**श्मशान**	**पश्चिम –नैऋत्य**	**ईशान –पूर्व**	**कुलनाशक**
09	**शोक वास्तु**	**आग्नेय**	**नैऋत्य, ईशान, वायव्य कोण मे ऊची**	**संम्पत्ति नाशक**
10	**श्वमुख वास्तु**	**नैऋत्य**	**ईशान, आग्नेय , पश्चिम**	**दरिद्र**
11	ब्रह्मघ्न	पूर्व –वायव्य	नैऋत्य, आग्नेय, ईशान	कृषि योग्य भूमि, निवास हेतु अशुभ
12	स्थावर	नैऋत्य, ईशान, वायव्य	आग्नेय	शुभ
13	स्थण्डिल	आग्नेय ,वायव्य ,ईशान	नैऋत्य	शुभ
14	**शाण्डुल**	**आग्नेय ,नैऋत्य ,वायव्य**	**ईशान**	**अशुभ (निवास)**
15	सुस्थान वास्तु	वायव्य	आग्नेय ,नैऋत्य, ईशान	ब्राह्मणो के लिये शुभ
16	सुतल वास्तु	पूर्व	नैऋत्य ,वायव्य , एवं पश्चिम	क्षत्रियो के लिये शुभ
17	चर वास्तु	दक्षिण	उत्तर ,ईशान , वायव्य	वैश्यो के लिये शुभ
18	श्व - मुख	पश्चिम	ईशान, पूर्व ,आग्नेय	शूद्रो के लिये शुभ

2- वीथि के अनुसार भूमि के दोष - भूमि के दोष के अंतर्गत भूमि के प्लवत्व एवं उन्नति (ऊँची) अर्थात् दिशा विशेष में ढलान एवं दिशा विशेष का भाग या खण्ड भूमि का उठा हुआ या ऊँचा हो तो उसकी विशेष

संज्ञा -वीथि संज्ञा वास्तु शास्त्र में बतायी गयी है एवं एवं इसके अनुसार किस दिशा विशेष में भूमि का ढलान एवं एक दिशा विशेष में भूमि का उठा होना शुभ फल दायक एवं दोषकारक माना गया है इसका विवरण हम निम्न तालिका के माध्यम से समझ सकते है। यथा –[29]

वीथि संज्ञा	**प्लवत्व (ढलान) (दिशा)**	**उन्नति (ऊँची भूमि/भाग) दिशा**	**फल**
गोवीथि	पूर्व	पश्चिम	धनदायक
जलवीथि	**पश्चिम**	**पूर्व**	**अर्थ नाश**
यमवीथि	**दक्षिण**	**उत्तर**	**मृत्यु दायक**
गजवीथि	उत्तर	दक्षिण	धन दायक
भूतवीथि	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	धनहानि
नागवीथि	**वायव्य**	**अग्नि (आग्नेय कोण)**	**परदेश वास**
वैश्वानरी	**अग्निकोण**	**वायव्य**	**दाह**
धनवीथि	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	विद्या लाभ

3- पृष्ठ भाग के अनुसार त्याज्य भूमि - वास्तु शास्त्र में भूमि के दोष या शुभता का ज्ञान भूमि के पृष्ठ के अनुसार भी किया जाता है अर्थात् भूमि का जो पृष्ठीय भाग होता है वह दिशा विशेष में ऊंचा नीचा होने के कारण उसकी विभिन्न प्रकार की संज्ञा की जाती है एवं उसके अनुसार उसका फल कथन भी किया जाता है। जैसे चार प्रकार से पृष्ठ के अनुसार भूमि का वर्गीकरण किया गया है। यथा –

1. गजपृष्ठभूमि 2. कूर्मपृष्ठ भूमि 3. दैत्य पृष्ठभूमि 4. नागपृष्ठभूमि

1. गजपृष्ठभूमि- ऐसी भूमि जो दक्षिण पश्चिम नैऋत्य एवं वायव्य कोण में ऊंचे आकार की हो अर्थात् इन दिशाओं में भूमि का भाग ऊँचा हो तो वैसी भूमि को गजपृष्ठभूमि कहते हैं। गजपृष्ठभूमि पर निवास करने से

[29] वृहदवास्तुमाला श्लोक 41-45

लक्ष्मी, धन तथा आयु की वृद्धि होती है अर्थात् गजपृष्ठभूमि शास्त्रों में अत्यंत शुभ मानी गई है ऐसी भूमि पर गृह निर्माण प्रशस्त माना गया है।

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके। एभिरुच्चा यदाभूमिर्गजपृष्ठाऽभिधीयते ॥

गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः। आयुवृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः ॥[30]

2. कूर्मपृष्ठ भूमि - कूर्मपृष्ठभूमि उसे कहते हैं जो मध्य भाग में ऊंची हो और चारों दिशाओं में नीची हो अर्थात् भूखंड का बीच का हिस्सा उठा हुआ हो और बाकी सभी हिस्से नीचे हो। कूर्मपृष्ठभूमि पर निवास करने से प्रतिदिन उत्साह एवं धन-धान्य की वृद्धि होती है अर्थात् कूर्मपृष्ठभूमि भी शास्त्रों में शुभ मानी गई है।

मध्येत्युच्च भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्। कूर्मपृष्ठा भवेद् भूमिस्तत्र वासौ विधीयते ॥

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः। धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम्॥[31]

3. दैत्य पृष्ठभूमि - ऐसी भूमि जो पूर्व, ईशान तथा आग्नेय कोण में ऊंची और पश्चिम में नीची भूमि हो वैसी भूमि को दैत्य पृष्ठभूमि कहते हैं। दैत्यपृष्ठ भूमि पर भवन निर्माण करने से गृह में लक्ष्मी कभी प्रवेश नहीं करती और धन, पुत्र, पशुओं का भी विनाश होता है। अतः दैत्य पृष्ठभूमि निंदित भूमि मानी जाती है |

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत्। पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोभिधीयते ॥

दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे। धनपुत्रपशुनां च हानिरेव न संशयः ॥[32]

4. नागपृष्ठभूमि - पश्चिम की ओर लंबी दक्षिण तथा पश्चिम में ऊंची भूमि को नागपृष्ठभूमि कहते हैं। नागपृष्ठभूमि में निवास करने से मन का उच्चाटन होता है अर्थात् मन में शांति नहीं रहती है। नाग पृष्ठभूमि पर निवास करने से गृह स्वामी की मृत्यु, स्त्री हानि, पुत्र नाश और शत्रुओं का भय बना रहता है । नागपृष्ठभूमि भी निन्दित भूमि मानी जाती है |

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः। नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ॥

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्यरेव न संशयः। पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥[33]

---

[30] बृहदवास्तुमाला श्लोक 82-83

[31] बृहदवास्तुमाला श्लोक 84-85

[32] बृहदवास्तुमाला श्लोक 86-87

[33] बृहदवास्तुमाला श्लोक 88-89

4- भूमि के आकार संबंधि दोष - वास्तु शास्त्र में भूमि के दोष का विचार उसके आकार के कारण भी किया जाता है। निम्नलिखित आकार के भूखंड दोष कारक माने जाते हैं।

1-चक्राकार भूमि – वह भूमि जो चक्र के आकार की हो अर्थात बहुत सी भुजाए दिखती हो गोलाई लिए हुये हो चक्राकार भूमि कहलाती है। यह भूमि अशुभ भूमि मानी गई है।
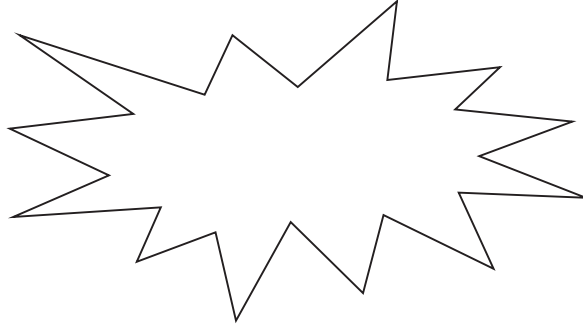
2- विषमाकार भूमि – भूमि का आकार विषम हो अर्थात समान नही हो विषमाकार भूमि कहलाती है। यह भूमि भी अशुभ होती है।
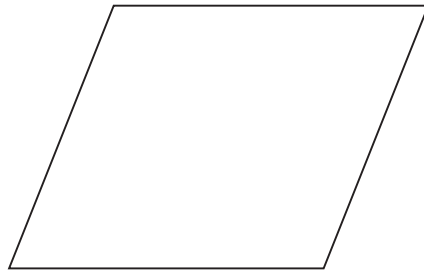
3-त्रिकोणाकार भूमि – त्रिभुज के आकार की भूमि त्रिकोणाकार भूमि कहलाती है। यह भूमि भी निंदित भूमि मानी जाती है।
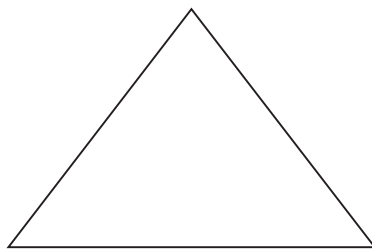
4-शकटाकार भूमि – गाड़ी की तरह भूमि को शकटाकर भूमि कहा जाता है यह भी अशभू भूमि है।
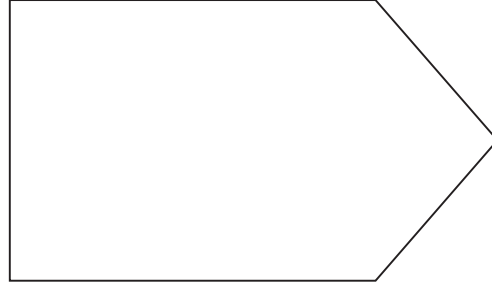
5- दण्डाकार भूमि – दंड के आकार की भूमि । यह भूखंड भी निंदित माना जाता है।

6- **सूपाकारभूमि** – सूपे के आकार के समान दिखाई देने वाला भूखंड सूपाकार भूखंड माना जाता है ऐसा भूखंड भी अशुभ माना गया है ।
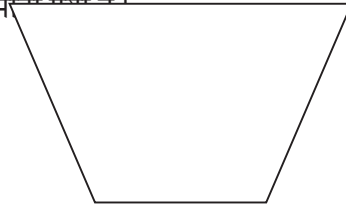
7-धनुषाकार भूमि – धनुष के आकार की तरह आकृति वाली भूमि धनुषाकार भूमि कहलाती है निवास हेतु यह भी अशुभ मानी जाती है ।

7- मृदंगाकार भूमि- मृदंगाकार भूमि भी वास्तु शास्त्र में निंदित भूमि मानी जाती है।
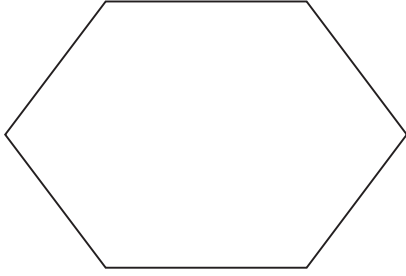
9- व्यजनाकार भूमि - व्यजनाकार भूमि अशुभ फल दायक होती है।
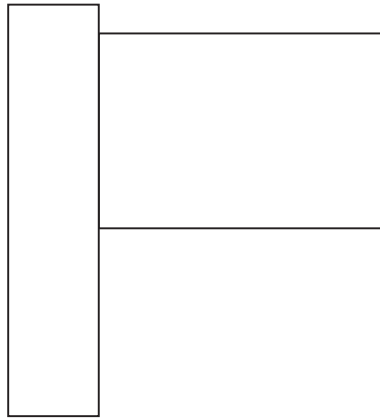
सामान्य से भूखण्ड का विस्तार यदि ईशानकोण-उत्तर या पूर्व दिशा में हो तो वह भूखण्ड शुभ एवं भाग्यप्रद होता है। यथा -
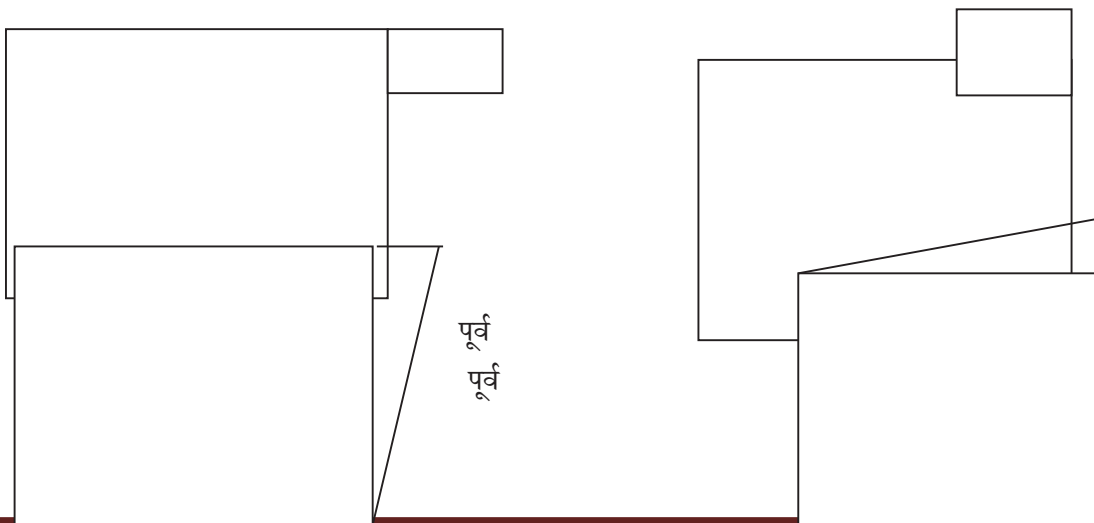
इसी प्रकार यदि भूखण्ड का विस्तार यदि नैऋत्य, वायव्य, या आग्नय कोण में हो तो वैसे भूखंड दोष कारक माने जाते हैं जैसे -

नोट दिशा ज्ञान - उत्तर

पूर्व

दक्षिण
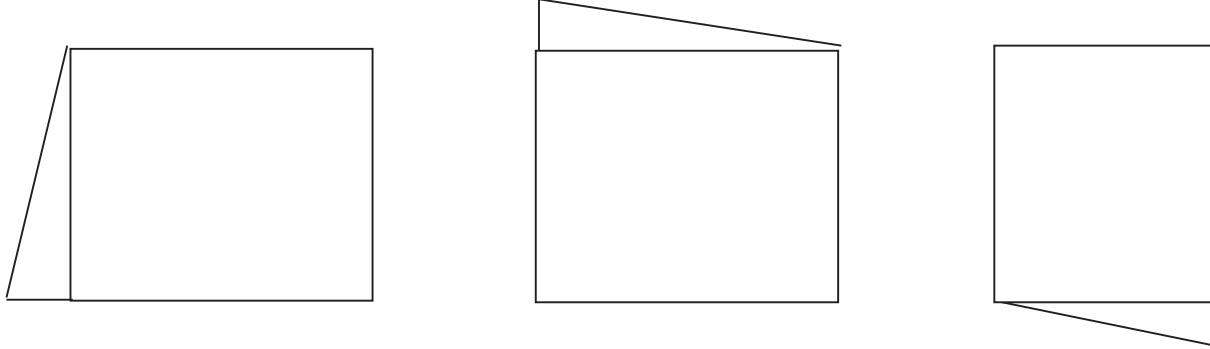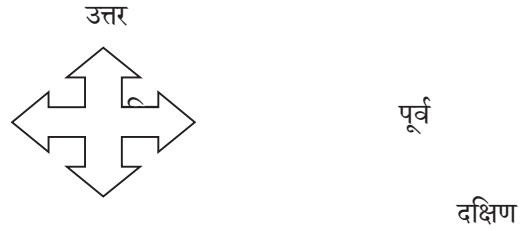
5- शल्य दोष - शल्य युक्त भूमि अर्थात हड्डियों से युक्त भूमि दीमक इत्यादि से युक्त भूमि, ऊंची नीची भूमि अशुभ भूमि हैं अर्थात इस प्रकार की भूमियों में भवन निर्माण नहीं करना चाहिए यह भूमि आयु एवं धन का नाश कर आती है। यथा –

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा। दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ॥[34]

उपर्युक्त भूमि के अनुसार उनका फल भी पृथक-पृथक बताया गया है जैसे फटी हुई भूमि यदि हो तो उससे मरण, ऊषर (अनुपजाउ भूमि) भूमि से धन नाश, शल्य युक्त या हड्डी युक्त भूमि से क्लेश, ऊंची नीची भूमि से शत्रु वृद्धि, शमशान जैसी भूमि से भय, दीमक इत्यादि से व्याप्त भूमि में विपत्ति, गड्ढों वाली भूमि से विनाश और कूर्माकार अर्थात जो बीच में उठी हो वैसी भूमि से धन नाश होता है|

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी। सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥

[34] बृहदवास्तुमाला श्लोक 79

चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत्। गर्तायांतु विनाशः स्यात् कुर्माकारे धनक्षयः ॥[35]

इस प्रकार भूमि में भवन निर्माण से पूर्वशल्य शोधन अवश्य करना चाहिए जिससे वह भूमि शल्य दोष से मुक्त हो जाए एवं वह शुभ फल दायक हो।

४.३.२-मर्म वेध दोष – वास्तु पुरुष के मर्म स्थान सिर , मुख , हृदय , दोनों स्तन, और लिंग ये मर्म स्थान है तथा पद विन्यास के अनुसार रोग से लेकर अनिल तक , पिता से शिखी तक , वितथ से शोष तक ,मुख्य से भ्रूश तक , जयंत से भृंगराज तक , और अदिति से सुग्रीव तक विस्तृत सूत्रों का जो नौ स्थानों में स्पर्श होता है वह वे स्पर्श स्थान वास्तु पुरुष के अति मर्म स्थान होते हैं (नीचे एकाशीति पद वास्तु चक्र दिया हुआ है उसमे पद विन्यास के अनुसार समझ सकते हैं) । ये नौ अति मर्म स्थान ब्रह्म स्थान में आते हैं। इन मर्म स्थानों में कोई भी निर्माण कार्य नहीं करना चाहिए अर्थात पिलर आदि इन मर्म स्थानों में न आए। ब्रह्मस्थल हमेशा रिक्त रहना चाहिए। यही मर्म वेध दोष कहलाता है। अत एव यथा संभव इन मर्म स्थानों में निर्माणकार्य से बचना चाहिए।

अभ्यासप्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नो मे सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

6. भूमि का प्लवत्व ईशान कोण में शुभ होता है।
7. भूमि का विस्तार आग्नेय कोण में शुभ माना जाता है ।
8. शकटाकर भूमि शुभ मानी जाती है।
9. गजपृष्ठ भूमि दोष कारक मानी जाती है।
10. वास्तु पुरुष के हृदय को भी मर्म स्थान माना जाता है |

४.३.३-मुख्य द्वार संबंधि दोष –

भवन में मुख्य द्वार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है इसके लिए वास्तु पद विन्यास के अनुसार प्रत्येक दिशा के भवन के लिए कुछ निश्चित भाग में मुख्य द्वार बनाना चाहिए अन्य पदों में बनाया गया द्वार दोषकरक होता है यथा एलाशीति पद विन्यास के अनुसार मुख्य द्वार के लिए शुभ स्थान। जो गाहे है वह शुभ है आँय अशुभ स्थान या दोष कारक स्थान होते हैं।

[35] बृहदवास्तुमाला श्लोक 80-81

एकाशीति-पदवास्तुविन्यास

वायव्य **उत्तर**

पश्चिम

<table>
<tr><td>रोग</td><td>नाग</td><td rowspan="2">मुख्य</td><td>भल्लाट</td><td>सोम</td><td>भुजग</td><td rowspan="2">अदिति</td><td>दिति</td><td>अग्नि</td></tr>
<tr><td>पापयक्ष्मा</td><td>रुद्र</td><td colspan="3" rowspan="2">पृथ्वीधर</td><td>आपवत्स</td><td>पर्जन्य</td></tr>
<tr><td colspan="2">शोष</td><td>राजयक्ष्मा</td><td></td><td colspan="2">जयन्त</td></tr>
<tr><td>असुर</td><td colspan="2" rowspan="3">मित्र</td><td colspan="3" rowspan="3">ब्रह्मा</td><td colspan="2" rowspan="3">अर्यमा</td><td>इन्द्र</td></tr>
<tr><td>वरुण</td><td>रवि</td></tr>
<tr><td>पुष्पदन्त</td><td>सत्य</td></tr>
<tr><td colspan="2">सुग्रीव</td><td>जय</td><td colspan="3" rowspan="2">विवस्वान्</td><td>सवितृ</td><td colspan="2">भृश</td></tr>
<tr><td>दौवारिक</td><td></td><td rowspan="2">भृङ्गराज</td><td rowspan="2">वितथ</td><td>सावित्र</td><td>आकाश</td></tr>
<tr><td>पितृगण</td><td>मृग</td><td>गन्धर्व</td><td>यम</td><td>गृहक्षत</td><td>पूषा</td><td>अनिल</td></tr>
</table>

नैऋत्य **दक्षिण**

४.३.४ द्वार वेध दोष – वेध शब्द का शाब्दिक अर्थ रुकावट या किसी के मध्य में कोई वस्तु आ जाना वेध कहलाता है। यह वेध वास्तु दोष कारक होता है, जिसका फल गृहस्वामी या परिवार में रहने वाले अन्य सदस्यों को भी भोगना पड़ता है। कुछ द्वार वेध इस प्रकार से हैं –

1- मुख्य द्वार के सामने कोई भी बड़ा वृक्ष नहीं होना चाहिए इससे संतान पक्ष की हानि होती है।

2- मुख्य द्वार के बिल्कुल सामने गलीया रास्ता हो जिससे सीधे घर में प्रवेश होता है तो यह भी द्वार वेध

होता है इस प्रकार का द्वार वेध गृहस्वामी को मृत्यु अथवा कष्ट देता है।

3- मुख्य द्वार के सामने दलदल इत्यादि नहीं होना चाहिए यह धन धन का व्यय कराता है।

4- मुख्य द्वार के ठीक सामने कुआ नहीं होना चाहिए , इससे मिर्गी इत्यादि की बीमारी होने की संभावना रहती है।

5- मुख्य द्वार के ठीक सामने मंदिर भी नहीं होना चाहिए यह भी अशुभ कारक माना गया है।

6- हमेशा मुख्य द्वार वास्तु पद के कोण में नहीं बनाना चाहिए यह भी अशुभ कारक माना गया है।

7- मुख्य द्वार की ठीक सामने अपने मकान या दूसरे के मकान की सीढ़ियां हो तो भी यह वेध कारक माना गया है।

8- मुख्य द्वार बिल्कुल सीधा होना चाहिए आगे पीछे इस का झुकाव नहीं होना चाहिए यह भी एक प्रकार का वेद दोष माना जाता है।

४.३.५ विभिन्न दिशाओं के दोष - वास्तु शास्त्र के मुख्य सिद्धांत विषयों में दिशा विचार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि वास्तु शास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में भवन में बनाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कक्ष इत्यादि के लिए दिशा विशेष का निर्धारण किया गया है, यदि वह निर्माण दिशा विशेष के अनुसार नहीं किया जाए तो इससे वास्तु दोष उत्पन्न होता है। क्रमशः पूर्वादि 8 दिशाओं के दोष निम्न वत है -

1- पूर्व दिशा के दोष - पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र एवं सूर्य है। पूर्व दिशा से भवन में विभिन्न प्रकार के रोगों या कीटाणु नाशक पराबैंगनी किरणों का प्रवेश सीधा होता है अतः पूर्व मुखी द्वार एवं खिड़की, साथ ही साथ पूर्व दिशा में भवन का प्लवत्व (ढलान) एवं भवन का अधिकतम खुला भाग और नीचा निर्माण भाग वास्तु सम्मत माना जाता है। जबकि पूर्व दिशा में गृहस्वामी का शयनकक्ष, शौचालय, छत और तल का शेष घर से ऊंचा होना भवन की पूर्व दिशा में किया गया अधिकतम निर्माण वास्तु दोष माना जाता है।अतः इस प्रकार के दोष से बचना चाहिए

2- आग्नेय दिशा के दोष - पूर्व और दक्षिण के मध्य की दिशा आग्नेय विदिशा या आग्नेय कोण कहलाती है। इस दिशा के स्वामी गणेश एवं शुक्र है। यह अग्नि के लिए सर्वोत्तम स्थान है अतः रसोई कक्ष (किचन) के लिए यह अत्यंत उपयुक्त स्थान है। इसके साथ ही साथ विद्युत संबंधी जितने उपकरण होते हैं वह भी इसी दिशा में स्थापित करने चाहिए। आग्नेय दिशा में जल का संग्रह दोष कारक माना जाता है। इस दिशा में भवन का मुख्य द्वार भी वास्तु दोष का एक प्रमुख कारण है। नैऋत्य कोण की

अपेक्षा इसका ऊंचा होना भी दोष कारक माना जाता है, साथ ही साथ इस दिशा में दक्षिण की ओर या आग्नेय की ओर भवन का विस्तार होना भी वास्तु दोष कारक है।

3-दक्षिण दिशा के दोष - दक्षिण दिशा के स्वामी यम एवं ग्रह स्वामी मंगल है । भवन की इस दिशा में किया गया निर्माण कार्य पूर्व तथा उत्तर की तुलना में ऊंचा होना चाहिए। भवन की दक्षिणी दीवार ऊंची तथा भारी होना शुभ दायक माना गया है। इस दिशा में गृहस्वामी का शयनकक्ष अत्यंत उपयुक्त स्थान होता है।इस दिशा में कुआं और ट्यूबवेल या पूजा कक्ष एवं अध्ययन कक्ष या गड्ढा होना वास्तु दोष उत्पन्न करता है।

4-नैऋत्य दिशा के दोष - दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य की दिशा नैऋत्य दिशा कहलाती है। इसके स्वामी नैऋति एवं ग्रह स्वामी राहु है। यह दिशा भारी वस्तुओं के भंडारण हेतु उत्तम मानी जाती है। इस दिशा का तल और छत भवन के बाकी भागों से अधिक ऊंचे होने चाहिए। शयन कक्ष का निर्माण भी इस दिशा में उत्तम माना गया है। इस दिशा में ढलान रसोईघर, सेप्टिक टैंक, कुआ या किसी भी प्रकार का गड्ढा वास्तु दोष कारक माना जाता है।

5- पश्चिम दिशा के दोष - इस दिशा के स्वामी वरुण और ग्रह स्वामी शनि है। इस दिशा में सूर्य का प्रकाश न्यूनतम प्राप्त होना चाहिए अतः खिड़कियां यथासंभव नहीं होनी चाहिए। यह दिशा भोजन कक्ष के लिए उपयुक्त है। इस दिशा में भवन का ढलान होना, मुख्य द्वार होना, शयनकक्ष होना वास्तु दोष पैदा करता है।

6- वायव्य दिशा के दोष - दक्षिण एवं उत्तर के मध्य की दिशा वायव्य दिशा कहलाती है। इसके स्वामी वायु एवं ग्रह स्वामी चंद्रमा है। यह दिशा अतिथि कक्ष, सेप्टिक टैंक और पेड़ पौधों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस दिशा में अध्ययन कक्ष वास्तु दोष कारक है।

7-उत्तर दिशा के दोष - उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर और ग्रह स्वामी बुध है। इस दिशा में धन संग्रह, अध्ययन कक्ष, पूजा कक्ष, उत्तम माना गया है। इस दिशा में मुख्य द्वार, खिड़कियां इत्यादि शुभ मानी जाती है। इस दिशा में रसोईघर शौचालय होना या पुरानी भारी वस्तु होना वास्तु दोष कारक मानी जाती है।

8- ईशान दिशा के दोष - उत्तर एवं पूर्व के मध्य की दिशा ईशान दिशा कहलाती है। इसके स्वामी शिव और ग्रह स्वामी बृहस्पति हैं। इस दिशा में मुख्य द्वार खिड़कियां, खुलापन, ढलान, पूजाघर, ट्यूबवेल या जल इत्यादि की व्यवस्था होना अत्यंत शुभ माना जाता है।इस दिशा में शौचालय, पानी की ऊंची टंकी, ऊंची दीवार या इस दिशा का तल शेष भवन से ऊंचा होना वास्तु दोष कारक माना जाता है।

४.३.६ वृक्ष संबंधि दोष – भवन के किस भाग में कौन से वृक्ष दोष कारक होते हैं इसका चिंतन भी वास्तु शास्त्र में अत्यंत समीचीनतया किया गया है इसके अनुसार पूर्व में बरगद का वृक्ष वर्जित या अशुभ माना जाता है इसी प्रकार दक्षिण में पाकड़ का वृक्ष, तथा पश्चिम में पीपल का वृक्ष और उत्तर दिशा में गूलर का वृक्ष वर्जित है। यथा-

अश्वत्थः पूर्वतो धन्यो दक्षिणस्यामुदुम्बरः। न्यग्रोथ पश्चिमे श्रेष्ठः प्लक्षोऽप्युतरतः शुभः ॥
न्योग्रोधः पुवतो वर्ज्यो दक्षिणे प्लक्ष एव च। अश्वत्थः पश्चिमे भागे ह्युत्तरे चाप्युदुम्बरः ॥[36]

उपर्युक्त निषिद्ध दिशाओं में इन वृक्षों का जो फल प्राप्त होता है वह इस प्रकार है पश्चिम दिशा में स्थित पीपल के कारण अग्नि का भय, एवं दक्षिण दिशा में स्थित पाकड़ के वृक्ष से प्रमाद, पूर्व में स्थित बरगद के वृक्ष से शस्त्र भय, एवं उत्तर में स्थित गूलर के वृक्ष से उदर रोग होता है | अतः इन दिशाओं में उपर्युक्त निषिद्ध वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए उन वृक्षों को उनकी दिशा के अनुसार ही गृह के आस पास लगाना चाहिये। यथा –

अश्वत्थोऽ ग्निभयं कुर्यात् प्लक्षः कुर्यात् प्रमादकम्। न्यग्रोधः शस्त्रसंपातं कुक्षिरोगमुदुम्बरः ॥[37]

४.३.७ गृह निर्माण प्रक्रिया में मुहूर्त संम्बन्धि दोष – गृहारंभ तथा गृह पृवेश तथा अन्य गृह संबन्धि निर्माण कार्य शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए। क्योंकि हम सभी जानते हैं कि शुभ मुहूर्त में किया गया कार्य शुभ फलदायक होता है एवं अशुभ मुहूर्त में किया गया कार्य विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करता है। शास्त्रों में प्रत्येक कार्य के लिए शुभ मुहूर्त बताए हैं तथा कार्य विशेष के लिए निंदित समय भी बताया गया है अतः सर्वदा निंदित समय का त्याग करना चाहिए एवं शुभ काल का ग्रहण करना चाहिए। यथा उदाहरण स्वरूप गृह निर्माण हेतु –

1 – गृहारंभ हमेशा दिन में ही करना चाहिए।

2- चातुर्मास में गृहारंभ नहीं करना चाहिए।

3- भूमि शयन काल में भी गृहारंभ नहीं करना चाहिए।

4- गृहारंभ शुक्र एवं गुरु के अस्त रहते हुये नहीं करना चाहिए।

5- गृहारंभ के काल में गृहा स्वामी की राशि से चंद्रमा 4-8-12 वे स्थान में नही होना चाहिए।

6- गृहारंभ के समय शुभ ग्रह केंद्र तथा त्रिकोण स्थान में शुभदायक तथा पाप ग्रह त्रिषडाय स्थान में शुभ माने जाते हैं।

7- गृह प्रवेश में इत्यादि का विचार भी अवश्य करना चाहिए।

---

[36] वृहदवास्तुमाला श्लोक 71-72

[37] बृहदवास्तुमाला श्लोक 73

इस प्रकार गृहारंभ एवं गृह प्रवेश शुभ मुहूरता में ही करना चाहिए अन्यथा यह भी एक दोष माना जाता आ है।

अभ्यासप्रश्न – 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

8- पूर्व दिशा के .... इन पदों में मुख्य द्वार शुभ होता है। जयंत, इंद्र

9- मुख्य द्वार के सामने .... होने से संतान पक्ष की हानि होती है। बड़ा वृक्ष

10-जो भूमि पूर्व में नीचे तथा पश्चिम में ऊंची हो वैसी भूमि की संज्ञा .... होती है। गोवीथि

11-पूर्व दिशा में ....का वृक्ष दोष कारक होता है। बरगद

12-गुरु एवं शुक्र के .... रहये हुये गृहारंभ नहीं करना चाहिए।

४.४ सारांश -

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने जाना की गृह दोष मुख्य रूप से कौन कौन से होते हैं। सबसे पहले गृह निर्माण से पूर्व भूमि के ही विभिन्न प्रकार के दोष बताए गए है जैसे प्लवत्व दोष , भूमि के आकार जन्य दोष, विस्तार संबंधी दोष , शल्य दोष , दिशा के अनुसार अशुभ वृक्ष अर्थात किस दिशा में कौन सा वृक्ष दोष कारक होता है, मुख्य द्वार संबंधी दोष , द्वार वेध दोष ,मर्म वेध दोष, विभिन्न दिशाओं के दोष, मुहूर्तादि दोष। एवं इकाई अध्ययन के पश्चात यह भी जाना की जो सिद्धान्त या नियम शास्त्रों में बताए जाते हैं उनके विरुद्ध किया गया कोई भी कार्य सामन्य रूप से दोष कारक होता है। सामान्य रूप से तो कुछ कार्य दिशा विशेष में निषिद्ध बताए ही गए है यथा कभी भी ईशान कोण में शौचालय का निर्माण नहीं होना चाहिए यह प्रमुख दोष होता है। एवं कुछ सामान्य नियम होते है जिनके अनुसार दिशा विशेष का फल सामान्य रहता है अर्थात न ज्यादा शुभ कारक एवं न अधिक हानि कारक इस प्रकार के वचन के अनुसार हम गृह निर्माण कर सकते हैं परंतु जो बिल्कुल निषिद्ध नियम बताए गायें है उनके अनुसार निर्माण कभी भी नहीं करना चाहिए। अतः हमेशा गृह निर्माण वास्तु शास्त्र के नियमानुसार ही करना चाहिए जिससे अधिकाधिक शुभ फल की प्राप्ति हो सके।

४.५ पारिभाषिक शब्दाबली

प्लवत्व – स्थान विशेष का एक ओर नीचा होना। (ढलान)

शल्य – भूमि के अंदर विद्यमान अवशिष्ट (अशुभफल दायक) पदार्थ। (हड्डी)

वेध – किसी वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु के भीच में आमा या रुकावट पैदा करना।

मर्म स्थान – वास्तु पुरुष के कुछ स्थान जैसे सिर, मुख , हृदय , दोनों स्तन, और लिंग ये मर्म स्थान है।

पद वास्तु – वास्तु पुरुष मण्डल। वर्तमान में भवन की प्राक्कल्पना अर्थात वास्तु योजना वास्तु पद विन्यास है। इनके कई भेद होते हैं जैसे एकाशीति पद वास्तु , शतपद वास्तु , चतुषष्टि पद वास्तु इत्यादि।

४.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1-

2- सत्य , 2 –असत्य, 3- असत्य, 4- असत्य, 5- सत्य।

अभ्यास -2

1-जयंत एवं इंद्र , 2- बड़ा वृक्ष , 3- गोवीथि , 4 –बरगद , 5 – अस्त।

४.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

(ज) मूल लेखक – विश्वकर्मा , सम्पादक एवं टीकाकार –महर्षि अभय कात्यायन , विश्वकर्मप्रकाशः(२०१३), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(झ) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ञ) मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००९) वास्तुप्रकरण , चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी |

नोट -अन्य संदर्भो का उद्धरण प्रत्येक संदर्भ के पृष्ठ पर है |

४.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

मयमतम् – मयमुनि

बृहत्संहिता – वराहमिहिर

वास्तु शास्त्र – डा शालिनी खरे

वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

४.९ निबन्धात्मक प्रश्न

1- भूमि के प्रमुख दोष लिखिए।

2- मर्म वेध दोष के बारे में लिखिए।

3- मुहूर्त संबंधी दोष के बारे में लिखिए।

4- द्वार संबंधी दोष को समझाइए।

5- प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई - ५ गृहदोष निवारण

इकाई की संरचना-

५.१ प्रस्तावना –

आप सभी वास्तु शास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों से परिचित होंगे ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। एवं साथ ही साथ वास्तु के कुछ प्रमुख दोषों का भी आपको ज्ञान होगा। प्रस्तुत इकाई का शीर्षक **"गृहदोष निवारण"** है। हम सभी जानते हैं कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्थान का अभाव होने के कारण पूर्ण वास्तु सम्मत गृह निर्माण संभव नहीं हो पाता है। वास्तु शास्त्र के सभी सिद्धांतों का हम गृह निर्माण में उचित प्रयोग नहीं कर पाते हैं। कई प्रकार की सावधानियां रखते हुए भी कुछ ना कुछ दोष अवश्य रह जाते हैं। सामान्य रूप से वास्तु शास्त्र के कई दोष बताए गए हैं जैसे भूमि के दोष, दिशाओं के दोष, विभिन्न प्रकार के निर्माण संबंधी दोष, इन दोनों का निवारण शास्त्रोक्त पद्धति से किस प्रकार किया जाए यह महत्वपूर्ण प्रश्न होता है। क्योंकि मानव इस जीवन में सुख पूर्वक जीवन यापन करना चाहता है। यदि वह दोष युक्त भवन में निवास करेगा तो निश्चित तौर पर उसका मन कहीं ना कहीं अशांत बना रहेगा। अतः दोष युक्त भवन के निवारण उपाय अवश्य जानने चाहिए। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम गृहदोष निवारण के उपाय को जानेंगे।

५.२ उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु शास्त्र के मुख्य गृहदोष से अवगत हो पाएंगे।
- भूमि के प्रमुख दोष से परिचित हो पाएंगे तथा उनके निवारण के उपाय को जानेंगे।
- शौचालय संबन्धी दोषों के निवारण को जानेंगे।
- रसोईघर, सीढ़ी इत्यादि दोषो के उपाय का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- सामान्य वास्तु दोष दूर करने के उपाय को जानेंगे।

५.३ गृहदोष निवारण –

प्रस्तुत शीर्षक के माध्यम से हम गृह के विभिन्न दोषों एवं उनके निवारण के विषय में अध्ययन करेंगे।

५.३.१- भूमि के दोष का निवारण- गृह निर्माण के लिए भूमि के कुछ प्रमुख दोषों का विचार करना अत्यंत आवश्यक है यह दोष है भूमि में घनत्व न होना या पोली होना, शल्य दोष, अनुचित ढलान (प्लवत्व), वेध एवं निषिद्ध आकार आदि। इन दोषों का निवारण इस प्रकार किया जा सकता है

- यदि भूमि ठोस न हो या उसमें दीमक, चींटी एवं अजगर के बिल हो अथवा राख, भूसा, रेत या कपड़ा हो अथवा उस जमीन में शल्य हो तो ऐसी भूमि पर मकान नहीं बनवाना चाहिए। यदि ऐसी जगह पर भवन बनाना अत्यावश्यक हो तो भूमि को साढ़े तीन हाथ (लगभग 6 फुट) गहरा खुदवा कर उसका मलबा निकालकर अच्छी मिट्टी या पत्थर के छोटे टुकड़े से भरवा कर उस पर मकान बनाया जा सकता है। इस विषय में वास्तु ग्रंथों का सर्व सम्मत रूप से निर्देश यह है कि दरार वाली चलने वाली दीमक वाली पोली और बहुत ऊंची नीची फटी या दरारवाली, उबड़-खाबड़ जमीन को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। यथा-

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा॥[38]

- भूमि का ढलान पूर्व और उत्तर दिशा की ओर होना शुभ माना जाता है तथा भूमि का ढलान पश्चिम एवं दक्षिण दिशा की ओर निषिद्ध माना गया है। इसी प्रकार भूखंड के बीच में या दक्षिण एवं पश्चिम में गड्ढा होना अशुभ होता है इस प्रकार का भूखंड भवन निर्माण के लिए अच्छा नहीं होता। यदि इस प्रकार के भूखंड पर आवासीय, व्यवसायिक, औद्योगिक, या धार्मिक किसी भी प्रकार का भवन बनाना आवश्यक हो तो प्लॉट पर चिकनी मिट्टी डालकर गड्ढों को भरवा देना चाहिए और उसका ढलान सुविधा अनुसार पूर्व या उत्तर दिशा की ओर कर देना चाहिए जिससे भूमि के प्लवत्व दोष का निवारण हो जाता है।
- यदि भूखंड के सामने मंदिर, धर्मस्थल, खंबा, कुआं अथवा चौराहा हो तो तो भूखंड पर वेध होता है, और यहां मकान बनाने से अनेक प्रकार की परेशानियां पैदा होती है। सामान्यतया ऐसे भूखंड पर गृह नहीं बनवाना चाहिए। यदि ऐसे भूखंड पर भवन बनाना आवश्यक हो तो वेध की दिशा को छोड़कर अन्य शुभ दिशा में मुख्यद्वार रखना चाहिए।
- भूखंड वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार एवं भद्रासन सभी प्रकार के भवनों को बनाने के लिए शुभ होते हैं। भूखंड का विस्तार ईशान कोण को छोड़कर अन्य सभी कोणों पर अशुभ माना गया है। इसी प्रकार कटान आग्नेय एवं वायव्य के अलावा अन्य कोणों पर अशुभ माना जाता है। सामान्यतया विस्तार या कटाने वाले भूखंडों को छोड़कर शुभ आकार वाले भूखंड पर निर्माण करना चाहिए। यदि विस्तार या कटान वाले भूखंड पर निषिद्ध आकार वाले भूखंडपर

---

[38] वास्तुरत्नाकरः श्लोक ६१

मकान बनाना आवश्यक हो तो उसमें सुधार कर उसकी आकृति चौकोर कर लेनी चाहिए।

जैसे –
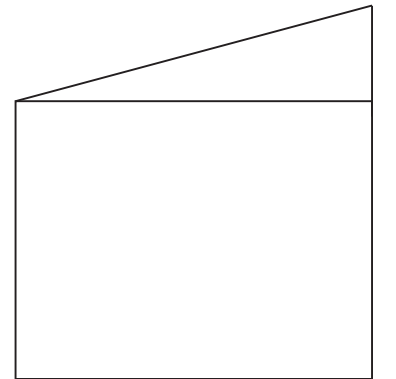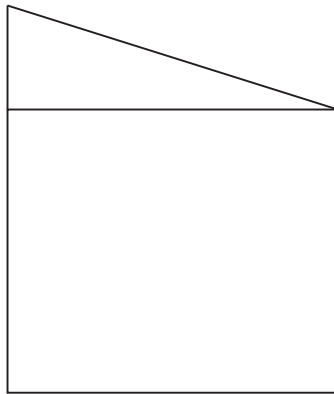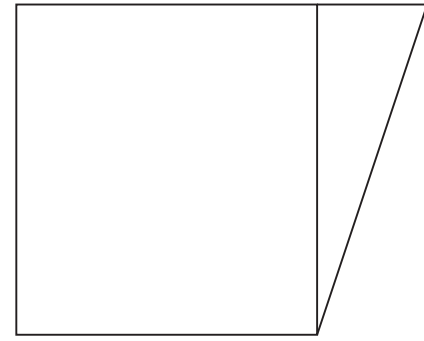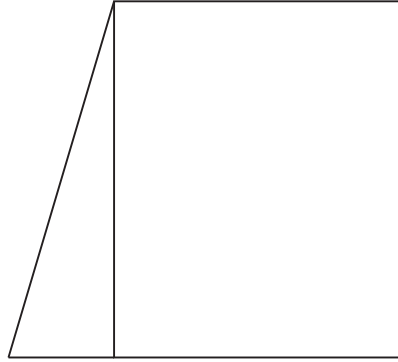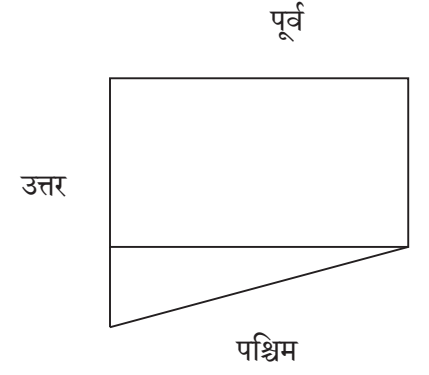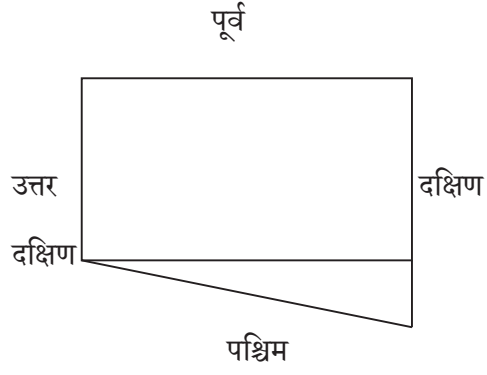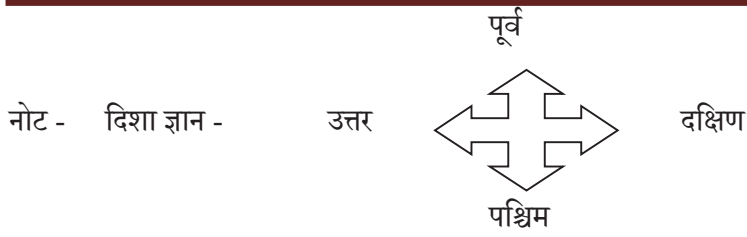
निषिद्ध आकृतियों के भूखंडों पर निर्माण नहीं करना चाहिए उन्हें छोड़ देना अच्छा होता है किंतु आज की परिस्थितियों के कारण यदि उन पर भवन बनाना आवश्यक हो तो उन में निम्न प्रकार से सुधार कर लेना चाहिए जिससे कि भूखंड चौकोर बन जाए जैसे –
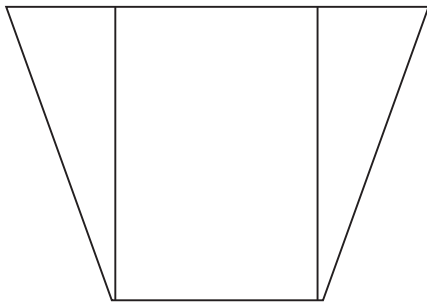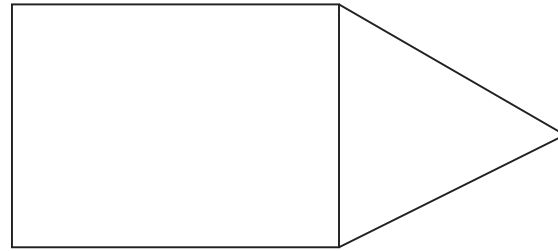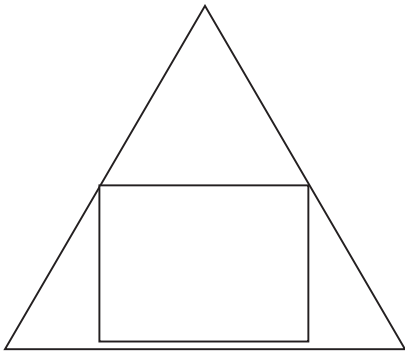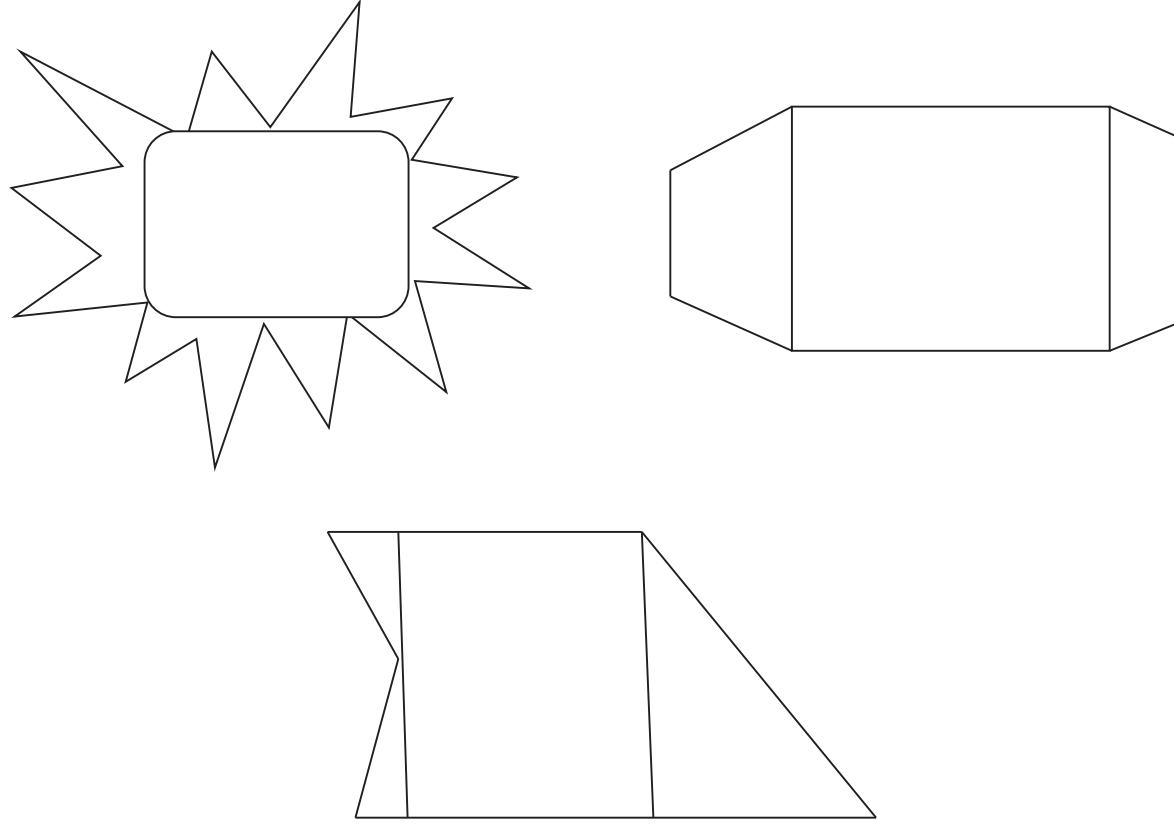
(उपर्युक्त भूखंडों में अपेक्षित सुधार किया जैसे क्रमशः चित्रानुसार त्रिकोणाकार भूखंड में, शकटाकार भूखंडा में, सिंह मुखी भूखंड में, शूर्पाकार भूखंड में, चक्राकार भूखंड में, मृदंगाकार भूखंड में, विषम बाहु भूखंड में ।) इस प्रकार निषिद्ध आकार वाले भूखंड में से चौकोर आकार निकालने या सुधार करने के बाद बची जमीन में पूर्व उत्तर की ओर घास, पौधों की क्यारी, आदि पश्चिम दक्षिण में बड़े पेड़ लगाए जा सकते हैं किंतु सुधार से बची जमीन पर किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य नहीं कराना चाहिए ।

५.३.२ विभिन्न दिशाओं के दोषों का निवारण -

ईशान कोण (दिशा) के दोष का निवारण – उत्तर - पूर्व के मध्य कोण या दिशा को ईशान कोण (दिशा) कहते हैं। इस दिशा के स्वामी शिव एवं बृहस्पति है। ईशान कोण को भगवान शिव के कारण पवित्र माना गया है अतः पूजा घर ईशान में रखना श्रेष्ठ माना जाता है ईशान कोण के लिए वास्तु सम्मत निर्देश दोष एवं उनके निवारण का विचार हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं -सामान्यतः ईशान मुखी भवन शुभ माना जाता है, इस दिशा में खुलापन एवं निर्माण न्यूनतम होने चाहिए, भवन का ढलान इसी

दिशा में होना चाहिए, ईशान में विस्तार भी शुभ माना गया है। कुआँ व ट्यूबवेल हेतु यह उपयुक्त दिशा मानी गई है। पूजा घर हेतु भी यह अत्यंत उपयुक्त स्थान है, साथ ही साथ तलघर के लिए भी उपयुक्त स्थान है। लेकिन यदि ईशान कोण कटा हो, ईशान का भाग ऊंचा हो, निर्माण के कारण ईशान कोण ढक गया हो, शौचालय यहां पर बना हो, उच्चीकृत पानी की टंकी हो, उत्तर पूर्व की चारदीवारी ऊंची हो तो यह ईशान दिशा का दोष होता है। इसका निवारण इस प्रकार से करना चाहिए कि ईशान कोण को स्वच्छ रखें, इस खुला हवादार एवं प्रकाशित रखें, प्रवेश द्वार पर स्वस्तिक लगाए, वास्तु दोष निवारण यंत्र लगाए, शिव उपासना एवं व्रत करना चाहिए।

पूर्व दिशा के दोष का निवारण – पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र एवं सूर्य ग्रह है। पूर्व दिशा से प्रातः काल की किरणें भवन में प्रवेश करती है, इन किरणों में पराबैंगनी विकिरण की अधिकता होती है जो कीटाणु नाशक होती है। पूर्व दिशा में द्वार एवं खिड़की होनी चाहिए, भवन का प्लवत्व पूर्व दिशा में रहना चाहिए। इस दिशा में खुलापन अधिक होना चाहिए, चारदीवारी अपेक्षाकृत नीची होनी चाहिए, अध्ययन के लिए यह दिशा उपयुक्त मानी जाती है। पूर्व दिशा के दोषों पर विचार करें तो यह दिशा निर्माण के कारण ढकी हो, इसका तल यदि ऊंचा हो, शौचालय इस दिशा में बनाया गया हो, गृहस्वामी का शयनकक्ष यदि पूर्व दिशा में हो इत्यादि पूर्व दिशा के दोष होते है। इन दोषों के निवारण के लिए इस दिशा को स्वच्छ, खुली एवं प्रकाशित रखना चाहिए शौचालय दक्षिण पश्चिम या वायव्य में स्थापित करना चाहिए गृहस्वामी का शयनकक्ष को नैऋत्य कोण में स्थापित करें। सूर्य यंत्र की स्थापना करनी चाहिए।

आग्नेय कोण (दिशा) के दोष का निवारण – पूर्व एवं दक्षिण दिशा के मध्य का कोण आग्नेय कोण

कहलाता है। इस दिशा के स्वामी गणेश एवं ग्रहस्वामी शुक्र है। यह कोण रसोईघर के लिए सबसे उपयुक्त स्थान माना जाता है, विद्युत उपकरणों के लिए भी यह शुभ माना गया है। इस दिशा में निर्माण अवश्य होना चाहिए, आग्नेय भाग पूर्व की तुलना में अधिक उन्नत होना चाहिए। आग्नेय कोण के दोषों पर यदि विचार करें तो इस दिशा में जल संग्रह दोष कारक माना गया है, भवन का मुख्य द्वार भी इस दिशा में दोष उत्पन्न करता है, आग्नेय कोण का दक्षिण दिशा में विस्तार होना भी दोष कारक है। इन दोषों के निवारण के लिए मुख्य द्वार पर हरे रंग के वास्तु दोष नाशक गणपति स्थापित करना चाहिए। गणपति की पूजा करनी चाहिए एवं बुधवार का व्रत करना चाहिए।

दक्षिण दिशा के दोष का निवारण – दक्षिण दिशा के स्वामी यम एवं ग्रहस्वामी मंगल है। भवन का इस दिशा का भाग पूर्व एवं उत्तर की तुलना में अधिक ऊंचा होना चाहिए। इस भाग में खुलापन न हो

अर्थात निर्माण कार्य अवश्य कराया जाना चाहिए। गृहस्वामी के शयनकक्ष के लिए यह सबसे उपयुक्त दिशा होती है। दक्षिणी दीवार अपेक्षाकृत भारी होनी चाहिए। दक्षिणी चारदीवारी ऊंची होनी चाहिए। दक्षिण दिशा के के निर्माण संबंधी दोषों पर विचार करें तो दक्षिणी भाग उत्तर-पूर्व की अपेक्षाकृत यदि नीचा होता है तो यह दोष कारक माना गया है। यहां पर कुआं एवं ट्यूबवेल भी दोष कारक माना गया है, दक्षिणी भाग को खुला नहीं होना चाहिए, भवन के सामने गड्ढा हो तो वह भी दोष कारक माना गया है। पूजा कक्ष एवं अध्ययन कक्ष दक्षिण दिशा में निषिद्ध माना जाता है। इनके दोषों के निवारण के लिए द्वार पर दक्षिणावर्ती सूंड वाले गणपति स्थापित करना चाहिए। द्वार पर मंगल यंत्र लगाना चाहिए। दक्षिण दिशा में बड़े-बड़े पेड़ लगाने चाहिए। उच्चीकृत पानी की टंकी को इसी दिशा में स्थापित करना चाहिए।

नैऋत्य कोण (दिशा) के दोष का निवारण – दक्षिण एवं पश्चिम दिशा के मध्य का कोण नैऋत्य कोण कहलाता है। इस दिशा के स्वामी नैऋती एवं ग्रहस्वामी राहु है। इस दिशा में गृहस्वामी का शयनकक्ष सबसे उत्तम माना गया है। नैऋत्य कोण कभी भी खाली नहीं रहना चाहिए। उच्चीकृत पानी का भंडारण हेतु यह श्रेष्ठ स्थान है। भारी वस्तुओं के लिए भी यह कोण उपयुक्त माना गया है। इस भाग का तल भूखंड में सबसे ऊंचा रहना चाहिए। नैऋत्य में विस्तार नहीं होना चाहिए। नैऋत्य कोण के दोषों पर विचार करें तो इस दिशा में यदि कुआं हो तो वह दोष कारक माना गया है। रसोईघर या सेप्टिक टैंक भी दोष कारक माना गया है। ढलान भी नैऋत्य कोण में दोष कारक होता है। नैऋत्य कोण खुला होना भी दोष कारक है। इन दोषों को दूर करने के लिए घर में राहु यंत्र स्थापित करना चाहिए। द्वार पर गणपति जी की स्थापना करनी चाहिए। दिशा दोष नाशक यंत्र एवं इंद्राणी यंत्र स्थापित करना चाहिए। इस दिशा में बड़े-बड़े पेड़ लगाने चाहिए।

पश्चिम दिशा के दोष का निवारण – पश्चिम दिशा के स्वामी वरुण एवं ग्रह स्वामी शनि है। यह दिशा भोजन कक्ष के लिए सबसे उपयुक्त मानी गई है। पश्चिमी भाग का तल नैऋत्य से नीचा एवं वायव्य से ऊंचा होना चाहिए। इस दिशा में खिड़कियों की संख्या कम होने चाहिए। अपराह्न सूर्य की किरणों में इंफ्रारेड विकिरण को रोकने के लिए इस दिशा में निर्माण अवश्य करवाना चाहिए। इस दिशा से संबंधित दोष पर यदि हम विचार करें तो इस दिशा में शयनकक्ष या स्नान ग्रह यदि हो तो वह दोष कारक माना गया है। पानी का ढलान पश्चिम दिशा में दोष कारक होता है। इन दोषों के शमन के लिए वरुण यंत्र की स्थापना करनी चाहिए। बड़े वृक्षों को भी पश्चिमी दिशा में लगाया जाना चाहिए।

वायव्य कोण (दिशा) के दोष का निवारण – उत्तर पश्चिम के मध्य के कोण को वायव्य कोण कहते हैं। इस दिशा के स्वामी वायु एवं का ग्रहस्वामी चंद्रमा है। इस दिशा में विवाह योग्य कन्या के लिए शयनकक्ष अत्यंत उपयुक्त माना गया है, सेप्टिक टैंक का निर्माण भी इस दिशा में उपयुक्त माना जाता है। अतिथि कक्ष के लिए भी यह स्थान उपयुक्त माना गया है। पेड़ पौधों के लिए भी शुभ स्थान माना जाता है। इस दिशा के दोषों पर विचार करें तो पश्चिम में वायव्य में भूखंड का विस्तार अधिक होना दोष कारक माना गया है। दोष के निवारण पर यदि विचार किया जाए तो भवन में चंद्र यंत्र स्थापित करना चाहिए। गणपति जी की आराधना करनी चाहिए, एवं हनुमान जी की उपासना करनी चाहिए।

उत्तर दिशा के दोष का निवारण – उत्तर दिशा के स्वामी धन के देवता कुबेर एवं का ग्रहस्वामी बुध है। यह दिशा धन देवता की दिशा है। अतः इसे स्वच्छ एवं अपेक्षाकृत खुली रखनी चाहिए। धन संग्रह कक्ष के लिए यह उपयुक्त दिशा मानी गई है। उत्तरी भाग पूर्वी तल के अनुरूप परंतु दक्षिण पश्चिम की अपेक्षा नीचा होना चाहिए। पानी का ढलान भी इस दिशा में उत्तम माना गया है। अध्ययन कक्ष, कार्यालय, पूजा कक्ष, काउंटर इत्यादि के लिए यह श्रेष्ठ दिशा मानी गई है। मुख्य द्वार एवं खिड़कियों के लिए भी यह स्थान उपयुक्त माना गया है। इस दिशा के दोष पर विचार करें तो यहां पर रसोई घर का निर्माण दोष कारक माना गया है, उत्तरी भाग का कटा होना, पुरानी एवं भारी वस्तुओं को उत्तर दिशा की ओर रखना, शौचालय इत्यादि का निर्माण उत्तर दिशा में दोष कारक माना जाता है। दोषों के निवारण के लिए बुध यंत्र की स्थापना करनी चाहिए। गणेश जी की उपासना करनी चाहिए। हरी घास लगाई जानी चाहिए।

अभ्यासप्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

11. सामान्यत: भूमि यदि पोली हो, राख़ या भूसा हो अथवा भूमि में शल्य हो तो वैसी भूमि में गृह निर्माण नहीं करना चाहिए।
12. भूमि के शल्यादि दोष भूमि को 6 फीट खोदकर स्वच्छ मिट्टी डलवाने से दूर हो जाते हैं।
13. भूमि का ढलान दक्षिण एवं पश्चिम दिशा का शुभ माना जाता है।
14. नैऋत्य दिशा के स्वामी मंगल है।
15. उत्तर दिशा के दोष के निवारण गणेश उपासना से दूर होते हैं।

५.३.३ शौचालय संबंधी दोष का निवारण – भवन में शौचालय का निर्माण वास्तु शास्त्र के नियमानुसार ही किया जाना चाहिए। वास्तु शास्त्र के अनुसार शौचालय की सही दिशा दक्षिण व नैऋत्य के मध्य में बताई गई है कभी-कभी स्थान न होने पर इसे वायव्य या पश्चिम दिशा में भी बनवाया जा सकता है। परंतु ईशान कोण में पर कभी भी शौचालय नहीं होना चाहिए। शौचालय के पाट की व्यवस्था इस प्रकार से होने चाहिए कि बैठने वाले का मुख उत्तर या दक्षिण दिशा की ओर रहे। शौचालय में जल का स्थान उत्तर पूर्व में रहे। कभी भी शौचालय रसोईघर एवं पूजा घर के ऊपर नहीं बनाना चाहिए। किसी भी भवन के एकदम प्रारंभ है या एकदम अंतिम सिरे पर भी शौचालय नहीं बनवाना चाहिए। वास्तु शास्त्र में जितना महत्व पूजा घर को दी गई है उतनी ही महत्ता शौचालय को भी दी गई है, क्योंकि पूजा घर में मन की शांति एवं शौचालय में तन की शांति होती है। इसीलिए शौचालय को वास्तु सम्मत स्थान पर ही बनाना चाहिए यहां पर हमें शौचालय कहां बनाए इस बात से अधिक ध्यान यह रखना चाहिए कि कहां नहीं बनाना चाहिए अतः शौचालय को ईशान व अग्नि कोण पर कभी भी नहीं बनवाया जाना चाहिए यदि पर परिस्थितिवश बनाना आवश्यक हो रहा हो तो पूर्वी भाग या उत्तरी भाग का नौ खंड करके एक भाग छोड़कर बनवाना चाहिए कहने का तात्पर्य है कि सीधा सीधा अग्नि कोण एवं ईशान कोण पर नहीं बनवाना चाहिए।

५.३.४ सीढ़ी से उत्पन्न दोष का निवारण- भवन में सीढ़ियों की संख्या सदा सम रखनी चाहिए। सीडियो की संख्या का योग करके 3 से भाग देने पर 2 शेष नहीं बचना चाहिए इसमें कई शास्त्रों में अलग-अलग मत हैं परंतु हम यहां वृहदवास्तुमाला के अनुसार जो इंद्र,यम एवं राजा क्रमशः एक दो व तीन (शून्य) शेष आने पर कहा गया है अर्थात यहां यम का शेष नहीं बचना चाहिए यह अनर्थ सूचक है। उनके ऊपर सीढ़ी का आरोहण या अवरोहण नहीं होना चाहिए। सीढ़ी की संख्या सम या विषम भी हो सकती है परंतु उनका योग करके 3 से उसे भाग देने पर दो शेष नहीं बचना चाहिए।
सीढ़ी सदा दाएं घूमते हुए बनवानी चाहिए, यदि किसी कारणवश सीढ़ी वामावर्त बन गई हो तो वहां पर एक स्वस्तिक लगा देना चाहिए। सीढ़ी का छत पर निकास पूर्व या उत्तर की तरफ शुभ माना गया है पश्चिम में भी कर सकते हैं परंतु भूलकर भी दक्षिण में नहीं करना चाहिए। सीढ़ी में यदि संख्या दोष हो तो एक संख्या घटा या बढ़ा लेनी चाहिए सीढ़ियां सदा घर के अंदर ही पीछे की तरफ बनवानी चाहिए। घर के सामने सीढ़ी नहीं रहनी चाहिए। प्रवेश द्वार के ठीक सामने सीढ़ी न रहे। घर के मध्य में भी सीढ़ी नहीं होनी चाहिए। इसे दक्षिण पश्चिम में ही बनवाना चाहिए। ईशान कोण पर भी सीढ़ी नहीं होनी चाहिए। एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी के मध्य 9 इंच का अंतर होना चाहिए। सीढ़ी के नीचे

पूजा घर एवं शौचालय नहीं बनाना चाहिए। सीढ़ी का आरंभ त्रिकोण से नहीं करना चाहिए न ही घुमावदार सीढ़ियां बनानी चाहिए।

५.३.५ सूर्य वेध दोष का निवारण- यदि किसी भूखंड की लंबाई पूर्व-पश्चिम में अधिक हो एवं उत्तर दक्षिण में कम चौडा हो एवं लंबाई लिए हुए हो तो ऐसी भूमि व भवन को सूर्य वेधीय भवन कहा जाता है, वास्तव में इसे बहुत शुभ नहीं माना जाता है क्योंकि सूर्य का प्रकाश बहुत कम मात्रा में प्राप्त होता है। ऐसा भूमि या भूखंड रहने पर उस निर्माण को चंद्र वेध में बनवाना चाहिए उत्तर दक्षिण लंबा, पूर्व पश्चिम चौड़ा, यदि यह संभव न हो तो चौकोर भवन बनाए, यदि यह भी संभव ना हो तो कम से कम भवन का मध्य भाग अर्थात आंगन को चंद्र वेध में बना दें। यह भी संभव ना हो पा रहा हो तो भूमि की लंबाई देखकर उसे दो या तीन जितने भी भाग में बांटने से वह चंद्र वेध हो जाए वहां नीचे तांबे का तार डलवा कर दें यह भूमि के ऊपर से लाल रंग का पेंट या टाइल्स का प्रयोग कर बॉर्डर जैसे बना दें ऐसा करने से भूमि का दोष दूर हो जाता है एवं सूर्य वेध का जो फल जैसे अस्थिरता, कलह, लक्ष्मी आदि की संभावना समाप्त हो जाती है।

५.३.६ रसोईघर संबंधी दोष का निवारण – मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में भोजन का अत्यधिक महत्व होता है, अतः भवन में पाकशाला का निर्माण भी वास्तु शास्त्र के अनुसार होना अत्यावश्यक माना गया है। जिससे कि हम भवन में रहने वाले सभी सदस्य स्वस्थ रहे। वास्तु शास्त्र में दक्षिण पूर्व अर्थात आग्नेय कोण का स्वामी अग्निदेव को माना गया है, अतः यहां पर पाकशाला बनाना अत्यंत उपयुक्त है। क्योंकि अग्नि में तेज, प्रकाश, कीटाणु नाशक, पकाने आदि की क्षमता होती है। इसलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने अग्नि कोण को ही पाकशाला हेतु उपयुक्त माना है। सही दिशा में भोजन पकाने से खाने वाले व्यक्ति भी अच्छी बुद्धि व बल के होते हैं यहां पर कुछ बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए जिससे पाकशाला से कोई दोष उत्पन्न न हो- भोजन पकाते समय बनाने वाले का मुख्य सदा पूर्व में रहना चाहिए। पीने का पानी व सिंक का आदि रसोईघर के ईशान कोण में रहना चाहिए। चूल्हा पाकशाला के अग्नि कोण में रहे, पानी के स्थान एवं चूल्हे में कम से कम 7 फीट की दूरी रहे। स्थान अभाव होने पर हम वायव्य कोण में भी पाकशाला बना सकते हैं परंतु ईशान एवं नैऋत्य कोण पर भूलकर भी नहीं बनाना चाहिए। भारी बर्तन रसोईघर के दक्षिण भाग में रखे। खाद्य सामग्री को उत्तर दिशा में रखना चाहिए। भोजन पकाने के बाद चूल्हे पर बर्तन नहीं छोड़ना चाहिए। रसोईघर को प्रकाश युक्त खुला हुआ हवादार रखना चाहिए। रसोई घर में बिजली का बल्ब व ट्यूब लाइट सदा आग्नेय कोण पर ही लगाना चाहिए। पाकशाला का दरवाजा पूर्व में नहीं रखना चाहिए, ना ही चूल्हा

सीधा दरवाजे के सामने रहे। रसोईघर की दीवार का रंग पीला रहना चाहिए। पाकशाला में यदि फ्रीज़ रखना हो तो उसे कभी भी नैऋत्य या ईशान में नहीं रखना चाहिए, इसके अतिरिक्त और कहीं रखा जा सकता है डायनिंग टेबल सदा आयताकार रहना चाहिए। डाइनिंग टेबल को पश्चिम दिशा में रखना चाहिए भोजन करते समय मुख पूर्व दिशा की तरफ रहे। जूठे बर्तनों को नैऋत्य कोण पर रखना चाहिए। रसोई घर यदिवायव्य में होगा तो वहां भोजन शीघ्र समाप्त होता है अतः कम से कम गैस चूल्हा रसोईघर के अग्नि कोण में रखकर भोजन पकाया जाय तो कुछ दोष दूर होता है।

५.३.७ सामान्य गृह दोष निवारण के उपाय –

- भवन में वास्तु दोष होने पर उचित यही है कि उसे यथासंभव वास्तु शास्त्र के अनुसार ठीक कर लेना चाहिए अथवा उस मकान को बेचकर दूसरा मकान अथवा जमीन खरीद लेना चाहिए।
- जहां तक संभव हो सके निर्मित मकान में तोड़फोड़ नहीं करना चाहिए तोड़फोड़ करने से वास्तु भंग का दोष लगता है।
- घर के पुराने होने पर दीवार के गिर जाने पर अथवा छिन्न-भिन्न होने पर उसे सोने से बने हुए हाथी दांत अथवा गोशृंग से वास्तु पूजन पूर्वक गिराने से वास्तु भंग का दोष नहीं लगता है।
- घर में अखंड रूप से रामचरितमानस के 9 पाठ लगातार नौ दिन तक करने से वास्तु जनित दोष दूर हो जाते हैं।
- मुख्य द्वार के ऊपर सिंदूर से स्वस्तिक का चिन्ह बना है यह चिन्ह 9 अंगुल लंबा तथा 9 अंगुल चौड़ा होना चाहिए घर में जहां-जहां वास्तु दोषों वहां वहां यह चिन्ह बनाया जा सकता है।
- इनके साथ साथ विभिन्न अवसरों पर वास्तु पूजन एवं वास्तु शांति कराते रहना चाहिए।

अभ्यासप्रश्न – 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

13-वास्तु दोष के निवारण हेतु रामचरित मानस का पाठ लगातार .... दिन तक कराना चाहिए।

14- रसोईघर में जल का स्थान .... कोण में रहना चाहिए।

15-शौचालय कभी भी .... कोण में नहीं बनबानी चाहिए।

16-सीढ़ी की संख्या में ....का अंश अशुभ होता है ।

17-सामान्यत: वास्तु दोष दूर करने के लिए मुख्य द्वार के सामने .... का चिन्ह बनवाना चाहिए।

५.४ सारांश –

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमें यथा संभव वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार ही गृह निर्माण कराना चाहिए। क्योंकि मनुष्य अपने जीवन में अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग अच्छे वातावरण में ही कर सकता है यदि उसे वातावरण समुचित नहीं मिलता है तो वह अवसाद पुर्वक अपने जीवन को जीता है। वर्तमान काल में मनुष्य के लिए घर का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है यदि भवन में किसी प्रकार का दोष रहता है तो उसे अपने जीवन में अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। अतः यथा संभव गृह दोषों का निवारण शास्त्रोक्त पद्धति से करना चाहिए। जैसे वास्तु दोष को दूर करने के लिए घर में अखंड रूप से रामचरितमानस के 9 पाठ करने से वास्तु जनित दोष दूर हो जाते हैं।
मुख्य द्वार के ऊपर सिंदूर से स्वस्तिक का चिन्ह बना है यह चिन्ह 9 अंगुल लंबा तथा 9 अंगुल चौड़ा होना चाहिए घर में जहां-जहां वास्तु दोषों वहां वहां यह चिन्ह बनाया जा सकता है। इनके साथ साथ विभिन्न अवसरों पर वास्तु पूजन एवं वास्तु शांति कराते रहना चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में गृह दोष के निवारण को समझ कर भवन में वास्तु दोष को दूर करना चाहिए।

५.५ पारिभाषिक शब्दाबली -

त्रिकोणाकार भूखंड - त्रिकोण (त्रिभुज) की आकृति वाला भूखंड।

शूर्पाकार भूखंड – सुपे के आकार वाला भूखंड या भूमि।

वास्तु भंग – किसी निर्माण को तोड़कर बनाना वास्तु भंग कहलाता है।

दक्षिणावर्त - दक्षिण दिशा की ओर घूमा हुआ होना।

सूर्य वेध - भूखंड की लंबाई पूर्व-पश्चिम में अधिक हो एवं उत्तर दक्षिण में कम चौडा हो एवं लंबाई लिए हुए हो तो ऐसी भूमि को सूर्य वेधीय भूमि कहते हैं।

५.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न - 1

1-सत्य, 2 –सत्य , 3 – असत्य , 4 - असत्य, 5- सत्य।

अभ्यास प्रश्न- 2

1- नौ दिन तक, 2 –ईशान कोण, 3 – ईशान कोण एवं आग्नेय कोण में , 4 - यम, 5- स्वस्तिक चिन्ह।

५.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

(ट) मूल लेखक – विश्वकर्मा , सम्पादक एवं टीकाकार –महर्षि अभय कात्यायन , विश्वकर्मप्रकाशः(२०१३), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ठ) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ड) मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००९) वास्तुप्रकरण , चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी |

(ढ) मूल लेखक – प्रो शुकदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र (वर्तमान संदर्भ में समग्र परिशीलन) (2004), श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नव देहली।

५.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

मयमतम् – मयमुनि

बृहत्संहिता – वराहमिहिर

वास्तु शास्त्र – डा शालिनी खरे

वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

५.९ निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूमि के प्रमुख दोष एवं उनके निवारण लिखिए।

2. रसोईघर संबंधी दोष एवं सीढ़ी संबंधी दोष एवं उनके समाधान लिखिए।
3. विभिन्न दिशाओं के दोष एवं उनके उपाय लिखिए।
4. गृह दोष के सामान्य उपायों को लिखिए।
5. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई - ६ वास्तु शान्ति

इकाई की संरचना-

६.१ प्रस्तावना

६.२ उद्देश्य

६.३ वास्तुशान्ति

६.३.१- वास्तुपूजन का महत्व

६.३.२ वास्तुपूजन कब करें

६.३.३ वास्तु शांति हेतु पूजन सामाग्री

६.३.४ वास्तु शांति विधि

६.३.५ सामान्य पूजा विधि (पंचाग पूजन)

६.३.६ विभिन्न मंडलों के चक्र

६.४ सारांश

६.५ पारिभाषिक शब्दाबली

६.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

६.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

६.८ सहायक पाठ्यसामग्री

६.९ निबन्धात्मक प्रश्न

६.१ प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक वास्तु शांति है। इस इकाई के अध्ययन के पूर्व आप सभी वास्तु शास्त्र के मुख्य सिद्धांतों से अवगत हो चुके है। वस्तुतः वास्तु शास्त्र में वास्तु शानस्ति का विशेष महत्व है क्योंकि मनुष्य जब भी गृह निर्माण करता है तब उससे जाने या अनजाने में कुछ न कुछ त्रुटि या दोष अवश्य हो जाते हैं उन दोषों के शमन एवं निर्मित भवन आदि में सुखमय जीवन यापन हेतु वास्तु शांति अवश्य कराई जताई है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम वास्तु पूजन के महत्व तथा वास्तु शांति की सामान्य प्रक्रिया से अवगत होंगे।

६.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वास्तु शास्त्र में वास्तु पूजन के महत्व से अवगत होंगे।
- वास्तु पूजन कब की जाती है इसका ज्ञान प्राप्त होगा।
- वास्तु शांति की विधि से अवगत होंगे।
- वास्तु पूजन में प्रयुक्त होने वाली सामग्री का ज्ञान होगा
- सामान्य पूजन की विधि का ज्ञान होगा।

६.३ वास्तुशान्ति –

प्रस्तुत इकाई में हम वास्तु शांति प्रक्रिया एवं इसके महत्व को क्रमबद्ध तरीके से जानेंगे।

६.३.१- वास्तुपूजन का महत्व - वास्तु का तात्पर्य निवास योग्य संकल्पना से है। हमारा शरीर पांच मुख्य पदार्थों से बना हुआ होता है और वास्तु का सम्बन्ध इन पाँचों ही तत्वों से माना जाता है। कई बार ऐसा होता है कि हमारा घर हमारे शरीर के अनुकूल नहीं होता है तब यह हमें प्रभावित करता है और इसे वास्तु दोष बोला जाता है। अक्सर हम महसूस करते हैं कि घर में क्लेश रहता है या फिर हर रोज कोई न कोई नुकसान घर में होता रहता है। किसी भी कार्य को पूरा करने में बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। घर में मन नहीं लगता एक नकारात्मकता की मौजूदगी महसूस होती है। इन सब परिस्थितियों के पीछे वास्तु संबंधि दोष हो सकते हैं। हम माने या न माने लेकिन वास्तुशास्त्र की हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। यह हर रोज हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा होता है। घर में मौजूद इन्हीं वास्तु दोषों को दूर करने के लिये जो पूजा की जाती है उसे वास्तु शांति पूजा कहते हैं। मान्यता है कि वास्तु शांति पूजा से घर के अंदर की सभी नकारात्मक शक्तियां दूर हो जाती

हैं और घर में सुख-समृद्धि आती है। वास्तु शांति पूजा दिशाओं के देवता, प्रकृति के पांच तत्वों के साथ-साथ प्राकृतिक शक्तियों और अन्य संबंधित बलों की पूजा है। वास्तु शास्त्र के किसी भी प्रकार के दोष को दूर करने के लिए हम वास्तु शांति करते हैं, चाहे वह भूमि और भवन, प्रकृति या पर्यावरण हो। वास्तु शास्त्र द्वारा भवन की संरचना में बड़े बदलाव और विनाश को रोकने के लिए पूजा की जाती है। गृहप्रवेश पूजा से पहले लोग वास्तु पूजा करते हैं।

यः पूजयेद्वास्तुमनन्यभक्त्या न तस्य दुःखं भवतीह किञ्चित्
जीवत्यसौ वर्षशतं सुखेन स्वर्गे नरस्तिष्ठति कल्पमेकम्

अर्थात जो व्यक्ति अनन्य भक्ति व श्रद्धा के साथ वास्तु का पूजन करता है उसे कभी दुःख प्राप्त नहीं होता और वह शतायु होकर कल्प पर्यंत स्वर्ग में वास करता है। वास्तु पूजा का मनुष्यों और देवताओं से सीधा संबंध है। प्राचीन वेदों के अनुसार वास्तु शास्त्र एक विज्ञान है जो किसी व्यक्ति को लाभ प्राप्त करने में मदद करता है। एवं जो व्यक्ति वास्तु पूजन नहीं करता जो किसी वास्तु शास्त्री सूत्रधार को नेहीन बुलाता उसके अनुसार कार्य व पूजन नहीं करता वह सात जन्मों तक कोडी होता है एवं नरक का भागी बनता है। यथा –

वास्तुपूजाविहीनश्च सुत्रधारैर्विना तथा
सप्तजन्म भवेत्कुष्ठि सततं नरकमव्रजेत्

वास्तुपूजन के लाभ -

- खराब वास्तु के कुप्रभाव को कम करता है।
- आपके घर या कार्यालय के सभी कोनों को मंजूरी देता है।
- मानसिक शांति देता है।
- सौभाग्य में वृद्धि।
- इसके अलावा, यह एक व्यक्ति को अधिक बुद्धिमान बनाता है और उसके दिमाग से बीमार विचारों को साफ करता है।
- आपको और आपके परिवार को आध्यात्मिक आनंद देता है।
- किसी भी नए घर में प्रवेश करने से पहले गृह वास्तु पूजन करवाया जाता है। गृह वास्तु पूजन का प्रभाव घर पर और घर में रहने वाले लोगों के जीवन पर काफी सकारात्मक पड़ता है। जो लोग गृह वास्तु पूजन करवाते हैं उन लोगों के गृह शांत रहते हैं और उनका जीवन सुख से कट जाता है।

- गृह वास्तु पूजन का प्रभाव घर में रहने वाले हर सदस्य पर पड़ता है और घर के हर सदस्य को जीवन में कामयाबी मिलती है।
- गृह वास्तु पूजन करवाने से लक्ष्मी मां स्थाई रूप से आपके घर में निवास कर लेती हैं और आपको कभी भी धन की कमी नहीं होती है।

६.३.२ वास्तुपूजन कब करें - वास्तु प्राप्ति के लिए अनुष्ठान, भूमि पूजन, नींव खनन, कुआं खनन, शिलान्यास, द्वार स्थापन व गृह प्रवेश आदि अवसरों पर वास्तु देव पूजा का विधान है। घर के किसी भी भाग को तोड़ कर दोबारा बनाने से वास्तु भंग दोष लग जाता है। इसकी शांति के लिए वास्तु देव पूजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी यदि आपको लगता है कि किसी वास्तु दोष के कारण आपके घर में कलह, धन हानि व रोग आदि हो रहे हैं तो आपको नवग्रह शांति व वास्तु देव पूजन करवा लेना चाहिए। किसी शुभ दिन को वास्तु पूजन कराना चाहिए। इसका मुख्य उद्देश्य निर्माण में किसी भी त्रुटि और पृथ्वी की प्राकृतिक ऊर्जा के प्रवाह में किसी भी बाधा से बचना है। इसके अलावा, ये बाधाएं आमतौर पर वास्तुदोष बन जाती हैं जिससे निवासियों में मानसिक परेशानी हो सकती है। हमें प्रकृति और पर्यावरण द्वारा नकारात्मक परिस्थितियों से बचने के लिए वास्तु शांति करनी चाहिए। सामान्यत: निम्नलिखित अवसरों पर वास्तु पूजन करानी चाहिये -

- नए भवन में प्रवेश करने के समय।
- जब कोई पुराना घर खरीदता है।
- कभी कोई व्यक्ति घर या व्यावसायिक स्थानों का नवीनीकरण करता है।
- कमरे और इमारतों की आंतरिक व्यवस्था में त्रुटियां।
- जब हम नियमित रूप से 10 साल से रह रहे हैं।
- लंबे समय तक विदेश यात्रा से वापस आने के बाद।
- सबसे पहले, लोग इसे एक संरचना के भीतर वास्तुदोष को दूर करने के लिए करते हैं।
- वे माफी माँगने के लिए भी करते हैं यदि भवन के निर्माण के दौरान प्रकृति, पौधों या पेड़ों के किसी भी जीव को नष्ट कर दिया गया हो।
- भवन के रहने वालों को परेशान करने वाली किसी भी ताकत या ऊर्जा के गुस्से को शांत करने के लिए।
- अच्छे स्वास्थ्य और धन के लिए वास्तुपुरुष का आशीर्वाद प्राप्त करना।
- संरचना का सही उपयोग करने के लिए।

६.३.३ वास्तु शांति हेतु पूजन सामग्री -

१.रक्तचन्दन, २. श्वेतचन्दन, ३. शुद्ध कस्तूरी केशर, ४. रोरी, ५. अबीर, ६. बुक्का, ७. नारा (रक्तसूत्र), ८. सिन्दूर, ९. कपूर, १०. रुई, ११. धूप गुग्गुल, १२. सुपारी-१५०, १३. पंचमेवा, १४. पान बीड़ा, १५. लौंग, १६. इलायची, १७. जावित्री, १८. गरी का गोला-५, १९. पीली सरसों, २०. नारियल (पूर्णाहुत्यर्थ), २१. शुद्ध मधु-१०० ग्राम, २२. दीपशलाका २३. रंग-लाल, पीला, हरा, धूम्र,पीला, काला, अथवा हल्दी की बुकनी, मेंहदी की बुकनी, सुरु- आटी का बीया, मूंग की दाल, मसूर की दाल, गेहूँ, २४. पुष्प, पुष्पमाला,२५. पञ्च पल्लव-वट, पीपल, पाकड़, गूलर तथा आम की डालिया, २६. नवग्रह-समिधा-यदार, पलास,खैर, चिचिड़ा, पीपल,गूलर, समी, २७. वास्तुदेव-समिधा (यज्ञीय काष्ठ) - वट, पीपल एवं पाकड़ की बिना चीरी कनिष्ठिकामात्र मोटी, सीधी, बिना घुनी प्रादेश मात्र लम्बी-६००। २८. बिल्व-५ या बिल्वबीज-५, २९. ऋतुफल-केला, आम, जामुन, अंगूर, सेव, सन्तरा, नारंगी, दाडिम (अनार), अमरूद, कसेरू,लीची आदि (जो उपलब्ध हो)। ३०. नान्दीश्राद्धार्थ-आदी, मुनक्का, आँवला, वस्त्रोपवस्त्र-८-८, यज्ञोपवीत-८ जोड़ा, श्वेतपुष्प, गोदुग्ध, जव। ३१. यज्ञकार्यार्थ-कुश-१५० तथा दूर्वांकुर, ३२. आचार्यवरणार्थ-विशिष्ट धोती, दुपट्टा, अंगोछा, खड़ाऊ, रुद्राक्ष की माला, जपमाला, जनेऊ, कम्बलासन, लोटा, गिलास । अन्य ब्राह्मणवरणार्थ-पंचपात्र, आचमनी । ३३. देवताओं के अर्पणार्थ वस्त्र- प्रधान देवता के लिए-धोती, दुपट्टा (रेशमी) । वेदी के लिए-वस्त्र, लाल वस्त्र,पताका बड़ी-१. झण्डी— लाल, पीली, हरी, श्वेत, कृष्ण । तथा झण्डी लगाने के लिए डण्डा ।

अभ्यासप्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य या असत्य का चयन कीजिये -

16. वास्तु पूजन कराने से वास्तु जन्य दोषों का शमन होता है ।
17. गृह प्रवेश में वास्तु पूजन नहीं करानी चाहिए ।
18. पुराने घर खरीदने पर वास्तु पूजन कराई जानी चाहिए ।
19. पूर्व एवं उत्तर के मध्य वायव्य कोण होता है ।
20. लंबे समय से विदेश यात्रा के बाद घर में प्रवेश करते समय वास्तु पूजन कराई जानी चाहिए।

६.३.४ वास्तु शांति विधि[39] - वास्तु शास्त्र के अनुसार जब गृह का निर्माण पूर्ण हो जाए तब उसमें रहने से पूर्व वास्तुशांती अवश्य कर आनी चाहिए एवं शुभमुहूर्ता देखकर गृह प्रवेश करना चाहिए बिना

[39] वास्तुसार डा शालिनी खरे –

वास्तुशांति कराए भवन में कभी भी निवास नहीं करना चाहिए। गृह प्रवेश के दिन से पूर्व किसी शुभ दिन में गृहस्वामी अपनी पत्नी के साथ उत्तराभिमुख हो आसन पर बैठे एवं सर्वप्रथम स्वयं की शुद्धि करें अथवा किसी योग्य ब्राह्मण द्वारा यह कृत्य करावे एवं शास्त्रोक्त मंत्र का उच्चारण करें। तत्पश्चात् आसन की शुद्धि करें। उसके बाद अपनी धर्म भार्या को दाँए बैठाकर तिलक लगाकर गाँठ जोड़ देना चाहिए। फिर जल से ३ बार आचमन करें। फिर हस्त शुद्धि करें हस्त शुद्धि के बाद दीपक जलाकर चावल की तेड़ी बनाकर कलश के दाँए तरफ रखें। फिर पुष्प, अक्षत, कुश, द्रव्य, सुपारी, एवं जल हाथ में लेकर संकल्प लेवें एवं उसे गणेश जी के पास रख दें। तत्पश्चात् दिग्रक्षा हेतु एक दोने में पीली सरसों, अक्षत, द्रव्य एवं तीन धागे का पीला रंगा हुआ कच्चा सूत व कलावा बाँए हाथ पर रखकर उसको दाँए हाथ से ढक दें फिर आचार्य द्वारा शास्त्रोक्त मंत्रोच्चारण करते हुए दसो दिशाओं में पीली सरसों व अक्षत को छोड़ते जाँए। बचे हुए को गणेश जी के सम्मुख रख दें। कलावे को आचार्य द्वारा अपने दाँए हाथ में एवं पत्नी के बाँए हाथ में बँधवा लें। उसके बाद स्वस्तिवाचन कहेंगे जिसे पूजा कर्ता द्वारा बाँए हाथ पर अक्षत रख कर दाँए हाथ से गणेश जी के समक्ष छोड़ते जाँएगे। स्वस्तिवाचन के पश्चात किसी भी कार्य की निर्विघ्न समाप्ति हेतु सर्वप्रथम गणपति पूजन किया जाता है। गणपति पूजन के पश्चात कलश स्थापना करेंगे चन्दन, रोली इत्यादि से अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर कलश को शास्त्रोक्त मंत्रोच्चारण के साथ स्थापित करेंगे। इस क्रिया में पहले भूमि का स्पर्श फिर कलश का स्पर्श करके कलश में जल भरेंगे। रक्षा लपेटेंगे। कलश में पुष्प, पंचपल्लव इत्यादि लगाँएगे कलश में पंचरत्न पूंगीफल सप्तमृतिका, श्रीफल इत्यादि रखने के पश्चात सभी देवताओ का आवाहन करेंगे फिर पंचोपचार या षोडशोपचार विधि से पूजा कर प्रार्थना करेंगे। कलश स्थापना के पश्चात् नवग्रह की स्थापना की जाती है। इसमें श्वेत वस्त्र पर नौ खण्ड करके मध्य में सूर्य-सूर्य से दाँए मंगल, अग्नि कोण में चन्द्रमा, ईशान में बुध उत्तर में गुरु पूर्व में शुक्र, सूर्य से पश्चिम में शनि, नैऋत्य में राहु वायव्य में केतु को स्थापित करें। इसके पक्षात संकल्प लेकर पंचोपचार से नवग्रह की पूजा कर अक्षत आदि मंत्रोच्चारण कर पंचोपचार या दशोपचार से पूजन कर अक्षत छोड़े। पुष्प छोड़े। इतना करने के पश्चात् गौर्यादिमातृका पूजन करना चाहिए, इसमें वेदी पर लाल वस्त्र बिछा कर १६ कोष्ठक बनाए जाते हैं जिनकी क्रमश मंत्री द्वारा आवाहन स्थान एवं षोडश या दशोपचार से पूजन किया जाता है। इसके पश्चात् सप्तघृतमातृका पूजन करने का विधान है। इसमें श्वेत वस्त्र पीठे बिछाकर उस पर घी व सिन्दूर को मिलाकर ७ रेखा खींचते हैं। सातों रेखाओं पर द्वारा पूजन अर्चन करेंगे। इसी के साथ एक अन्य स्थान पर अन्य सभी देवताओं का जिनका भी ध्यान आवें आवाहन व पूजन करेंगे। पूजन कर पुष्पांजलि से प्रार्थना की। तत्पश्चात् मुख्यद्वार के कलशादि कदली के खंभे, बन्दनवार की गंध मुख्य

धूपादि से पंचोपचार पूजन करें । तत्पश्चात् वरुण देवता का आवाहन कर नलपूजा करें । मंत्र द्वारा पंचोपचार पूजन करें । फिर प्रार्थना कर वास्तुदेव का पूजन सभी देवताओं के नाम के साथ करें । यह षोडेशोपचार से होनी चाहिए। इसके पश्चात् सत्यनारायण भगवान की कथा करानी चाहिए । कथा के बाद हवन हो । हवन में सभी देवी देवताओं व वास्तुपुरुष के सभी नामों से आहुति देनी चाहिए । अन्त में पूर्णाहुति सूखे नारियल से करनी चाहिए । हवन की राख को मस्तक गर्दन व बाहु, हृदय में लगाना चाहिए । इसके बाद प्रार्थना कर प्रदक्षिणा करें शांति पाठ से अभिसिंचन करें । गोदान का संकल्प एवं आचार्य की दक्षिणा, का संकल्प लें । ब्राह्मण भोज का संकल्प लें । तत्पश्चात विसर्जन कर आसन के नीचे जल गिराकर उसे मस्तक व चक्षुओं में लगावें । उसके बाद आचार्य जी यजमान को तिलक लगावें-रक्षा बाँधे पत्नी को नारियल व फल गोद में डालकर गोदी भरें फिर आर्शीवचन कहें । द्रव्य रखें । गृहस्वामी के समक्ष कुल देवता का कलश एवं गृह स्वामिनी के समक्ष कुल देवी का कलश रखकर षोडशोपचार विधि द्वारा पूजन करावें । दूसरे दिन स्वयं उस कलश को उठाकर सपत्नीक गीत, वाद्य, आदि के साथ अपने गृह में कुल देवता की स्थापना करें । गृहस्वामी पवित्रि धारण कर आचमन करे एवं आचार्य जी स्वस्तिवाचन कर संकल्प लें । विधि पूर्वक शास्त्रोक्त मंत्रों द्वारा आचार्य जी उपरोक्त सभी क्रियाओं को सम्पन्न करा कर क्षमा प्रार्थना अवश्य करें। तत्पश्चात गृहस्वामी के हाथ से कुश जल व पूँगीफल द्वारा संकल्प कर ब्राह्मणों को दक्षिणा दें ।

(प्रत्येक पूजा विधि में आचार्य जी योग्य आचार्य द्वारा करायी जानी चाहिए । कर्म काण्ड का विषय है यहाँ पूजा विधि **सामान्य रूपा में बताई गई है ।)**

वास्तु शान्ति में दिक्पाल एवं ध्वजा विचार -वास्तु शान्ति में जहाँ पर वेदी बनायी गई है वहीं पर कलश स्थापना करके उस पूर्ण पात्र के ऊपर दिग्पालों की पूजा करनी चाहिए । दशो दिगपाल की अग्रलिखित मंत्रों द्वारा पूजा करनी चाहिए।

१ ॐ लं इन्द्राय सपरिवाराय नमः।

२ ॐ यं यमाय सपरिवाराय नमः ।

३ ॐ वं वरूणाय सपरिवाराय नमः ।

4 ॐ कुबेराय सपरिवाराय नमः।

5 ॐ बं ब्रह्मणे सपरिवाराय नमः ।

६ ॐ वां वह्नने सपरिवाराय नमः ।

7 ॐ नै नैऋत्याय सपरिवाराय नमः।

8 ॐ वां वायवे सपरिवाराय नमः।

९ ॐ ऐशानाय सपरिवाराय नमः।

१० ॐ अनन्ताय सपरिवाराय नमः।

इन्हीं मंत्रो द्वारा पंचोपचार अथवा दशोपचार से पूजा करने के पश्चात् ऐसा कहें

अनया पूजया दशदिक्पालदेवताः प्रीयन्ताम्,

प्रसन्ना वरदा भवन्तु कल्याणमस्तु।

इसके बाद अक्षत एवं पुष्प समर्पित कर दें।

ध्वजा विचार-पूजन के बाद दशो दिशाओं में ध्वजा लगायी जाती है जिनका अलग अलग रंग होता है।

ईशान कोण (शंकर) – लाल / सफेद
पूर्व (इन्द्र) – पीला
अग्नि कोण (अग्नि) - लाल
दक्षिण (यम) - काला
नैऋत्य (निरिति) - काला
पश्चिम (वरुण) - सफेद
वायव्य (वायु) - धूम्र वर्ण/ हरा/ पीला
उत्तर (कुबेर, सोम) - सफेद
पूर्व व ईशान के मध्य (ब्रह्मा) – लाल
पश्चिम व नैऋत्य के मध्य (अनंत) – नीला / हरा

वास्तु शांति में वास्तु मंडल का विचार -

वास्तु मंडल के संदर्भ में पूर्व में ही विस्तृत रूप में बताया जा चुका है। परन्तु फिर भी यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है, गृह के वास्तु शांति में ८१ पद मण्डल बनाया जाता हैं। मण्डल के सभी ५३ (45 मुख्य देवता व 8 अन्य देवता) देवताओं का विधिवत पूजन किया जाता है। सभी का नाम लेकर जैसेॐ भूर्भुव: स्व: शिखने नमः ॐ भूर्भुव: स्व: पर्जन्ते नमःॐ भूर्भुव: स्व: जयन्ते नमःॐ भूर्भुव: स्व: इन्द्रे नमः

.... आदि के माध्यम से पूजन किया जाता है।

वास्तु बलि विधान - वास्तु मण्डल के सभी देवताओं की भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों से बलि (भोजन) दी जाती है जैसे -

देवता	**बलि**	**देवता**	**बलि**
१. अग्नि	घृतयुक्त नैवेद्य	२७. वासुकि	घी
२. पर्जन्य	घृतयुक्त ओदन	२८. भल्लाटक	मूंग और ओदन
३. जय	आटे का कछुआ	२९. सोम	घृत, खीर
४. इन्द्र	आटे का वज्र	३०. भग	साठी के चावलकी पीठी
५. सूर्य	सत्तू	३१. अदिति	पोलिका
६. सत्य	घी, गेहूँ	३२. दिति	पूरी
७. भृश	अन्न	३३. यम	दूध
८. अन्तरीक्ष	पूड़ी	३४. आपवत्स	दही
९. वायु	सत्तू	३५. सावित्री	लड्डू और कुश मिश्रित ओदन
१०.पूषा	लावा	३६. सविता	गुड़ मिश्रित पूआ
११. वितथ	चना, ओदन	३७. जय	घृत,चन्दन
१२. बृहत् क्षत्र	मधु, अन्न	३८. विवस्वान्	लाल चन्दन, खीर
१३. यम	फल का गूदा और ओदन	३९. इन्द्र	घृत एवं हरिताल युक्त ओदन
१४. गन्धर्व	सुगन्धित ओदन	४०. मित्र	घृत मिश्रित ओदन

१५. भृङ्गराज	भृङ्गिका	४१. रुद्र	घृत और खीर
१६. मृग	जौ का सत्तू	४२. राजयक्ष्मा	कच्चे और पके फल का गूदा
१७. पितर	खिचड़ी	४३. पृथ्वीधर	मांस खण्ड और कुम्हड़ा
१८. दौवारिक	दन्तकाष्ठ तथा आटे की बलि	४४. अर्यमा	शक्कर, खीर, पञ्चपाक जौ, तिल, अक्षत, चरु
१९. सुग्रीव	पूआ	४५. ब्रह्मा	विविध प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थ
२०. पुष्पदन्त	खीर	४६. चरकी	पद्मकेशर युक्त ओदन घृत
२१. वरुण	सुवर्णमय पीठी	४७. विदारी	मिश्रित ओदन तथा हरिद्रा युक्त ओदन
२२. असुर	मदिरा	४८. पूतना	दही,ओदन,हड्डियों के टुकड़े
२३. शेष	घृतयुक्त ओदन	४९. पापराक्षसी	खीर
२४. पापयक्ष्मा	जौ का अन्न		
२५. रोग	घी का लड्डू		
२६. नाग	पुष्प, फल		

वास्तु शांति हेतु शंकु रोपण विधि - शंकु एक पिरामिड के आकार का यंत्र होता है जिसे शिलान्यास से पूर्व भूमि के ब्रह्म स्थान पर नीचे भूमि पर लगा देना चाहिए यह इस प्रकार से लगे कि शंकु का ऊपरीबिन्दु ब्रह्म स्थान के ठीक मध्य में ही पड़े। इस प्रकार से करने से भवन की प्राकृतिक आपदाओं से भी रक्षा होती है जैसे-भूकम्प, बिजली, बाढ़, आँधी, तूफान आदि एवं वास्तुदोष को भी दूर करता है। इस प्रकार घर में धनात्मक ऊर्जा में वृद्धि होती है शंकु व पिरामिड के स्थान पर इसी प्रकार से हम श्री यंत्र की भी स्थापना कर सकते हैं जो वास्तु दोष को दूर करता है। (गृह प्रवेश के समय गृह के चारों कोणों पर कील का रोपण भी किया जाता है जिससे गृह की सभी प्रकार से सुरक्षा रहे।)

गृह प्रवेश विधि – वास्तु शांति के बाद गृह प्रवेश पूजा करनी चाहिए। गृह प्रवेश पूजा विधि क्रम निम्नवत है –

शान्ति पाठ, प्रधान संकल्प, गणेश-अंबिका का पूजन, कलश पूजन , पुण्याह वाचन, सप्तघृतमातृका पूजन , आयुष्य मंत्र जप, नंदी श्राद्ध, आचार्यादि वरण, अग्नि स्थापन, चारों कोणों पर कील का स्थापन

, कील पर उड़द दधि की बलि, वास्तु चक्र स्थापन, वास्तु चक्र पूजन, दश –दिक्पाल पूजन, नवग्रह स्थापन, नवग्रह पूजन, नवग्रह का हवन, दिक्पाल का हवन, वास्तु पुरुष के मंत्रों द्वारा हवन, त्रिसूत्री धागा (लाल, काला , सफेद) गृह के चारों तरफ बांधे। बांधते समय अविच्छन्न, दुग्ध धारा चारों कोणों पर गिराते जाएँ, गृहोपकरणों का पूजन, देव पूजन।

6.3.5 सामान्य पूजा विधि - पूजन में षोडशोपचार या पञ्चोपचार अर्चन का क्रम सामान्यतः प्रचलित है। अतः तत्सबंधी मंत्र का विवरण किया जा रहा है। पुरुषसूक्त के षोडश मंत्र और रूद्रसूक्त के नमस्ते रुद्र. आदि षोडश मंत्रों से भी सभी देव पूजन में अर्चन करने की सामान्य विधि है। ध्यातव्य है कि पूजन के इस प्रकरण के अभ्यास से संकल्प विशेष का परिवर्तन करके विविध पूजा के आयोजन सामान्य रूप से कराये जा सकते हैं। प्रत्येक पूजारंभ के पूर्व निम्नांकित आचार-अवश्य करने चाहिये- आत्मशुद्धि, आसन शुद्धि, पवित्र धारण, पृथ्वी पूजन, संकल्प, दीप पूजन, शंख पूजन, घंटा पूजन और स्वस्तिवाचन तत्पश्चात् ही देव पूजन प्रारम्भ करना चाहिए। शुभ मूहूर्त में शुद्ध वस्त्र धारण करके यजमान पूजा के लिए मण्डप में आये। यथासंभव शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण करना उत्तम होता है। तदनन्तर आत्म शुद्धि के लिए आचमन करें।

ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः। तीन बार आचमन कर आगे दिये मंत्र पढ़कर हाथ धो लें। ॐ विष्णवे नमः।। पुनः बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से अपने ऊपर और पूजा सामग्री पर निम्न श्लोक पढ़ते हुए छिड़कें।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु, ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

आसन शुद्धि-नीचे लिखा मंत्र पढ़कर आसन पर जल छिड़के-

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रां कुरु चासनम्।।

शिखाबन्धन- ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषु मानोऽअश्वेषुरीरिषः। मानोव्वीरान् रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखाबद्धे तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे।।

कुश धारण- निम्न मंत्र से बायें हाथ में तीन कुश तथा दाहिने हाथ में दो कुश धारण करें। ॐ पवित्रोस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रोण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते

पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्। पुनः दायें हाथ को पृथ्वी पर उलटा रखकर ॐ पृथिव्यै नमः इससे भूमि की पञ्चोपचार पूजा का आसन शुद्धि करें। पुनः ब्राह्मण यजमान के ललाट पर कुंकुम तिलक करें।

यजमान तिलक - ॐ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः। तिलकन्ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये।

उसके बाद यजमान आचार्य एवं अन्य ऋत्विजों के साथ हाथ में पुष्पाक्षत लेकर स्वत्ययन पढ़े।

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽ परीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ँ रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवाना ँ सख्यमुपसेदिमा व्वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रामदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुण ँ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।
तन्नो व्वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्।।
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निर्जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह।।
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रसो यत्रा पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्राः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष Ủ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्व्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वं Ü शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि॥ यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरू। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुब्भ्यः॥ सुशान्तिर्भवतु ॥

हाथ में लिए पुष्प और अक्षत गणेश एवं गौरी पर चढ़ा दें। पुनः हाथ में पुष्प अक्षत आदि लेकर मंगल श्लोक पढ़े।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः।

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥ 1॥

वक्रतुण्ड ! महाकाय ! कोटिसूर्यसमप्रभ ! ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव ! सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ 2॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ 3॥

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ 4॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ 5॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ 6॥

अभीप्सितार्थ-सिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुराऽसुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ 7॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ! ।

शरण्ये त्रयम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ 8॥

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।

येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥ 9॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।

विद्यावलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥ 10॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ 11॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्र्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥12॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 13॥

स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते ।

पुरुषं तमजं नित्यं ब्रजामि शरणं हरिम् ॥ 14॥

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।

देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥ 15॥

हाथ में लिये अक्षत-पुष्प को गणेशाम्बिका पर चढ़ा दें।

संकल्प - दाहिने हाथ में जल, अक्षत, पुष्प और द्रव्य लेकर संकल्प करे।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ स्वस्ति श्रीमन्मुकन्दसच्चिदानन्दस्याज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एकपञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे द्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये अष्टमे श्रीश्वेतबाराहकल्पे स्वायम्भुवादिमन्वतराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृत-त्रोता-द्वापर- कलिसंज्ञानां चतुर्युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे तथा पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्ण-भूमण्डलान्तर्गतसप्तद्वीपमध्यवर्तिनि जम्बूद्वीपे तत्रापि श्रीगङ्गादिसरिद्भिः पाविते परम-पवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्तान्तर्गतकाशी-कुरुक्षेत्र-पुष्कर-प्रयागादि-नाना-तीर्थयुक्त कर्मभूमौ मध्यरेखाया मध्ये अमुक दिग्भागे

अमुकक्षेत्रे ब्रह्मावर्तादमुकदिग्भागा- वस्थितेऽमुकजनपदे तज्जनपदान्तर्गते अमुकग्रामे श्रीगङ्गायमुनयोरमुकदिग्भागे श्रीनर्मदाया अमुकप्रदेशे देवब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपतिवीरविक्रमादित्य-समयतोऽमुक संख्यापरिमिते प्रवर्तमानवत्सरे प्रभवादिषष्ठिसम्वत्सराणां मध्ये अमुकनाम सम्वत्सरे, अमुकायने, अमुकगोले, अमुकऋतौ, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, यथांशकलग्नमुहूर्तनक्षत्रायोगकरणान्वित.अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये, अमुकराशिस्थिते चन्द्रे, अमुकराशिस्थे देवगुरौ, शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु, सत्सु एवं ग्रहगुणविशिष्टेऽस्मिन्शुभक्षणे अमुकगोत्रोऽमुकशर्म्मा वर्मा-गुप्त-दास सपत्नीकोऽहं श्रीअमुकदेवताप्रीत्यर्थम् अमुककामनया ब्राह्मणद्वारा कृतस्यामुकमन्त्रपुरश्चरणस्य सङ्गतासिद्ध्यर्थ- ममुकसंख्यया परिमितजपदशांश-होम-तद्दशांशतर्पण-तद्दशांश-ब्राह्मण-भोजन रूपं कर्म करिष्ये।

अथवा –

ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य द्विपदचतुष्पदसहितस्य सर्वारिष्टनिरसनार्थं सर्वदा शुभफलप्राप्तिमनोभि- लषितसिद्धिपूर्वकम् अमुकदेवताप्रीत्यर्थं होमकर्माहं करिष्ये। अक्षत सहित जल भूमि पर छोड़ें।

पुनः जल आदि लेकर- तदङ्गत्वेन निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं श्रीगणपत्यादिपूजनम् आचार्यादिवरणञ्च करिष्ये। तत्रादौ दीपशंखघण्टाद्यर्चनं च करिष्ये।

इसके बाद कर्मपात्र में थोड़ा गंगाजल छोड़कर गन्धाक्षत, पुष्प से पूजा कर प्रार्थना करें।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि! सरस्वति!।

नर्म्मदे! सिन्धु कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

अस्मिन् कलशे सर्वाणि तीर्थान्यावाहयामि नमस्करोमि।

कर्मपात्र का पूजन करके उसके जल से सभी पूजा वस्तुओं को सींचे।

घृतदीप-(ज्योति) पूजन-

वह्दिदैवत्याय दीपपात्रय नमः-से पात्र की पूजा कर ईशान दिशा में घी का दीपक जलाकर अक्षत के ऊपर रखकर ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्योव्वर्चोज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ।। ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा।

भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत् । यावत्पूजासमाप्तिः स्यात्तावदत्रा स्थिरो भव।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दीपस्थदेवतायै नमः आवाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

शंखपूजन - शंख को चन्दन से लेपकर देवता के वायीं ओर पुष्प पर रखकर

ॐ शंखं चन्द्रार्कदैवत्यं वरुणं चाधिदैवतम्।

पृष्ठे प्रजापतिं विद्यादग्रे गङ्गासरस्वती।।

त्रौलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया।

शंखे तिष्ठन्ति वै नित्यं तस्माच्छंखं प्रपूजयेत्।।

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।

नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्जन्य! नमोऽस्तुते।।

पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात्। ॐ भूर्भवः स्वः शंखस्थदेवतायै नमः शंखस्थदेवतामावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि। शंख मुद्रा करें।

घण्टा पूजन-ॐ सर्ववाद्यमयीघण्टायै नमः,

आगमार्थन्तु देवानां गमनार्थन्तु रक्षसाम्।

कुरु घण्टे वरं नादं देवतास्थानसन्निधौ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः घण्टास्थाय गरुडाय नमः गरुडमावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। गरुडमुद्रा दिखाकर घण्टा बजाऐं। दीपक के दाहिनी ओर स्थापित कर दें। ॐ गन्धर्वदैवत्याय धूपपात्राय नमः इस प्रकार धूपपात्र की पूजा कर स्थापना कर दें।

गणेश गौरी पूजन -हाथ में अक्षत लेकर-भगवान् गणेश का ध्यान-

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।

उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्।।

गौरी का ध्यान -

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।।

श्री गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, ध्यानं समर्पयामि।

गणेश का आवाहन-

हाथ में अक्षत लेकर ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

एह्येहि हेरम्ब महेशपुत्र ! समस्तविघ्नौघविनाशदक्ष !।

माङ्गल्यपूजाप्रथमप्रधान गृहाण पूजां भगवन् ! नमस्ते।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि च।

हाथ के अक्षत को गणेश जी पर चढ़ा दें। पुनः अक्षत लेकर गणेशजी की दाहिनी ओर गौरी जी का आवाहन करें।

गौरी का आवाहन -

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।

ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।।

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम्।

लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम्।।

ॐभूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः, गौरीमावाहयामि, स्थापयामि,

पूजयामि च।

प्रतिष्ठा- ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु।

विश्वे देवास इह मादयन्तामो 3 म्प्रतिष्ठ।।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।

अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन।।

गणेशाम्बिके ! सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम्।

प्रतिष्ठापूर्वकम् आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि गणेशाम्बिकाभ्यां नमः।

(आसन के लिए अक्षत समर्पित करे)।

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय और पुनराचमनीय हेतु जल

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।।

एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि समर्पयामि गणेशाम्बिकाभ्यां नमः।

दुग्धस्नान-ॐ पय: पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः पयस्वतीः। प्रदिशः सन्तु मह्यम्।।

कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्।

पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पयः स्नानं समर्पयामि।

दधिस्नान - ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

सुरभि नो मुखाकरत्प्रण आयू ँ षि तारिषत्।।

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम्।

दध्यानीतं मया देव! स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दधिस्नानं समर्पयामि।

(पुनः जल स्नान करायें।)

घृत स्नान - ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।

अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्।।

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम्।

घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, घृतस्नानं समर्पयामि।

(पुनः जल स्नान करायें।)

मधुस्नान -ॐ मधुव्वाताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः

सन्त्वोषधीः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः।

मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमाँऽ2 अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु। तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, मधुस्नानं समर्पयामि।

(पुनः जल स्नान करायें।)

शर्करास्नान - ॐ अपा ँ रसमुद्वयस Ü सूर्ये सन्त ँ समाहितम्।

अपा Ü रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।

इक्षुरससमुद्भूतां शर्करां पुष्टिदां शुभाम्। मलापहारिकां दिव्यां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि।

(पुनः जल स्नान करायें।)

पञ्चामृतस्नान - ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सश्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सोदेशेऽभवत्सरित्।।

पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु। शर्करया समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नान- ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णायामा अवलिप्तारौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।

नर्मदे सिन्धुकावेरि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, शुद्धोकस्नानं समर्पयामि।

आचमन - शुद्धोकदकस्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

(आचमन के लिए जल दें।)

वस्त्र- ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो3 मनसा देवयन्तः।।

शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।

देहालङ्करणं वस्त्रामतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, वस्त्रां समर्पयामि।

वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

वस्त्र के बाद आचमन के लिए जल दे।

उपवस्त्र- ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूप ँ सं व्ययस्व विभावसो।।

यस्याभावेन शास्त्रोक्तं कर्म किञ्चिन्न सिध्यति। उपवस्त्रं प्रयच्छामि सर्वकर्मापकारकम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि।

उपवस्त्र न हो तो रक्त सूत्र अर्पित करे।

आचमन -उपवस्त्र के बाद आचमन के लिये जल दें।

यज्ञोपवीत - ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रां प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीततेनोपनह्यामि । नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।

उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर !।। ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

आचमन -यज्ञोपवीत के बाद आचमन के लिये जल दें।

चन्दन - ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गंधाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।

अक्षत- ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी।।

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्पमाला- ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः।।

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो। मयाहतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

दूर्वा - ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनुसहश्रेण शतेन च।।

दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान् । आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक!।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।

सिन्दूर-ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।

घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।।

सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्। शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

अबीर गुलाल आदि नाना परिमल द्रव्य-

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा सं परि पातु विश्वतः।।

अबीरं च गुलालं च हरिद्रादिसमन्वितम्।नाना परिमलं द्रव्यं गृहाण परमेश्वर!।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

सुगन्धिद्रव्य ॐ अहिरिव0 इस पूर्वोक्त मंत्र से चढ़ाये

दिव्यगन्धसमायुक्तं महापरिमलाद्भुतम्। गन्धद्रव्यमिदं भक्त्या दत्तं वै परिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवःस्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि।

धूप-ॐ धूरसि धूळ धूर्वन्तं धूर्खतं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्खयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितम सस्नितम पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् । वनस्पतिरसोद्भतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।

आ यः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप-ॐ अग्निोतिज्योतिरणिनः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्योतिः सूर्यः स्वाहा।

अग्निर्व! ज्योतिर्वर्चः समाहा सूर्गो वर्ची ज्योतिर्वर्य स्वाहा।।

ज्योर्ति सूर्यः सूर्यो ज्योति स्वाहा।। साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वहिना योजितं मया।

दीपं गृहाण देवेश त्रैलौक्यतिमिरापहम् ।।भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।

त्राहि मां निरयाद् घोराद् दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते।। ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दीपं दर्शयामि।

हस्तप्रक्षालन-ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर हाथ धो ले।

नैवेद्य-पुष्प चढ़ाकर बायीं हाथ से पूजित घण्टा बजाते हुए।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्णो द्यौः समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।

ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा।

ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा।

शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च। आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, नैवेद्यं निवेदयामि। नैवेद्यान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

ऋतुफल - ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व हसः।।

इदं फलं मया देवस्थापितं पुरतस्तव। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, ऋतुफलानि समर्पयामि।

फलान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। जल अर्पित करे। ॐ मध्ये-मध्ये पानीयं

समर्पयाम.... । उत्तरापाशन समपयामि हस्तप्रक्षालन समर्पयामि मुखप्रक्षालन समर्पयामि।

करोद्वर्तन-ॐ अशुना ते अशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः।।

चन्दनं मलयोद्भुतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, करोद्वर्तनकं चन्दनं समर्पयामि।

ताम्बूल-ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्। एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, मुखवासार्थम् एलालवंगपूगीफलसहितं ताम्बूलं

समर्पयामि।

(इलायची, लौग-सुपारी के साथ ताम्बूल अर्पित करे।)

दक्षिणा-ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

हिरण्यगर्भगर्भस्थ हेमबीजं विभावसोः।

अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ म।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

(द्रव्य दक्षिणा समर्पित करे।)

विशेषार्थ्य-ताम्रपात्र में जल, चन्दन, अक्षत, फल, फूल, दूर्वा और दक्षिणा रखकर अर्घ्यपात्र को हाथ में लेकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें:-

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक। भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्।।

द्वैमातुर कृपासिन्धो पाण्मातुराग्रज प्रभो!। वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद।।

गृहाणाध्यमिमं देव सर्वदेवनमस्कृतम्। अनेन सफलायेण फलदोऽस्तु सदा मम।

अभ्यासप्रश्न – 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

18- वास्तु दोष के निवारण हेतु .... पूजन करानी चाहिए।

19- पूर्व दिशा के स्वामी .... हैं ।

20- दक्षिण दिशा में .... रंग की ध्वजा लगाई जाती है ।

21- सामान्यत: गृह प्रवेश के समय ....मण्डल बनया जाता है ।

22- अग्नि देवता का भोज्य .... है।

६.४ सारांश –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने जाना की सामान्यत: नए भवन में प्रवेश करने के समय, या जब कोई पुराना घर खरीदता है अथवा कभी कोई व्यक्ति घर या व्यावसायिक स्थानों का नवीनीकरण करता है तब, कमरे और इमारतों की आंतरिक व्यवस्था में त्रुटियां , जब हम नियमित रूप से 10 साल से रह रहे हैं , लंबे समय तक विदेश यात्रा से वापस आने के बाद , संरचना का सही उपयोग करने के लिए वास्तु पूजन अवश्य करानी चाहिए। बिना वास्तु पूजन कराये गृह में प्रवेश करने से कई

प्रकार की समस्याओं का जीवन में सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ हमने यह भी जाना की वास्तु शांति की प्रक्रिया क्या है एवं षोडशोपचार से जो पूजन की जाती है उसकी विध को भी जाना। एवं वास्तु पूजन के महत्व से भी अवगत हुये।

६.५ पारिभाषिक शब्दाबली –

वास्तु शांति = विभिन्न प्रकार के वास्तु जन्य दोषों को दूर करने के लिए वास्तु शांति की जाती है (एक पूजा विशेष) **षोडशोपचार** = पूजन करने की एक प्रक्रिया (16 उपचारों के माध्यम से)

६.६ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न - 1

1-सत्य, 2 –असत्य , 3 – सत्य , 4 - असत्य, 5- सत्य।

अभ्यास प्रश्न- 2

1- वास्तु पूजन, 2 –इंद्र , 3 – काले, 4 - एकाशीति पद मण्डल 5- घृतयुक्त नैवेद्य।

६.७ संदर्भ ग्रन्थ सूची

(क) मूल लेखक – विश्वकर्मा , सम्पादक एवं टीकाकार –महर्षि अभय कात्यायन , विश्वकर्मप्रकाशः(२०१३), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ख) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , वृहद्वास्तुमाला(२०१८) , चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |

(ग) मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००९) वास्तुप्रकरण , चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी |

(घ) मूल लेखक – प्रो शुकदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र (वर्तमान संदर्भ में समग्र परिशीलन) (2004), श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नव देहली।

(ङ) वास्तु शास्त्र – डा शालिनी खरे

(च) गृह प्रवेश पद्धति – श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी।

६.८ सहायक पाठ्यसामग्री -

मयमतम् – मयमुनि

बृहत्संहिता – वराहमिहिर

वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

६.९ निबन्धात्मक प्रश्न

1- वास्तु पूजन के महत्व को लिखिए।

2- वास्तु पूजन कब करानी चाहिए ।

3- वास्तु पूजन में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री लिखिए।

4- वास्तु शांति विधि को लिखिए।

5- प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।